# अमेरिका की राजनीतिक पद्धति
# और
# उसकी कार्य विधि

लेखक
डेविड कुशमन क्वायल

जय भारती
६०, नया कटरा, इलाहाबाद

# लोकतन्त्र की क्रियाविधि

"जब मानव जाति लोकतन्त्र को अपनाती है, तब वह राजनीति के माध्यम से व्यवहार करती है। लोकतन्त्रात्मक समाज में शासन के कार्यों और नीतियो के बारे में परस्पर विरोधी मत शान्तिपूर्वक सुलझा लिये जाते है। इसके लिए साधारणतया गृह-युद्ध नही किये जाते। राजनीति के द्वारा ही लोग अपने निर्णय तथा विधान स्थिर करते है और उन्हे लागू करने के लिये सरकारी अधिकारियो का चुनाव करते है, जिससे ऐसा परिणाम निकले जो समाज के किसी महत्वपूर्ण अग को बुरा न लगे।"

"अमेरिका की भली या बुरी राजनीति अमेरिकी जनता के मिश्रित रूप तथा विगत इतिहास को अभिव्यक्त करता है, जिसमें न केवल शासकीय सस्थाओ का बल्कि राजनीतिक जीवन की परम्पराओ का रूप निर्धारण हुआ है .... ।"

डेविड कुशमन क्वायल

इस पुस्तक में सयुक्त राज्य अमेरिका की राजनीतिक पद्धति की सजीव, सक्रिय व्याख्या की गयी है। इसमें वहा के राजनीतिक सगठनो तथा एजन्सियो के पेचीदे जाल सूत्रो का परिचय है जो दिन प्रति दिन प्रत्येक राज्य में उस पद्धति को कार्यान्वित करती है। सयुक्त राज्य अमेरिका के लोकतन्त्र की गम्भीर क्रियाविधि को समझने की यह बहुमूल्य कुञ्जी है। यह पुस्तक उस दर्शन की भी व्याख्या करती है जिससे यह पद्धति सचालित होती है।

# विषय-सूची


| | | |
|---|---|---|
| १. | आरम्भ | १ |
| २. | राजनीतिक दल | १८ |
| ३. | राजनीतिक दलों का विकास और उनकी कार्य-प्रणाली | ३७ |
| ४. | शासन | ५६ |
| ५. | काँग्रेस क्या है ? | ७० |
| ६. | काँग्रेस की कार्य-प्रणाली | ८१ |
| ७. | संघीय न्यायालय | ६४ |
| ८. | राज्य | १०८ |
| ९. | स्थानीय शासन | १२३ |
| १०. | शासन और व्यापार | १३२ |
| ११. | व्यक्तियों के अधिकार | १४२ |
| १२. | शासन का अमेरिकी दर्शन | १५६ |
| १३. | परराष्ट्र सम्बन्ध | १७६ |
| १४. | राजनीति और लोकतन्त्र | १६३ |

अध्याय १

# आरम्भ

जब मानव जाति लोकतन्त्र को अपनाती है तब वह राजनीति के माध्यम से व्यवहार करती है। लोकतन्त्रात्मक समाज मे शासन के कार्यों और नीतियो के बारे मे परस्पर विरोधी मत शान्तिपूर्वक सुलझा लिये जाते हैं। इसके लिए साधारणतया गृह-युद्ध नही किया जाता। राजनीति के द्वारा ही लोग अपने निर्णय तथा विचार स्थिर करते हैं और उन्हे लागू करने के लिए सरकारी अधिकारियो का चुनाव करते हैं, जिसमे ऐसा परिणाम निकले जो समाज के किसी भी महत्वपूर्ण अंग को बुरा न लगे।

अमेरिका की भली या बुरी राजनीति अमेरिकी जनता के मिश्रित रूप तथा विगत इतिहास को अभिव्यक्त करती है, जिसमे न केवल शासकीय संस्थाओं की बल्कि राजनीतिक जीवन की परम्पराओ का रूप-निर्धारण हुआ है। अमेरिकी शासन-प्रणाली कुछ तो अठारहवी शताब्दी की ब्रिटिश औपनिवेशिक पद्धतियो का परिणाम है और कुछ उस व्यवस्था का, जो अमेरिका के इतिहास मे विशिष्ट परिस्थितियो का सामना करने के लिए आविष्कृत की गयी थी।

आज केवल आधी के लगभग अमेरिकी निवासियों मे इगलैण्डवासियो का रक्त रह गया है। शेष प्राय. सबकी सब जनता या तो युरोपियन महाद्वीप के निवासियों, या नीग्रो और या अमेरिकी इण्डियनो की सन्तान है। कुछ लोग पूर्वी देशो से आये हुए भी हैं। जिस राजनीतिक प्रणाली मे अमेरिकी लोग अपना शासन चलाते हैं उसकी रचना सहज सूझ-बूझ से अधिक और किसी तर्क-पूर्ण योजना

द्वारा कम हुई है। इसका प्रधान आधार तो ब्रिटिश रीति रिवाज और परम्पराएँ हे, परन्तु इसके निर्माण मे उन अन्य लोगो का भाग भी है जो सयुक्त राज्य अमेरिका मे बस गये हे। यह पुस्तक यह दिखलाने के लिए लिखी गयी है कि इस देश में राजनीतिक पार्टियां और राजनीतिक कारवाईयां शासन की विविध शाखाओं को किस प्रकार प्रभावित करती हैं।

सन् १६०७ से सन् १७७६ तक के औपनिवेशिक काल में, ब्रिटिश अमेरिकी उपनिवेशो मे शासन की वे ब्रिटिश पद्धतियां जम चुकी थी जो कि पीछे चलकर देश की अधिकतर वर्तमान राजनीतिक सस्थाओ का आधार बनी।

औपनिवेशिक विधान-मण्डल उपनिवेशो के लिए कानून बनाते, स्थानीय शासनो को अनुमति पत्र देते, कर लगाते, और सार्वजनिक व्यय के लिए धन-राशि का परिमाण निर्धारित करते थे। वे कभी-कभी गवर्नरो के कामो पर अपना नियन्त्रण रखने के लिए कोश-बलका प्रयोग भी करते थे।

स्थानीय शासनो का सगठन इगलैण्ड के स्थानीय शासनो के नमूने पर किया गया था। स्थानीय परिस्थितियो के अनुसार, उपनिवेशो मे भी 'काउण्टियों' ( छोटे जिलों ), टाउनशिपो ( नगर विस्तारो ), जागीरों और बरो ( स्व-शासित नगरो ) की स्थापना की गयी थी। उनमे से अनेक आज भी बिना किसी बडे परिवर्तन के वैसे ही विद्यमान है। क्रान्ति से पूर्व भी उपनिवेश वासी 'काउण्टी-कोर्टों' ( जिला-अदालतो ), 'जस्टिस ऑव् पीस' या आनरेरी मजिस्ट्रेटों, 'शेरिफो' ( कानून का पालन कराने वाले अधिकारियो ) और 'कोरोनरो' ( मृत्यु के कारणो की जाँच करने वाली अदालतो ) से भली-भांति परिचित थे। प्रत्येक उपनिवेश मे अपीलें सुनने के लिए सुप्रीम कोर्ट ( सर्वोच्च न्यायालय ) और गम्भीर मामलो की सुनवाई के लिए मध्यवर्ती न्यायालय थे। अन्तिम अपील इगलैण्ड की प्रीवी कौंसिल मे होती थी।

सभा कर सकने, सरकार से प्रार्थना करने, मुकदमे की सुनवाई जूरी द्वारा कराने, और कर लगाने के अधिकारी विधान-मण्डल में अपना निर्वाचित प्रतिनिधि भेजने सरीखे अंग्रेजो के परम्परागत अधिकारो को उपनिवेशवासियो ने सहज ही अङ्गीकृत

कर लिया था। वे न तो इंगलैण्ड को कोई कर देते थे और न इंगलैण्ड उन्हे कोई सैनिक सहायता भेजता था, फिर भी अधिकतर औपनिवेशिक काल मे, ब्रिटिश सरकार उपनिवेशो को बार बार फ्रांसीसियो और कनाडा-वासी फ्रेंच इण्डियनो के साथ युद्ध मे फंसा देती थी। अन्त मे जब ब्रिटिश पार्लमेण्ट ने अमेरिकी लोगो पर (जिनका ब्रिटिश पार्लमेण्ट मे कोई प्रतिनिधि नही होता था) कर लगाने का प्रयत्न किया तब उन्होने उसे अपने पैत्रिक अधिकारो का उल्लघन माना।

कानून के शब्दो द्वारा औपनिवेशिक शासनो को जितने अधिकार प्राप्त होने की कल्पना की जाती थी, वे वस्तुत उसकी अपेक्षा कही अधिक स्वतन्त्र और अधिकार सम्पन्न थे, क्योकि दूरियां बहुत बडी थीं और अतलान्तक समुद्र के पार आने-जाने में समय बहुत लगता था। विशेषत अपने स्थानीय शासनो मे और पश्चिम की ओर धीरे-धीरे फैलते हुए अपने सीमान्त मे, अमेरिकी लोगो को अपने स्वामी ब्रिटिश राजा की उपस्थिति के चिह्न दिखलाई नही पडते थे। अंग्रेजो की आधीनता के एक-सौ-सत्तर वर्षों मे वे स्वशासन और आत्मनिर्भरता के बडी मात्रा मे अभ्यस्त हो चुके थे। परन्तु उनके शासन के सर्वोच्च नायक ब्रिटिश राजा और ब्रिटिश पार्लमेण्ट ही थे, जिसमें उनका एक भी प्रतिनिधि नही जाता था। इसलिए सगठित राजनीतिक दलो का वैसा विकास पहले नही हो पाया जैसा इगलैण्ड के साथ उपनिवेशो का सम्बन्ध विच्छिन्न होने के पश्चात् हुआ। राजनीतिक विवाद मुख्यतया गवर्नरो और विधान मण्डलो मे या स्थानीय पदो के उम्मीदवारो में ही होते थे।

औपनिवेशिक काल मे फ्रान्सीसियो और इण्डियनो के साथ बार-बार जो युद्ध होते थे उनकी व्यवस्था करने के लिए एक औपनिवेशिक सघ बना लेने के कई सुझाव कई बार दिये गये। परन्तु इन पर अमल एक बार भी नही हुआ। हाँ, इनके कारण अमेरिकी लोग सयुक्त काररवाई करने के विचार से परिचित अवश्य हो गये। जब सन् १७७० के बाद के वर्षो मे इगलैण्ड के साथ झगडे अधिकाधिक तीव्र होने लगे तब अमेरिकियो ने सयुक्त रूप से कारखाई करने पर गम्भीरता से ध्यान दिया। सन् १७७४ मे उन्होने महाद्वीप की एक कांग्रेस बुलायी।

महाद्वीप की काग्रेस का कानूनी आधार कुछ नही था : यह एक गैर-सरकारी प्रतिवाद सभा मात्र थी। इसने 'अधिकारो और शिकायतो की एक घोषणा' करके सन् १७७५ में एक और काग्रेस बुलायी। इस काग्रेस ने अधिक निश्चित रूप धारण कर लिया, क्योकि मैस्सेच्यूसेट्स मे युद्ध छिड गया था और दोनो तरफ से गोलिया चलने लगी थी। इसने उपनिवेशो पर शासन करने का अधिकार अपने हाथ मे ले लिया। इसने एक राष्ट्रीय सेना सगठित करके उसके सेनापति पद पर जार्ज वाशिगटन को नियुक्त कर दिया।

सन् १७७६ मे महाद्वीप की द्वितीय काग्रेस ने "स्वतन्त्रता की घोषणा" स्वीकृत की। "घोषणा" मे अग्रेजो के परम्परागत अधिकारो और स्वतन्त्र मनुष्यो के अनपहरणीय अधिकारो पर बल देकर कहा गया था कि यही नीव है जिस पर अमेरिकी राज्य अपना शासन स्थापित करने का दावा करते हैं। "स्वतन्त्रता की घोषणा" मे कानून का वह बल नही है जो 'सविधान' मे है। परन्तु जिन नैतिक सिद्धान्तो के द्वारा सयुक्त-राज्य अमरिका के कार्य-कलापो को समझा जा सकता है उनका विवरण इस घोषणा-पत्र में होने के कारण इसका प्रभाव बहुत है।

सन् १७७७ मे महाद्वीप की काग्रेस ने सघीय एकता का प्रस्ताव कुछ शिथिल रूप मे अपना कर उसे राज्यो की स्वीकृति के लिए उनके पास भेजा। सन् १७८१ तक सब राज्यो ने उस पर अपनी स्वीकृति की छाप लगा दी और वह लेख-पत्र "आर्टिकल्स आव कानफेडरेशन" अर्थात् सघ-बद्धता के अनुच्छेदो के नाम से गणतन्त्र का प्रथम सविधान बन गया।

"आर्टिकल्स आव कानफेडरेशन" द्वारा स्थापित सघीय शासन व्यवहार मे आ सकने की दृष्टि से अति सरल और अति निर्बल था, परन्तु उस समय राज्य इससे अधिक कुछ मानने के लिए तैयार भी नही थे। जो थोडे बहुत अधिकार केन्द्रीय शासन को सौंपने के लिए राज्य तैयार थे, वे काग्रेस को दे दिये गये। काग्रेस तब एक सीधी-सादी सभा थी, जिसमे प्रत्येक राज्य का एक-एक वोट था। शासन में न न्याय-पालिका की शाखा थी और न कार्य-पालिका की।

"आर्टिकल्स आव कानफेडरेशन" के आधीन होकर देश और राज्य द्रुतगति से संकट की ओर को मुडने लगे। "कान्टिनेण्टल" (महाद्वीप की कागजी मुद्रा)

को इतनी स्फीति हुई कि वह प्राय निरर्थक पदार्थ हो गयी। यहाँ तक कि आज तक भी "काण्टिनेण्टल के बराबर भी नही" यह अमेरिकी भाषा का एक मुहावरा बना हुआ है। राज्यो के बीच व्यापार अति न्यून रह गया। बहुत से अमेरिकी व्यापारी एक ऐसे अधिक बलशाली सघीय शासन की माग करने लगे, जो कि व्यापार को नियन्त्रित कर सके, कर लगा सके, और आर्थिक व्यवस्था को नष्ट होने से बचा सके। सन् १७८५ और सन् १७८६ मे व्यापारियो के दो अन्तर्राज्यीय सम्मेलन हुए, और उनके कारण सन् १७८७ मे 'फिलेडेल्फिया कन्वेन्शन' ( फिलेडेल्फिया की परिषद् ) बुलायी गयी, जिसमे सविधान लिखा गया। यही कारण है कि सविधान की रचना "व्यापार के अनुच्छेद" और उससे सम्बद्ध उन अनुच्छेदो के आधार पर हुई जिनमे कि सघीय शासन के विविध आर्थिक अधिकार और कर्तव्य निर्धारित किये गये हैं।

इन अनुच्छेदो से *उन लोगो का मुख्य उद्देश्य प्रकट हो जाता है* जिन्होने कि 'कन्वेन्शन' बुलाया और उसके विचार मे भाग लिया था।

'फिलेडेल्फिया कन्वेन्शन' के अधिकतर प्रतिनिधि ऐसे वकील, भूमिपति या व्यापारी थे जो काग्रेस मे या सरकारी कर्मचारी के रूप मे काम कर चुके थे। उनमे मजदूरो या छोटे किसानो या सीमान्त की ओर बढने वाले अग्रणी लोगो के प्रतिनिधि नही थे। ये प्रतिनिधि एक ऐसे शासन का गठन करना चाहते थे जो व्यापार मे सहायक हो सके और बलवान तथा स्थायी हो। वे यह तो चाहते थे कि शासन 'जनता' के प्रति उत्तरदायी हो, परन्तु उनका इरादा यह नही था कि साधारण जनता राष्ट्रपति का या काग्रेस का चुनाव भी करे। उनको बडे और छोटे राज्यो मे ऐसा समझौता भी कराना था जिससे उनकी परस्पर ईर्ष्या और भय का अन्त हो जाय।

सघ का गठन सविधान की एक आवश्यक विशेषता थी, क्योकि उसके *निर्माताओ का उद्देश्य यह था कि एक बलवान केन्द्रीय शासन की स्थापना की जाय* और साथ-साथ वे सब अधिकार राज्यो के ही हाथ मे रहने दिये जायें जिन्हे राष्ट्र को हस्तान्तरित कर देना अनिवार्यरूपेण आवश्यक नही था। इस दुहरे

उद्देश्य की सिद्धि के साथ ही यह भय भी लग रहा था कि कहीं संघीय शासन अति प्रबल होकर अत्याचार न करने लगे। कार्य-पालन, न्याय और विधि-निर्माण के अधिकारों को पृथक् रखने के सिद्धान्त की जड़ में भी यही भय काम कर रहा था कि यदि शासन की इन तीनो शाखाओं या इनमें से दो के अधिकार कहीं एक ही हाथों में केन्द्रित हो गये तो स्थिति बड़ी भयंकर हो जायगी।

परन्तु संयुक्त-राज्य-अमेरिका का संविधान सन् १७८८ से अबतक बिना किसी विरोध के स्थिर चला आ रहा है और इस वास्तविकता को देख लेने के पश्चात् यह सन्देह नहीं हो सकता कि यह अमेरिकी जनता की आवश्यकता और प्रकृति के अनुकूल नहीं है। जिन लोगों ने इसकी रचना की थी उनमें अमेरिकी चरित्र को और अन्य देशों और कालों के ऐतिहासिक अनुभवों को समझ सकने की आश्चर्यकारक शक्ति थी। उनके परिश्रम का परिणाम, सन् १७८८ की तात्कालिक समस्याओं को सुलझाने की दृष्टि से और उन परिस्थितियों की दृष्टि से जिनको वे पहले से देख नहीं सकते थे किन्तु जिनके अनुसार उन्होंने अपने को ढाल लिया था, असाधारण था।

एक शताब्दी के पश्चात्, प्रसिद्ध ब्रिटिश विद्वान् जेम्स ब्राइस ने संयुक्त-राज्य के संविधान के विषय में लिखा था—

"इसका दर्जा अन्य किसी भी लिखित संविधान से ऊंचा है, क्योंकि इसकी योजना ठोस तथा उत्कृष्ट है, यह जनता की परिस्थितियों के अनुकूल है, इसकी भाषा सरल, संक्षिप्त और स्पष्ट है, और इसके सिद्धान्त निश्चित होते हुए भी इसकी तफसील में लचकीलापन है। इसमें इन दोनों गुणों का मल खूब सन्तुलित है।"*

संविधान द्वारा संगठित संघीय शासन बहुत कुछ उसी प्रकार बना हुआ कृत्रिम राज्य था जिस प्रकार कोई कार्पोरेशन एक कृत्रिम व्यक्ति होता है या जिस प्रकार

---

* जेम्स ब्राइस लिखित "अमेरिकन कामनवेल्थ" के प्रथम भाग का पृष्ठ २५ ( मैकमिलन कम्पनी, न्यूयार्क द्वारा सन् १८८९ में प्रकाशित )।

वैद्युतिक मस्तिष्क सोचने का कृत्रिम यन्त्र होता है। यह बनाया गया था, जन्मा नहीं था। इसके अस्थि-पंजर पर अब चढ़ा हुआ मांस जो है उसे उन लोगों ने प्रदान किया है जिन्होंने इसे क्रियान्वित किया था, अर्थात् राजनीति और व्यवहार-नीति की कलाओं में कुशल अमेरिकनों ने।

राज्य स्वयम्भू और स्वयम्प्रभु थे। उन्होंने स्वतन्त्र अंग्रेजों के सर्वप्रभुत्व सम्पन्न सब अधिकारों को अपने प्रदेश में प्रयुक्त करने का और उसके पश्चात् अपनी स्वयम्प्रभुता का रूप स्वयं निर्धारित करने का अधिकार युद्ध में जीता था। उसकी स्वयम्प्रभुता का नियन्त्रण केवल राष्ट्रों के कानूनों से हो सकता था।

जब क्रान्तिकारी युद्ध आरम्भ हुआ तब राज्यों ने अनियमित विधान मण्डल स्थापित कर लिए और सन् १७७६ से सन् १७८० तक के मध्य में उन्होंने अपने संविधान बनाकर पूर्णतया संगठित शासनों की सृष्टि कर डाली। पीछे जाकर जिन सिद्धान्तों के आधार पर संघीय ढांचा बना उनमें से अधिकतर सिद्धान्तों की परीक्षा पहले एक या अनेक राज्यों में हो चुकी थी। राज्यों के प्रथम संविधान छोटे थे, परन्तु उन्हें बनाया गया था पूर्ण समझ कर। उदाहरणार्थ, राज्यों में विधि-निर्माण की, न्याय-पालन की और कार्य-पालन की शाखाएँ पृथक्-पृथक् थीं, "आर्टिकल्स आव कानफेडरेशन" द्वारा स्थापित संघीय-शासन में ऐसा नहीं था।

"आर्टिकल्स आव कानफेडरेशन" में यह सिद्धान्त स्थिर कर लिया गया था कि प्रत्येक राज्य अपने अधिकार से स्वतन्त्र, स्वाधीन और स्वयम्प्रभु है और संयुक्त राज्य को राज्यों द्वारा दिये गये अथवा "प्रतिनिधि रूपेण" प्राप्त अधिकारों के अतिरिक्त अन्य कोई अधिकार नहीं है। जब नया संविधान लिखा जाने लगा तब उसकी रचना इसी सिद्धान्त पर की गयी, अन्तर केवल इतना रहा कि नया संघ "अधिक पूर्ण" था, अर्थात् उसे राज्यों के प्रतिनिधि के रूप में अधिक अधिकार प्राप्त हो गये थे।

सन् १७८७ में जब प्रतिनिधि फिलेडेल्फिया में एकत्र हुए तब उन्हें केवल "आर्टिकल्स आव कानफेडरेशन" में संशोधन प्रस्तुत करने का अधिकार दिया

गया था। "आर्टिकल्स" ( अनुच्छेदों ) में लिखा था कि संशोधन राज्यों की सर्व-सम्मति से ही स्वीकृत हो सकते हैं। परन्तु जब प्रतिनिधियों ने कार्य आरम्भ किया तब उन्होंने देखा कि पूर्णतया नये शासन से कम में काम नहीं चलेगा। उन्होंने तब न केवल "आर्टिकल्स आव कानफेडरेशन" को, अपितु उस संशोधन सम्बन्धी अनुच्छेद को भी समाप्त कर डालने का निर्णय कर लिया जिसमें कि मूल संविधान को बदलने की विधि बतलायी गयी थी। उसके स्थान पर उन्होंने नवीन संविधान में उसे अपनाये जाने का अनुच्छेद भी लिखा, और प्रथम नौ राज्यों का नया संघ स्थापित करके उनमें उसे स्वीकृत कर लेने के लिए कहा। अन्य राज्य उसमें, जब वे तैयार हो जायं तब, सम्मिलित हो सकते थे।

"कन्वेन्शन" का मुख्य काम ऐसे शासन की योजना बनाना था जो प्रतिनिधियों द्वारा सौंपे गये उत्तरदायित्वों का निर्वाह कर सके और साथ ही उन आपत्तियों का उत्तर दे सके जो उसके विरुद्ध उठायी जाय। पश्चिमी यूरोप के देशों का संघ बनाने के वर्तमान प्रयत्नों को अमेरिकी लोग ऐतिहासिक-अनुभव-जन्य सहानुभूति की दृष्टि से देखते हैं। वे अपनी बाल्यावस्था में स्कूल में पढ़ चुके हैं कि संयुक्त-राज्य के संस्थापकों को लगभग इन्हीं समस्याओं से किस प्रकार उलझना पड़ा था।

जब "कन्वेन्शन" शुरू हुआ तब उसके सामने प्रस्तावों का एक विस्तृत मसविदा पेश किया गया। वे प्रस्ताव बड़े राज्यों के स्वार्थों का प्रतिनिधित्व करते थे, और पीछे वे "वर्जीनिया योजना" के नाम से प्रसिद्ध हुए। उनके विरोध में छोटे राज्यों ने एक भिन्न योजना तैयार की, वह "न्यू जर्सी योजना" कहलायी। यह विवाद चलता रहा कि इन दोनों परस्पर-विरोधी योजनाओं में से कौन-सी अपनायी जाय।

दोनों योजनाओं में कुछ बातें तो समान थीं, जैसे कि अधिकारों की पृथक्ता। दोनों में शासन की कार्य-पालिका, विधि-निर्मात्री और न्याय-कर्त्री शाखाओं को पृथक्-पृथक् रखने की व्यवस्था थी। सबसे अधिक कठिन और विवादास्पद समस्या यह थी कि विधान मण्डल का रूप और छोटे तथा बड़े राज्यों के साथ उसका

सम्बन्ध किस प्रकार निर्धारित किया जाय। इस समस्या के कारण "कन्वेन्शन" भग हो जाने का भय होने लगा। यह समस्या हमारे काल मे सयुक्त-राष्ट्र-सघ के अनुमति-पत्र के सम्बन्ध मे फिर खडी हो गयी है। भविष्य मे भी जहाँ-कही छोटे और बडे राज्य मिलकर किसी विवादास्पद प्रश्न पर कोई सम्मिलित काररवाई करना चाहेंगे, वहा यह समस्या खडी होती ही रहेगी।

"वर्जीनिया योजना" मे, उच्च और निम्न दो सदनो वाले औपनिवेशिक शासन के सुपरिचित नमूने के अनुसार, दो सदनो की काग्रेस का प्रस्ताव किया गया था। एक सदन तो जनता द्वारा निर्वाचित सदस्यों से मिलकर बनता, और दूसरे सदन का चुनाव पहले सदन के सदस्य राज्यो के विधान मण्डलो द्वारा नामजद उम्मीदवारो में से करते। सबसे अधिक विवाद इस सुझाव पर था कि दोनो सदनो मे राज्यों का प्रतिनिधित्व उनकी आबादी, उनके द्वारा दिये हुए करो अथवा इन दोनो के किसी मेल के आधार पर हो। इस सुझाव के अनुसार बडे राज्यो को अपने बडे होने का पूरा लाभ मिल जाता, जो उन्हे महाद्वीप की काग्रेस मे नही था, क्योकि उसमे प्रत्येक राज्य का एक-एक ही मत था।

न्यू जर्सी की योजना मे उस समय विद्यमान शासन में बहुत कम परिवर्तन करने की बात कही गयी थी। इस योजना मे एक ही सदन की काग्रेस का प्रस्ताव था और उसमे प्रत्येक राज्य को एक-एक ही मत का अधिकारी माना गया था, जैसा कि "आर्टिकल्स" मे भी था।

कई सप्ताह तक प्रतिनिधियो मे इस कठिन प्रश्न पर विवाद चलता रहा कि छोटे और बडे राज्यो के एक ही शासन मे सम्मिलित होने पर उनमे अधिकारो का उचित बटवारा किस प्रकार हो ? क्योकि इस प्रश्न का कोई पूर्ण हल नही निकल रहा था, इसलिए ऐसा सन्देह होने लगा कि व्यवहार मे आने योग्य सयुक्त शासन का सगठन भी हो सकता है या नही।

अन्त मे कनेक्टिकट के विलिअम सेम्युअल जान्सटन ने एक हल सुझाया, जो कि 'कनेक्टिकट समझौते' के नाम से विख्यात हुआ। हल यह था कि एक 'हाउस

ऑव रिप्रेज़ेण्टेटिव्ज़' अर्थात् 'प्रतिनिधियों की सभा' हो जिसमें राज्यों का प्रतिनिधित्व अपनी जन-संख्या के अनुपात से रहे, धन एकत्र करने के सब विधेयकों को आरम्भ करने का एकमात्र अधिकार इसी सभा को हो। एक दूसरा ऊपर का सदन हो। उसमें सब राज्यों का प्रतिनिधित्व एक-सा अर्थात् समान रहे। यह योजना अपना ली गयी।

अत प्रत्येक बिल को कानून का रूप प्राप्त करने के लिए "हाउस ऑव रिप्रेज़ेण्टेटिव्ज़" और सेनेट, दोनों में स्वीकृत होना पडता है, अत व्यवहार में छोटे राज्य जिस बिल को अपने लाभ का विरोधी समझें उसे वे सेनेट में उसके विरुद्ध मत देकर रोक सकते हैं। इसी प्रकार बडे राज्य किसी बिल को हाउस में अपनी मत-बहुलता के बल पर रोक सकते हैं। यह पद्धति इतनी भली-भाँति क्रियान्वित हो रही है कि सन् १७८७ में छोटे और बडे राज्यों का जो स्वार्थ-संघर्ष आकाश में एक बडा काला बादल सा दिखाई पड रहा था, वह कठिनाई का उतना बडा कारण सिद्ध नहीं हुआ जितना संस्थापक लोग कल्पना करते थे। स्वार्थों के प्रादेशिक संघर्ष का रूप अब बहुधा दलीय अथवा उद्योग, कृषि, या खानों आदि के विभिन्न हितों के प्रतिनिधियों में संघर्ष का हो जाता है।

उदाहरणार्थ, आबादी के लिहाज़ से न्यू मेक्सीको और ऐरीज़ोना राज्य कैलेफोर्निया से बहुत छोटे हैं। इन दोनों का उसके साथ बहुत समय से यह विवाद चल रहा है कि हूवर बाँध बनाकर कोलोरैडो नदी का जो पानी रोका गया है उसका बटवारा किस प्रकार किया जाय। परन्तु इस प्रश्न का निबटारा करने के लिए छोटे और बडे राज्य कांग्रेस में अपने क्षेत्रफल के अनुसार विभक्त नहीं हुए।

संविधान का विधान यह था कि निम्न सदन के सदस्य जनता द्वारा अर्थात् मताधिकारी जनता द्वारा चुने जायें। परन्तु यह अधिकार राज्यों के ही हाथ में रह गया कि वे चाहें तो मताधिकार को कुछ सम्पत्ति के स्वामी और धार्मिक योग्यता से युक्त स्वतन्त्र गोरे लोगों तक सीमित कर दें।

वुडरो विल्सन ने अपनी पुस्तक "हिस्ट्री ऑव द अमेरिकन पीपल" अर्थात् 'अमेरिकी लोगो का इतिहास' मे अन्दाज लगाया है कि आरम्भ के दिनो मे ४० लाख मे से केवल १ लाख २० हजार व्यक्तियो को मत देने का अधिकार रहा होगा।

अठारहवी शताब्दी मे यह पद्धति भी भयानक जनतन्त्री समझी जाती थी। अगले सौ वर्षों मे मत देने का अधिकार अधिकाधिक प्रकार के लोगो को दिया जाता रहा। पश्चिम की ओर को सीमान्त का शीघ्र विस्तार होता गया और ज्यो-ज्यो नये राज्य बनते गये त्यो-त्यो सीमान्तवासी लोगो का प्रभाव देश को समानता की ओर धकेलता गया। सन् १८६० तक प्राय सभी राज्यो ने इक्कीस वर्ष से ऊपर आयु के सब गोरे लोगो को मताधिकार दे दिया था। गृह युद्ध के पश्चात् सविधान मे नीग्रो लोगो को भी मताधिकार देने का सशोधन कर दिया गया, परन्तु कई दक्षिणी राज्यो ने नीग्रो लोगो के मत देने के मार्ग मे बहुत सी बाधाएँ सफलता पूर्वक खडी कर रक्खी है। सन् १६२० मे सविधान मे एक और सशोधन करके स्त्रियो को भी मताधिकार दे दिया गया।

सेनेट ( उच्च सभा ) को हाउस ( प्रतिनिधि सभा ) की अपेक्षा जनता से अधिक दूर रखने का विचार था। इसलिए सविधान मे यह विधान रक्खा गया था कि प्रत्येक राज्य के दो सेनेटर उसके विधान मण्डल द्वारा चुने जायें। इसका फल यह हुआ कि सेनेट साधारणतया हाउस की अपेक्षा अधिक परिवर्तन विरोधी रहने लगी। सेनेट मे बहुधा सम्पन्न व्यक्ति होते थे अथवा ऐसे व्यक्ति होते थे जिन्हे बडे-बडे व्यापारियो और महाजनो के साथ घनी सहानुभूति होती थी। परन्तु जनतन्त्र को अधिकाधिक जन प्रतिनिधिक बनाने का दबाव बढ़ता गया। परिवर्तन विरोधियो के विरोधी राजनीतिक लोगो ने भी इस परिवर्तन को बढावा दिया। फल यह हुआ कि सन् १६१३ मे फिर सविधान का सशोधन किया गया और राज्यो की जनता को अपने सेनेटर सीधे चुन लेन का अधिकार दे दिया गया।

सन् १६१३ से सेनटरो की स्थिति, अपने राज्य के शासन का प्रतिनिधित्व करन के लिए वाशिंगटन मे भेजे गये राजदूत या प्रतिनिधि की न रहकर, बहुत कुछ ऐसे काग्रेस-सदस्य जैसी हो गयी है जिसकी पद मर्यादा बढा दी गयी हो।

हाल के वर्षों में सेनेट प्राय हाउस की अपेक्षा कम परिवर्तन-विरोधी सिद्ध हुई है। बहुत से निरीक्षकों को तो ऐसा लगता है कि हाउस के सदस्य प्रभावशाली शक्तियों के दबाव में आकर जिन अविचार तथा अदूरदर्शितापूर्ण विधेयकों या प्रस्तावों के पक्ष में मत दे बैठते हैं उन्हें अस्वीकृत कर देने की आशा हाउस सेनेट से करता है। जब कभी मतदाता अधीर और मिरफिरे हो जाते हैं तब बहुधा सेनट साहस करके जनता की चिल्लाहट का विरोध करती है और उसे आशा रहती है कि जनता की भावना बदल जायगी। सेनेटर अधिक स्वतन्त्र वृत्ति से काम करते हैं, क्योंकि उनका कार्य-काल छः वर्ष का होता है, जब कि उनकी तुलना में 'रिप्रेज़ेन्टेटिवों' को प्रति दो वर्ष पीछे मतदाताओं का सामना करना पड़ जाता है। 'मितव्ययिता' का लेखा कायम कर देने की धुन में हाउस बहुधा शासन के व्यय में इतनी कटौती कर डालता है कि वे व्यवहार्य स्तर से भी नीचे चले जाते हैं। परन्तु कांग्रेस के सदस्यों को भरोसा रहता है कि शासन चलाने के लिए जितने धन की आवश्यकता होगी उतना सेनेटर फिर पास कर देंगे।

संविधान का मूल विधान यह था कि राष्ट्रपति को एक 'इलेक्टोरल कालिज' अर्थात् प्रत्येक राज्य के विशिष्ट व्यक्तियों से मिलकर संघटित निर्वाचक-मण्डल द्वारा चुना जाय—'इलेक्टोरल कालिज' का चुनाव प्रत्येक राज्य जिस प्रकार चाहे उस प्रकार कर ले, चाहे विधान-मण्डल द्वारा, चाहे जनता द्वारा और चाहे गवर्नर द्वारा। ऐसा कोई इरादा नहीं था कि राष्ट्रपति का चुनाव जनता करे। निर्वाचकों का चुनाव भी, जब तक राज्य ही वैसा निर्णय न करे, जनता द्वारा करवाने का इरादा नहीं था।

परन्तु इस मामले में लोकतन्त्रीय भावना की तीव्रता ने चुपचाप संविधान का अर्थ ही बदल डाला। कोई संशोधन तक स्वीकृत करने की परवाह नहीं की। प्रत्येक राजनीतिक पार्टी निर्वाचक चुनने के लिए अपने उम्मीदवार खड़े करती है, और वे निर्वाचक राष्ट्रपति तथा उपराष्ट्रपति के चुनाव में अपनी ही पार्टी के उम्मीदवारों को मत देने के लिए प्रतिज्ञाबद्ध होते हैं। निर्वाचकों को मत देने की स्वतन्त्रता नहीं होती। पार्टी के जिन निठल्लुओं को राष्ट्रपति चुनने की कोई खास तमीज नहीं होती वे भी बहुधा निर्वाचक बन जाने का अभिमान करने लगते हैं।

सन् १६४८ में आशका हो गयी थी कि दक्षिणी राज्यो के कुछ निर्वाचक डिमोक्रेट उम्मीदवार बनकर भी, राष्ट्रपति पद के डिमोक्रेट उम्मीदवार ट्रूमन के विरुद्ध मत देकर, इस परम्परागत पद्धति को बिगाड न दे। ट्रूमन तो चुने गये, परन्तु सार्वजनिक अनवस्था और जनता की इच्छा की सम्भावित विफलता के भयो की ओर लोगो का ध्यान आकृष्ट हो गया।

"इलेक्टोरल कालिज" अथवा निर्वाचक-मण्डल की एक और विशेषता, जिसका सविधान मे विधान नही है, यह प्रथा है कि प्रत्येक राज्य मे सब निर्वाचक उसी पार्टी के चुन दिये जाते हैं जो राज्य के चुनावो मे जीतती है। पराजित पार्टी मे से एक भी निर्वाचक नही लिया जाता, भले ही उसे जनता ने ४६ प्रतिशत मत क्यो न दिये हो। इसका परिणाम यह होता है कि निर्वाचको का मत जनता के मत से बहुत ही भिन्न बन जाता है। शायद विजेता के पक्ष मे जनता का मत ५५ प्रतिशत ही हो, परन्तु निर्वाचको का मत उसे ८० या ६० प्रतिशत तक मिल जाता है। यह परिणाम ऊपर से देखने मे 'सर्वसम्मत' दिखाई देता है और राष्ट्रपति की आवाज का बल इससे बहुत बढ जाता है, विशेषत अन्तर्राष्ट्रीय मामलो मे।

परन्तु इसमे इस बात की भी सम्भावना है कि कोई उम्मीदवार कुछ राज्यो मे केन्द्रित बहुमत के वोटो को प्राप्त कर ले, जब दूसरा उम्मीदवार एलेक्टोरल कालिजो से प्राप्त नाम मात्र के बहुमत के बल पर राष्ट्रपति का चुनाव जीत ले। उदाहरणार्थ सन् १८८८ मे जनता का बहुमत ग्रोवर क्लीवलैण्ड के पक्ष मे था, परन्तु राष्ट्रपति चुने गये थे बेन्जामिन हैरिसन। यह सम्भावना इस पद्धति की एक विशेष बुराई मानी जाती है, परन्तु इससे "एक दलीय" राज्यो का तुलनात्मक महत्व अवश्य समाप्त हो जाता है। प्रश्न किया जा सकता है कि जो राज्य द्वि-दलीय राजनीतिक सघर्ष मे विशेष उत्साह नही दिखाता उसे भी राष्ट्रपति के चुनाव में उतना ही भाग मिलना चाहिए जितना कि स्वस्थ-द्वि-दलीय पद्धति पर चलने का अभिमान करने वाले राज्य को।

अमेरिकी लोकमत किसी ऐसी तर्क-सम्मत विधि को अपनाने का पक्षपाती प्रतीत होता है जिससे जनता का बहुमत क्रियान्वित होने का निश्चय हो जाय,

परन्तु जिसमें यह भय न हो कि कोई निर्वाचक जब चाहे तब अपने संवैधानिक अधिकार का दावा पेश करके अपनी इच्छानुसार मत देने लगे। परन्तु जबतक जनता की इच्छा विफल होने का कोई बड़ा प्रदर्शन नहीं हो जाता तबतक संविधान में इस प्रकार का संशोधन करने के प्रति जनता की उदासीन वृत्ति शायद चलती ही रहेगी।

शासन की किसी भी शाखा को उच्छृंखल न होने देने के लिए संविधान में सावधानतापूर्वक "नियन्त्रणा और सन्तुलना की पद्धति" का समावेश किया गया है।

उदाहरणार्थ, कांग्रेस द्वारा स्वीकृत किसी बिल को राष्ट्रपति अपने 'वीटो' या निषेधाधिकार के द्वारा अस्वीकृत कर सकता है। तब वह विधेयक पुन कांग्रेस के सामने जाता है और वह तबतक कानून का रूप धारण नहीं कर सकता जब तक दोनों सदन उसे दो-तिहाई के बहुमत से पुन पास न कर दें।

कांग्रेस भी राष्ट्रपति के कई कामों का—प्रधान सेनापति के रूप में उनके संवैधानिक अधिकार के प्रयोग तक का—धन के व्यय की अनुमति देने से इनकार करके 'वीटो' या निषेध कर सकती है।

राष्ट्रपति द्वारा की गयी किसी सन्धि को सेनेट 'वीटो' अर्थात् निषेधाधिकार द्वारा निषिद्ध कर सकती है। शासन के सब महत्वपूर्ण पदाधिकारियों और संघ के सब न्यायाधीशों को नियुक्त तो राष्ट्रपति करता है, परन्तु उन नियुक्तियों के सेनेट द्वारा सम्पुष्ट होने की शर्त पर।

संविधान में यह विधान नहीं है कि सुप्रीम कोर्ट अर्थात् सर्वोच्च न्यायालय कांग्रेस द्वारा स्वीकृत कानूनों को असंवैधानिक बतलाकर निषिद्ध ठहरा सके। परन्तु घटनाओं की परम्परा ने न्यायालय को यह अधिकार अपने हाथ में लेने दिया है।

राष्ट्रपति, सर्वोच्च न्यायालय के सदस्य और कार्यपालिका तथा न्यायपालिका शाखाओं के अन्य महत्वपूर्ण अधिकारी, 'इम्पीचमण्ट' अर्थात् अभियोगारोपण द्वारा अपने पदों से पृथक किये जा सकते हैं। 'इम्पीचमेण्ट' की कारवाई में इस्तगासा

हाउस दायर करता है और न्यायालय का कार्य सेनेट करती है। राष्ट्रपति जॉन्सन सेनेट मे केवल एक मत के कारण 'इम्पीचमेण्ट' से बच गये थे। सेनेट ने अबतक केवल चार मामलो मे 'इम्पीचमेण्ट' के पक्ष मे मत दिया है और वे चारो मामले सघीय न्यायालय के न्यायाधीशो के थे।

नियन्त्रणो और सन्तुलनो का सिद्धान्त, शासन की तीनों शाखाओ के अधिकारो की पृथक्ता के सिद्धान्त को काट देता है। परन्तु ये दोनो मिलकर व्यावहारिक समझौते का ऐसा मार्ग निकाल देते हैं जो अमेरिकी बुद्धि को खूब पसन्द आ जाता है। विधि-निर्माण, कार्य-पालन और न्याय-पालन के अधिकारो को एक दूसरे से सर्वथा पृथक् कर देना असम्भव है। परन्तु साथ ही यह देखना भी आवश्यक है कि उनमे से कोई से दो किसी भावी तानाशाह या गुप्त पुलिस-राज्य के हाथ मे न जाने पावे। इन शाखाओ की आंशिक पृथक्ता और नियन्त्रणो और सतुलनो की योजना, देश को उस आपत्ति से बचाने के लिए की गयी थी जिसे आज हम 'एकवर्गाधिकारवाद' के नाम से पुकारते हैं, और अब वह उसमे सफल भी हुई है।

जिन लोगो ने सविधान की रचना की थी उन्होने सघीय शासन के अत्याचार-पूर्ण कार्यों से नागरिको की रक्षा करने के लिए किसी आम 'बिल ऑव राइट्स' अथवा अधिकार-सूची का विधान नही किया था। निश्चय ही उसमे जहाँ तहाँ ऐसे वाक्यांश थे जो उन कुछेक अन्यायो को रोकते थे जो भूत-काल मे लोगो को ब्रिटिश राजा और पार्लमेण्ट के हाथो सहने पडे थे। सविधान के प्रथम अनुच्छेद मे शासन को 'बिल ऑव अटेण्डर' स्वीकृत करने पर निषेध लगा दिया है, अर्थात् उसे नागरिक अधिकारो के अपहरण का ऐसा कोई विधेयक बनाने से वर्जित कर दिया गया था जिसके द्वारा किसी व्यक्ति या उसके परिवार को बदला लेने की भावना से दण्ड देने के लिए चुना जा सके। 'एक्स-पोस्ट फैक्टो' कानून अर्थात् ऐसे कानून बनाने का भी निषेध कर दिया गया था जिनका प्रभाव कानून बनने से पूर्व के कार्यों पर पडता हो, जिसमे जो कार्य किये जाने के समय अपराध नही था। वह पीछे उस कानून द्वारा अपराध न ठहराया जा सके।

"हैबियस कार्पस" ( बन्दी प्रत्यक्षीकरण ) का अर्थात् बन्दी बनाये हुए व्यक्ति को न्यायालय में उपस्थित करवाने का अधिकार सुरक्षित रखा गया था, जिससे पुलिस किसी भी व्यक्ति को मनमाने ढंग से बन्दी न बना सके, जैसा राम आदि बहुत से एकतन्त्रवादियों देशों में होता देख चुके हैं। तृतीय अनुच्छेद में सघीय अपराधों के मुकदमों की सुनवाई जूरी द्वारा होना आवश्यक ठहराया गया है। आजकल कम्युनिस्ट लोग 'राजद्रोह' के अपराध पर किसी को भी निष्कासित अथवा 'परिशुद्ध' कर राजनैतिक शुद्धि की प्रक्रिया करते हैं उसे करने के लिए उन दिनों राजा लोग इस ( राजद्रोह के अभियोग ) का बहुत दुरुपयोग किया करते थे। उस दुरुपयोग का सावधानता पूर्वक रोक दिया गया था।

परन्तु जब संविधान स्वीकृति के लिए राज्यों के पास भेजा गया तब विरोधियों ने इसकी आलोचना यह कहकर की कि इसमें कोई पूरा 'बिल ऑव राइट्स' अर्थात् अधिकार-सूची सम्मिलित नहीं है। कुछ राज्यों ने अपनी स्वीकृति इसी शर्त पर दी कि नयी कांग्रेस पहला काम यह करे कि संविधान में इस प्रकार की सूची जोड़ने के लिए संशोधन का काम हाथ में ले।

संविधान में प्रथम दस संशोधन उसमें अधिकारों की सूची जोड़ने के रूप में किये हो गये हैं। विस्तार की कई बातों में यह संयुक्त राष्ट्र संघ की सभा द्वारा अपनायी गयी "मानव अधिकारों की घोषणा" से भिन्न है। अठारहवीं शताब्दि में जिस प्रकार के अन्याय अंग्रेजों ने अपनी सरकारों से सहे थे या जिनको उनके पुरखों ने दीर्घकालीन तथा कटुतापूर्ण संघर्ष के बाद अन्त कर दिया था, उसी की पृष्ठभूमि पर अमरिकनों को उनके संविधान द्वारा अधिकार प्राप्त हुए थे। परन्तु हमारे समय में हिटलर और कम्युनिस्टों ने नये अन्यायों का आविष्कार कर लिया या प्राचीन तथा असभ्य काल के अन्यायों का पुनरुज्जीवित कर लिया है। सिद्धान्त अब भी वही है।

संविधान की मुख्य विशेषताएं यही थी। इन्होंने एक ऐसा मजबूत ढांचा तैयार कर दिया है जिसपर स्वयंभू जनता जो भी कुछ बनाना चाहे, अमरिकी जनता की राजतांत्रिक शक्तियां वही बना सकती हैं। कुछ विशेषताएं तो, जैसे

कि कांग्रेस का निर्वाचन और उसके अधिकार, आज तक बिना किसी मौलिक परिवर्तन के वैसे ही चले आ रहे हैं। अन्यो का, जैसे निर्वाचक मण्डल के और सर्वोच्च न्यायालय के अधिकारों का, रूपान्तर हो गया है। परन्तु संविधान प्रारम्भ मे जो काम करने के लिए बनाया गया था—अर्थात् अमेरिकी जनता की स्वयंप्रभुता की रक्षा करते हुए उसकी आधीनता मे एक ऐसा दृढ शासन स्थापित करने के लिए जो कि अमेरिकी जनता के नाम पर एक राष्ट्र की भांति कार्य कर सके—उसे वह निरन्तर करता चला जा रहा है।

अध्याय २

## राजनीतिक दल

अमेरिकी जनता स्पष्ट रूप से दो पार्टियों की पद्धति पसन्द करती है। गत दो सौ वर्षों में जब कभी उसने देखा कि हमारे यहां केवल एक पार्टी रह गयी है तभी उसने उसे दो खण्डों में विभक्त कर दिया या कोई नयी पार्टी खड़ी कर दी और जब उसने देखा कि पार्टियां तीन हो गयी हैं तब उसने उनमें से एक का निर्वाचन में अन्त कर दिया।

औपनिवेशिक काल में ह्विग और टोरी, दो अत्यन्त विभिन्न राजनीतिक प्रवृत्तियों के प्रतिनिधि थे—इतनी विभिन्न प्रवृत्तियों के कि उनमें विरोध के कारण सन् १७७५ में युद्ध छिड़ गया था। इस समय दोनों पार्टियां प्राय: एक दूसरी से मिलती जुलती हैं, यहां तक कि कभी-कभी उनकी चर्चा होने पर "जैसे नागनाथ वैसे सांपनाथ" कह दिया जाता है। प्रति दो वर्ष पीछे वे परस्पर सहमति से एक ऐसी लड़ाई लड़ती हैं कि उसमें दोनों पक्ष इतने सुरक्षित रहते हैं कि पराजित पक्ष की भी भारी क्षति नहीं होती।

अमेरिकी पार्टियां की विशेषताएं, देश के इतिहास और परिस्थितियों का परिणाम हैं। वे राजनीतिक नेताओं की किसी योजना का फल नहीं हैं। वास्तव में, अमरिकी संविधान की एक विचित्र विशेषता यह है कि उसमें पार्टियों का जिक्र तक नहीं किया गया।

क्रान्ति से पहले पार्टियां आधुनिक रूप में सगठित नहीं थीं। परन्तु जो लोग साधारणतया ब्रिटिश राजा और उसके द्वारा नियुक्त गवर्नरों के पक्ष में रहते थे वे टोरी

कहलाते थे और दूसरे, जिनका झुकाव औपनिवेशिक विधान मण्डलो और स्वशासन के सिद्धान्तो के पक्ष मे होता था वे प्राय ह्विग कहलाते थे। टोरियो और ह्विगो के पारस्परिक संघर्ष का अन्त युद्ध के द्वारा हुआ था। ह्विग अथवा 'देशभक्त' न केवल युद्ध मे जीत गये थे, बल्कि उन्होने विरोधी पक्ष को सर्वथा समाप्त भी कर दिया था। टोरी देश से निकाल दिये गये और वे भाग कर कैनेडा अथवा बहामाज चले गये थे।

यद्यपि आज भी संयुक्त राज्य अमेरिका मे परिवर्तन विरोधियो को कभी-कभी 'टोरी' कह दिया जाता है, परन्तु क्रान्ति के पश्चात् इस देश मे इंगलैण्ड के राजा को पुन प्रतिष्ठित करने का प्रयत्न करनेवाली कोई पार्टी नहीं रही।

इसलिए अन्य सब क्रान्तिकारी देशो की भांति, संयुक्त राज्य अमेरिका की राजनीति का आरम्भ भी एकदलीय राजनीतिक प्रणाली से हुआ था। जार्ज वाशिंगटन और अन्य अनेक क्रान्तिकारी नेता चाहते थे कि वह वैसा ही रहे। वाशिंगटन ने अपने 'विदाई भाषण' मे जनता को, पार्टियो के, "विशेषतः उन्हे प्रादेशिक भेदो के आधार पर स्थापित करने के" विरुद्ध सचेत किया था। उसने "साधारणतया पार्टी की भावना के हानिकारक परिणामो के विरुद्ध भी······अति गम्भीर" चेतावनी दी थी। उससे "कभी-कभी दंगा और विद्रोह तक भड़क उठते हैं।"

वाशिंगटन को ह्विगो और टोरियो के युद्ध की याद थी। उसने उस परिस्थिति की कल्पना कर ली थी जो देश के विविध भागो मे पार्टियो के संगठित हो जाने पर उत्पन्न होती और जिसमे वे प्रतिद्वन्दी शासन स्थापित कर सेनाएं खडी कर लेती। पीछे सन् १८६१ मे सचमुच ऐसा हुआ भी।

जेम्स मेडिसन ने "फेडरलिस्ट पेपर्स" में संविधान को स्वीकृति कर लेने की वकालत करते हुए नवीन संघीय शासन का एक लाभ यह भी बतलाया था कि उसकी रचना "पार्टी-बाजी का झगड़ा मिटाने और उसे नियन्त्रित करने के लिए ही की गयी है।

उदाहरणार्थ, राष्ट्रपति के चुनाव में निर्वाचन-मण्डल की कल्पना विशेष रूप से पार्टी-बाजी की राजनीति से बचने के लिए की गयी थी। बहुत से

संस्थापक राष्ट्रपति को एक प्रकार का निर्वाचित राजा मानते थे, जो आज के फ्रान्स के राष्ट्रपति या इंगलैंड के राजा की भांति सब पार्टियों से पृथक् रहता है। संविधान की प्रथम रचना में यह निर्देश था कि प्रत्येक राज्य के निर्वाचक एक स्थान पर एकत्र होंगे और प्रत्येक निर्वाचक, अपनी प्रथम और द्वितीय पसन्द प्रकट किये बिना, दो व्यक्तियों को मत देगा। इस प्रकार जिस व्यक्ति को सबसे अधिक मत मिलेंगे वह राष्ट्रपति हो जायगा और उसके बाद वाला उपराष्ट्रपति। आशा थी कि इस पद्धति से इस बात की गारण्टी रहेगी कि राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति वही व्यक्ति बन सकेंगे जो प्रमुख लोगों की दृष्टि में नम्बर एक और नम्बर दो होंगे।

सन् १७८७ में भी संविधान लिखा जा चुकने पर लोगों में इस प्रश्न पर मतभेद था कि उसे स्वीकृति दिया जाय या नहीं, यद्यपि तबतक वे निश्चित राजनीतिक पार्टियों में संगठित नहीं हुए थे। मोटे तौर पर व्यापारी, महाजन और परिवर्तन-विरोधी भूमिपति तो संविधान के पक्षपाती थे। उनका नेता ऐलेग्जेण्डर हैमिल्टन था। श्रमिक तथा किसान, विशेषत स्थानीय राजनीतिक नेता, राज्यीय तथा स्थानीय स्वशासन का अधिकार छिन जाने के भय से, उसका विरोध कर रहे थे। संविधान बहुत थोड़े बहुमत से स्वीकृत हो सका था, वह भी केवल इस कारण कि मताधिकार जनता के अति न्यून प्रतिशत को, मुख्यतया जमीन-जायदाद के मालिकों को, प्राप्त था।

परन्तु परस्पर एक दूसरे का विरोध करने वाली पार्टियों का संगठन प्राय वाशिंगटन के द्वितीय कार्य-काल की समाप्ति तक नहीं हुआ। इसके दो कारण थे। पहला वाशिंगटन की लोकप्रियता और दूसरा व्यापार तथा समृद्धि पर संविधान का अनुकूल प्रभाव। उक्त काल के पश्चात्, लोग इस प्रश्न पर परस्पर विरोधी राजनीतिक संगठनों में विभक्त होने लगे कि नया राष्ट्रपति कौन हो। एक पक्ष तो व्यापार, पूंजी और नगरों के मध्य-वर्ग के प्रतिनिधियों, 'फेडरलिस्टों' (अर्थात् संघ-पक्षपातियों) का था, जिसका सर्वाधिक प्रभाव उत्तर-पूर्वी राज्यों में था, और दूसरा पक्ष "रिपब्लिकनों" का था, जिनका नेता टामस जेफर्सन था। वे मुख्यतया

ग्रामीण जनता के—वर्जीनिया के भद्र-जनो से लेकर टेनसी के अग्रगामियो तक के—प्रतिनिधि थे। नगरो के श्रमिक भी उन्ही के साथ थे।

जब वाशिंगटन ने यह विभाजन होता देखा तब वह बहुत दु खी हुआ। परन्तु उसकी पुकार बेकार रही, क्योंकि स्वतन्त्र लोग आपसी झगडो को सुलझाने का मार्ग स्वय ही तलाश किया करते हैं।

इस प्रकार सयुक्त राज्य अमेरिका का एकदलीय क्रान्तिकारी शासन शीघ्र ही बँट कर द्विदलीय पद्धति मे परिणत हो गया।

सन् १७९६ मे जीत 'फेडरलिस्टो' की हुई और उन्होने जान ऐडम्स को राष्ट्रपति चुना। सन् १८०० तक दोनो पार्टिया अच्छी तरह पृथक् हो चुकी थी और तब राष्ट्रपति तथा उपराष्ट्रपति के पदो के लिए दोनो ने अपने-अपने उम्मीदवार पृथक्-पृथक् खडे किए थे। इस बार जीत रिपब्लिकनो की हुई और उनके सभी निर्वाचको ने अपना मत टामस जेफर्सन और आरौनबर्ट के पक्ष में दिया। परन्तु चूँकि तब निर्वाचक अपने दो मतो मे से कौन प्रथम और कौन द्वितीय यह प्रकट नही कर सकते थे, इसलिए दोनो विजेताओ को बराबर मत प्राप्त हो गये। सविधान के नियमानुसार इन दोनो मे से एक का चुनाव 'हाउस' ने किया और उसने जेफर्सन को राष्ट्रपति चुना। परन्तु जेफर्सन की जीत 'हाउस' मे पैंतीसवी बार जाकर मत लेने पर हुई, जिसमे यह प्रकट हो गया कि हारती हुई पार्टी भी 'हाउस' मे मतो का जोड-तोड करके जीतती हुई पार्टी की इच्छा को सुगमता से विफल कर सकती है।

इस उपहासास्पद परिणाम के कारण ही सविधान में बारहवा सशोधन किया गया, जिसके अनुसार अब निर्वाचक, राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति को अपना मत पृथक्-पृथक् देते हैं और जीते हुए उम्मीदवारो मे फैसला काग्रेस को नही करना पडता। परन्तु इस संशोधन से निर्वाचक-मण्डल बनाने का मूल प्रयोजन नष्ट हो गया। इसके द्वारा यह तथ्य मान लिया गया है कि पार्टिया विद्यमान हैं और निर्वाचक निरी रबर की मुहरें हैं जो कि पार्टियो द्वारा पहले से निश्चित उम्मीदवारो का ही मत देने के लिये बाधित हैं।

यहां यह समझ देना उचित होगा कि जेफर्सन की पार्टी जो आज की डिमाक्रेटिक पार्टी की पूर्ववर्ती मानी जाती है, आरम्भ में रिपब्लिकन पार्टी क्यों कहलायी थी।

सन् १८०० में जेफर्सनियनों ने अपने आपको "रिपब्लिकन" केवल इस कारण कहा था कि वे राजाओं के विरोधी थे। वे फ्रेंच क्रान्ति के भी पक्षपाती थे। उसे वे अमेरिकी क्रान्ति का अच्छा अनुकरण मानते थे। इसके विपरीत, 'फेडरलिस्ट' कुलीन फ्रेंचों का फांसी दिये जाने से और उनकी हत्याओं से क्षुब्ध हो उठे थे। फ्रांस के राजा से भी इनकी खासी सहानुभूति थी। उन्होंने जेफर्सनियनों पर 'डेमोक्रेट' अर्थात् फ्रेंच क्रान्ति का प्रेमी होने का आक्षेप किया। उस समय 'डेमोक्रेसी' शब्द का अर्थ था 'भीड़ का राज', और इसका प्रयोग उसी प्रकार किया जाता था जिस प्रकार हम "रेडिकलिज्म" शब्द का प्रयोग करते हैं, जिसका अर्थ है 'चरम परिवर्तन तक का पक्षपात।' पीछे, नेपोलियन के देहान्त के पश्चात्, इस शब्द की तीव्र भावना बहुत कुछ नष्ट हो गयी। परन्तु जब जेफर्सन राष्ट्रपति था तब वह अपने आपको उसी प्रकार 'डिमोक्रेट' नहीं कहता था जिस प्रकार आज के युग में फ्रैंकलिन रूजवेल्ट "रेडिकल" कहलाना पसन्द न करता।

'फेडरलिस्टों' ने जो फेडरल अर्थात् संघीय शासन स्थापित किया था उसकी सफलता के कारण ही वे शीघ्र नष्ट हो गये। एक बार संघ की स्थापना हो जाने पर, देश का विस्तार अति शीघ्र होने लगा। लोग अपालेचियन पर्वतमालाओं में होकर ओहायो और टेनिसी घाटियों में उमड़ पड़ने लगे, और पश्चिमी देश के मतदाताओं की संख्या उत्तर-पूर्वी नगरों से कहीं अधिक हो गयी।

सन् १८०१ में राष्ट्रपति का पद ग्रहण करने के पश्चात् जेफर्सन ने भी अमेरिका के विस्तार की लहर को तीव्र करने में योग दिया। उसने बलशाली संघीय शासन के विरुद्ध अपनी पहली आपत्तियों को भुला दिया और साहस करके मिसिसिपी नदी की सम्पूर्ण पश्चिमवर्ती घाटी लुइज़ियाना को खरीद डाला।

'फेडरलिस्ट' मुकाबला करने लायक नहीं रहे। उनकी पार्टी मृतप्राय हो गयी और सन् १८२० में वे अपना उम्मीदवार तक खड़ा नहीं कर सके। देश एक बार

पुन एकदलीय बन गया। इस समय को 'सद्भावना' का युग कहा जाता है, क्योंकि कुछ वर्ष तक विरोधी पार्टी रही ही नही थी। परन्तु धीरे-धीरे रिपब्लिकन नेताओ मे ही मतभेद उत्पन्न होने लगे और शीघ्र हा द्विदलीय सिद्धान्त पुन. लौट आया। रिपब्लिकन दो गुटो मे बँट गये। एक गुट का नेता जौनक्विन्सी ऐडम्स था। वह 'नेशनल रिपब्लिकन' कहलाता था और अधिक पुराने विचारो का पक्षपाती था। ऐडम्स सन् १८२४ मे राष्ट्रपति चुना गया। परन्तु सन् १८२८ मे दूसरा गुट, जो कि अपने आपको 'डिमोक्रटिक-रिपब्लिकन' कहता था, जीत गया और उसका प्रतिनिधि ऐण्ड्रू जेक्सन राष्ट्रपति हो गया।

सन् १८३२ मे नेशनल रिपब्लिकनो के उत्तराधिकारी ह्विग कहने लगे। इन ह्विगो का अठारहवी शताब्दी के क्रान्तिकारी ह्विगो या 'देश भक्तो' या इंगलैण्ड के ह्विगो के साथ कोई सम्बन्ध नही था। ये परिवर्तन- विरोधी थे और किसी ऐसे नाम की तलाश मे थे जिसके सहारे मत बटोरे जा सकें। इस काल मे 'फेडरलिस्ट-नेशनल रिपब्लिकन ह्विग' पार्टी पीछे रह गयी, क्योकि सीमान्त के राज्यो की सख्या बढती चली गयी और वे अपना मत जैक्सन-छाप राजनीति के पक्ष मे देते थे परन्तु ह्विग दो सैनिक नेता चुनने मे सफल हो गये, सन् १८४० मे विलियम-हेनरी हैरिसन को और सन् १८४८ मे जैकारी टेलर को।

सन् १८५० के पश्चात् दासता का प्रश्न अति तीव्र हो गया। ह्विगो और डिमोक्रेट रिपब्लिकनो, जो अब डिमोक्रेट कहलाने लगे थे, दोनो की पार्टियो में दासता के प्रश्न पर आन्तरिक मतभेद हो गया। उत्तरी और दक्षिणी डिमोक्रेटो मे भी परस्पर विरोध हो गया। ह्विग पार्टी बिखर गयी और दासता के विरोध के आधार पर एक नयी पार्टी बनी, जिसने अपना नाम 'रिपब्लिकन पार्टी' रखा। उसने अपना उम्मीदवार अब्राहम लिंकन को बनाया। सन् १८६० मे वह राष्ट्रपति चुना गया।

वाशिंगटन की चेतावनी के अनुसार सन् १८६० को दोनों पार्टियां "प्रदेशिक भेदो के आधार पर सगठित थी" और भावना मे इतना बही जा रही थी कि

उनका मतभेद भड़कीला सिद्ध हो गया। उच्च तट-कर के पक्षपाती उत्तर-पूर्वी व्यवसायियों और निम्न तट-कर के समर्थक दक्षिणी कपास उत्पादकों में, दासता के भावना पूर्ण प्रश्न के अतिरिक्त, पुराना विरोध भी बहुत समय से चला आ रहा था। इन दोनों विरोधों ने राष्ट्र को भी इन्हीं भौगोलिक प्रदेशों में बांट दिया। इस कारण विरोधी पक्ष, गृह-युद्ध के लिए अपना-अपना पृथक् सगठन करने लगे, और लिंकन के निर्वाचित होते ही गृह-युद्ध छिड़ गया।

गृह-युद्ध के पश्चात् अमेरिकी लोग उस प्रकार फिर कभी विभक्त नहीं हुए। उनके प्रादेशिक विवाद इतने तीव्र नहीं हुए कि वे अन्य विवाद उनकी तुलना में गौण हो जाय, जिनके कारण जनता भिन्न प्रकार विभक्त होती है—जैसे कि श्रमिकों के कानून, राष्ट्रीय व्यय, टैक्स, सामाजिक सुरक्षा, अथवा ट्रस्टों के विरोध आदि के विवाद। सारांश यह है कि अमीरों और गरीबों, नगरनिवासियों और किसानों के विवाद, उत्तर और दक्षिण अथवा उत्तर-पूर्व और पश्चिम के विवादों की अपेक्षा अधिक प्रबल रहते आये हैं। इन विवादों के कारण गृह-युद्ध की पृष्ठ-भूमि नहीं बनने पायी।

संयुक्त राज्य अमेरिका क्रान्तियों से भी सुरक्षित रहा है। सन् १७७५ के पश्चात् आन्तरिक क्रान्ति के लिए वैसी पृष्ठ-भूमि नहीं बनी जैसी कि रूस में केरेन्सकी वाली क्रान्ति अथवा जर्मनी और इटली में हिटलर और मुसोलीनी वाली क्रान्तियों के लिए बन गयी थी। संयुक्त राज्य अमेरिका में भीड़ ने कभी जो दंगे किये भी वे देश की विशालता के कारण और देश के बड़े भाग में न फैलने के कारण स्वयं ठण्डे पड़ गये। शासन को उलट देने वाले वैसे अभियान के कभी वाशिंगटन पर हो जाने की कल्पना तक करना कठिन है जैसा कि मुसोलीनी ने रोम पर किया था और जिसमें इटली का शासन उलट गया था।

इन भाग्यपूर्ण परिस्थितियों से यह भली प्रकार प्रकट हो जाता है कि आज की रिपब्लिकन और डिमोक्रेटिक पार्टियां किस प्रकार बनी। लगभग सौ वर्ष तक द्विदलीय पद्धति के अनेक रूपों की परीक्षा करने के पश्चात् अमेरिकी जनता पार्टियों

के ऐसे मेल पर पहुँच गयी है जिसमे अनेक उलझनो से भरे राजनीतिक झगडे तो चलते रहते हैं, परन्तु गृह-युद्ध तथा विद्रोह छिड जाने का भय नही रहता।

संयुक्त राज्य अमेरिका मे जो द्विदलीय पद्धति आजकल प्रचलित है उसका निर्माण किसी योजनाकी अपेक्षा स्वत प्रेरणा से अधिक हुआ है। इसके द्वारा बहुमतका ऐसा शासन संगठित हो जाता है जिस पर नियन्त्रण एक विजेता पार्टी का रहता है। अधिकतर समय, राष्ट्रपति, सेनेट और 'हाउस ऑव रिप्रेजेण्टेटिव्ज' (प्रतिनिधियो की सभा), तीनो पर एक हो पार्टी का नियन्त्रण रहता है। साथ हो, अल्पमत पार्टी इतनी बुरी तरह कभी पराजित नही होती कि वह आशा का सर्वथा परित्याग कर बैठे।

यह पद्धति, एक ओर तो युरोप मे प्रचलित बहुदलीय शासनो से और दूसरी ओर ब्रिटेन की द्विदलीय पद्धति से, सर्वथा भिन्न है। अमेरिकी पद्धति का अपना ही विशिष्ट युक्ति क्रम है, जो किसी युरोपियन की समझ मे तो आता ही नही, अग्रेज की समझ मे भी बहुत नही आता।

युरोपियन लोकतन्त्र के किसी भी नमूने मे अनेक पार्टिया होती हैं और उनमे से प्रत्येक के कुछ स्पष्ट निश्चित सिद्धान्त रहते हैं। एक पार्टी क्रिश्चियन-सोशलिस्ट और दूसरी कैथोलिक कन्जर्वेटिव हो सकती है। इतिहास की विचित्र गति के कारण हो सकता है कि जो पार्टी अपने को रेडिकल-सोशलिस्ट कहती हो वह, सम्भव है कि, मध्य वर्ग के व्यापारियो की प्रतिनिधि हो। और, कम्युनिस्ट तो वहां सदा रहते ही हैं। उनका अनुशासन सर्वोत्तम है और, वे उसी का साथ देने को तैयार हो जाते हैं जो उनके बहकावे मे आकर उनकी स्वार्थ-सिद्धि का साधन बनने की हामी भर ले।

बहुदलीय पद्धति की कल्पना इस आधार पर की गयी है कि प्रत्येक पार्टी को किसी सिद्धान्त का समर्थक होना चाहिए, जिससे कि जो भी कोई उस सिद्धान्त के पक्षपाती हो वे उस पार्टी मे सम्मिलित हो जायं और आगे बढने मे उसकी सहायता करें। आधुनिक जीवन अनेक उलझनो से भरा हुआ है, और राजनीतिक, आर्थिक

तथा सामाजिक सिद्धान्त भी बहुत से हैं, इसलिए पार्टियो की अनेक शाखा-प्रशाखायें हो सकती हैं और होती भी हैं।

परन्तु संसदीय पद्धति के जनतन्त्रीय शासन को अपनी ससद मे बहुमत का समर्थन प्राप्त करना पडता है। जब कभी प्रधान मन्त्री और उसके मन्त्रिमण्डल द्वारा प्रस्तुत कोई महत्वपूर्ण बिल स्वीकृत नही हो पाता तभी शासन का पतन हो जाता है। तब या तो प्रधान मन्त्री और उसके मन्त्रिमण्डल को पदत्याग कर देना पडता है और या, यदि उसके सविधान मे वैसी व्यवस्था हो तो, वे संसद को भग करके नया निर्वाचन करवा सकते हैं।

इसलिए युरोप के लोकतन्त्रीय देशो मे शासन का संगठन करने के लिए कई पार्टियो का परस्पर मेल करना पडता है, जिसमे कि उनका बहुमत हो जाय। इनमे से प्रत्येक पार्टी अपना 'दूध शुद्ध' होने का दावा करती है, परन्तु यदि वह ससदीय जनतन्त्र की समाप्ति करके तानाशाही की स्थापना न कर दे तो वह अकेली अपने 'शुद्ध दूध' के भरोसे देश का शासन नही कर सकती। लोकतन्त्रीय शासन मे भाग लेने के के लिए उसे अपने 'शुद्ध दूध' को अन्य दो या तीन पार्टियो के मिलावटी माल से पतला करना पडता है। इस कारण परम्परा ही यह पड गयी है कि अनेक सयुक्त मन्त्रिमण्डल बनते और बिगडते हैं और कोई भी टिककर उन्नति के मार्ग पर स्थिर प्रगति नही कर पाता।

अमेरिकियो की दृष्टि मे इस पद्धति मे अधिक निरुत्साह करनेवाली बात यह है कि जहाँ अनेक पार्टिया होती हैं वहा कभी-कभी नरम या "मध्य-मार्गी" पार्टियो का ही एक मात्र मोर्चा ऐसा रह जाता है जो देश को स्वतन्त्र रख सकता है।

साधारणतया स्थिति का वर्णन यह कहकर किया जाता है कि दक्षिण पक्ष मे तो फासिस्ट होते है, जो स्वतन्त्र शासन को उलटने और किसी नये मुसोलीनी या हिटलर को खडा करने का यत्न करते रहते हैं, और वामपक्ष मे कम्यूनिस्ट होते हैं जो सत्ता हथियाने का यत्न करते रहते हैं, जैसा उन्होने जैकोस्लोवेकिया मे किया

था। इस स्थिति से स्पष्ट है कि लोकतन्त्र पक्षपाती पार्टियों की स्थिति मध्य में होती है। उनमें से कुछ का झुकाव दक्षिण की ओर को अधिक होता है और कुछ का वाम की ओर को।

अनेक पार्टियों की पद्धति का वर्णन करने का यह तरीका दोषपूर्ण है क्योंकि इसमें इस बात का खतरा है कि दो एक तन्त्रवादी पार्टियां स्वातन्त्र्यप्रिय पार्टियों को एक दूसरे से विलग और दूर करने की प्रवृत्ति दिखावें। उदाहरणार्थ, फासिस्ट या नव नाजी, कुछ ईमानदार परिवर्तन-विरोधियों को यह कहकर अपनी ओर घसीट सकते हैं कि सभी दक्षिण-पक्षीय हृदय में इन्हीं विचारों के हैं। इसके विपरीत, अभावग्रस्त 'लिबरलों' (उदार विचारवालों) का कम्यूनिस्ट प्रायः यह नारा लगाकर बहका लेते हैं कि सभी 'वाम-पक्षियों' का एक संयुक्त मोर्चा होना चाहिए। ये जोड़-तोड़ यदि सफल हो जाएं तो राजनीतिक जीवन सर्वथा विरोधी दो पक्षों में बंट जाता है, और मतदाताओं को फासिस्ट या कम्यूनिस्ट एकवर्गाधिकार वादों में से एक का चुनाव करना पड़ जाता है। आत्मघात की दो विधियों में से एक को अपना लेने के अतिरिक्त अन्य कोई मार्ग बचा नहीं है, इस भ्रम में फंसने से बचे रहने का उत्तम उपाय यह है कि ऐसी आलंकारिक भाषा का प्रयोग न किया जाय जिसके कारण स्वतन्त्र संसार खाई और खड्डे के मध्य में फंसा हुआ प्रतीत होने लगे।

राजनीतिक प्रवृत्तियों की इस स्थिति को चित्रित करने का अच्छा उपाय एक ऐसी सीधी रेखा खींच देना नहीं है जिस के सिरों पर बैठ कर फासिस्ट और कम्यूनिस्ट, मध्य में बैठी हुई लोकतन्त्रीय शक्तियों पर आक्रमण कर रहे हों। वास्तविक स्थिति उस लम्बे पतले त्रिकोण के समान है जिसके शीर्ष पर तो लोकतन्त्रीय संस्थाएं और पार्टियां हों, और शेष दोनों कोणों पर प्रतिस्पर्धी एकवर्गाधिकार पक्षपाती शक्तियां जमी हुई हों। फासिस्ट अर्थात् चरम-प्रतिक्रियावादी और कम्यूनिस्ट अर्थात् चरम-परिवर्तन पक्षपाती, दोनों, एक-वर्गाधिकारवादी पुलिस-राज स्थापित करने का यत्न करते रहते हैं। वे लड़ते भी हैं तो बदमाशों के उन दो गिरोहों की तरह जिन में झगड़ा इस बात पर होता

है कि लूट पर अधिकार किसका रहे। वे बहुधा मिल भी जाते हैं, जैसे कि सन् १६३६ में हिटलर और स्तालिन मिल गये थे। जिस संसद में फासिस्ट और कम्यूनिस्ट पार्टियों की सदस्य-संख्या इतनी अधिक होती है कि वे भय का कारण बन सकें, वहां वे पार्टियां शासन को नष्ट कर देने की आशा में प्रायः मिलकर मत देती हुई दिखाई पड़ती हैं।

लोकतन्त्र विरोधी पार्टियों के सदस्यों को जहां भी लूट का अधिक अच्छा अवसर दिखाई पड़ता है वे अपनी पार्टी छोड़कर झट वहीं चले जाते हैं। उदाहरणार्थ, पूर्वी जर्मनी की कम्यूनिस्ट सरकार को बहुत से भूतपूर्व नाजियों का भी खासा उपयोग दिखाई देता है, विशेषतः सेना में।

अमेरिकियों को अनेक पार्टियों की पद्धति में सबसे भयानक निर्बलता यह दीखती है कि प्रत्येक नये निर्वाचन में देश की स्वतन्त्रता एकमात्र इस बात पर निर्भर करने लगती है कि जीत लोकतन्त्रीय 'मध्यम' पार्टियों की हो। दूसरे शब्दों में, प्रत्येक नया चुनाव स्वतन्त्रता और आपत्ति के मध्य में एक सम्मुख्य हो जाता है। इसमें एकमात्र विकल्प जलते तेल की कढ़ाई में से कूद कर आग में गिरने का रह जाता है। द्वितीय विश्व-युद्ध के पश्चात् यूरोप के कई देश इसी स्थिति में पड़े हुए हैं। लोगों को अपने यहाँ का शासन पसन्द हो या न हो, उनके लिए कढ़ाई में पड़े रहने के सिवाय और कोई चारा है भी नहीं। यदि वे इससे बाहर निकलेंगे तो एकवर्गाधिकार की उस आग में गिर जायेंगे जिसमें पूर्वी यूरोप के लोग भुन रहे हैं।

अमेरिकी पद्धति यद्यपि अपूर्ण है तथापि इसमें इतना गुण अवश्य है कि यह जनता को स्वतन्त्र शासन के विकल्पों में से चुनाव का अवसर प्रदान करती है। लोगों को यह सोचने का अवसर मिलता है कि समृद्धि को स्थिर रखने, या राष्ट्र की रक्षा-व्यवस्था करने, या अपव्यय और भ्रष्टाचार से बचकर चलने के लिए, दोनों में से कौन सी पार्टी अच्छी रहेगी। चुनाव की गरमी के क्षणों के अतिरिक्त, लोगों को विश्वास रहता है कि जिस पार्टी का हम विरोध कर रहे हैं यदि वही

जीत गयी तो वह भी कम से कम अमेरिका-प्रेमी और लोकतन्त्र-पक्षपाती तो रहेगी ही। बडी पार्टियो मे ऐसी आत्मघाती एक भी नही जो यदि जनता की असावधानता से कभी पदारूढ पार्टी को पद-च्युत करने मे सफल हो जाय तो देश को सोवियट रूस के सपुर्द करने की सोचने लगे।

परन्तु इस स्वतन्त्र चुनाव का मूल्य यह है कि दोनों पार्टियो को संयुक्त राज्य अमेरिका का उचित प्रकार शासन करने के लिए आवश्यक नेताओ, अनुयायियो और सिद्धान्तो से सम्पन्न होना चाहिए। विजेता पार्टी को न्यून या अधिक इमानदारी से, उन सब सुस्थापित सिद्धान्तो मे विश्वास रखनेवाला होना चाहिए जिसका जनता अपने शासक से पालन करवाना चाहती है।

एक बार यह मान लेने पर कि अमेरिकी द्विदलीय पद्धति मे दोनो पार्टियो के लिए प्रायः उन सब सिद्धान्तो और कार्यक्रमो को अपनाना आवश्यक है जिनकी मतदाताओ का कोई बडा भाग मांग करे, "जैसे नागनाथ वैसे सापनाथ" की कहावत का प्रयोग अर्थपूर्ण और आवश्यक लगने लगता है। प्रत्येक पार्टी चुनाव से पहले ही मतदाताओ को यह दिखलाने का प्रयत्न करती है कि उसके शासन का रूप क्या होगा। इसलिए उसे उनकी अधिक महत्वपूर्ण आवश्यकताओ की पूरी सूची भी तैयार करनी पड़ती है। इस कारण इसमे आश्चर्य की बात कुछ नही कि अमेरिकी मतदाताओ को प्राय. ऐसा लगता है कि रिपब्लिकन और डिमोक्रेटिक कार्यक्रम एक से हैं और अन्तर केवल उनके उम्मीदवारो मे है। पार्टी का संगठन चुनाव जीतने और शासन पर नियन्त्रण प्राप्त करने के लिए है, एक आदर्श के स्थान पर दूसरे को स्थापना करने के लिए नही।

परन्तु यह सर्वथा सत्य नही है कि पार्टियो के उम्मीदवार ही पृथक् होते हैं, उनके सिद्धान्त और कार्यक्रम प्राय. एक से होते हैं। नागनाथ सर्वथा वही नहीं होता जो कि सापनाथ।

किसी अमेरिकी के लिए किसी विदेशी को यह समझाना कठिन है कि रिपब्लिकनो और डिमोक्रेटो मे अन्तर क्या है। अंग्रेज द्विदलीय पद्धति का अभ्यासी

है परन्तु उक्त अन्तर वह भी सुगमता से नहीं समझ पाता। आन्दोलन के मापनों के अतिरिक्त भी दोनों पार्टियों के परिवर्तन विरोधियों, उदार-विचारवालों, जिन्हें "जंगली गीदड़ के बच्चे" कहा जाता है उनमें, और दोनों की प्रादेशिक स्थितियों में कुछ अन्तर है ही। अल्पमत पार्टी प्रायः पदारूढ़ पार्टी की अपेक्षा बजट को अधिक कठोरता से घटाना चाहती और राज्यों के अधिकारों का अधिक पक्ष लेती है। अनेक स्थानीय अथवा प्रादेशिक स्वार्थों से भी एक पार्टी दूसरी की अपेक्षा अधिक प्रभावित होती है।

'फेडरलिस्टों' और जेफर्सनियनों में पुराने अन्तर के अवशेष भी अभी शेष हैं। कुछ रिपब्लिकन व्यावसायिक स्वार्थों का और कुछ डिमोक्रेट श्रमिकों का अधिक ध्यान रखते हैं, परन्तु दोनों पार्टियों में बहुत से अपवाद भी हैं। व्यवहार में साधारणतया देखा जाता है कि वैदेशिक या आन्तरिक मामलों के महत्वपूर्ण विलों पर कांग्रेस के बहुमत और अल्पमत, दोनों दलों में आन्तरिक मतभेद हो जाता है, परन्तु सदा एक ही प्रकार नहीं।

दोनों पार्टियों के जो मतदाता, उम्मीदवार का विचार किये बिना, सदा रिपब्लिकन या डिमोक्रेट पक्ष में ही मत देते हैं उनका निर्वाचन-मण्डल में निश्चित बहुमत नहीं है। अमरीकी लोग द्विदलीय पद्धति का जो रूप समझते हैं उसकी यह भी एक विशेषता है। यदि एक ही पार्टी की जीत निश्चित हो जाती तो मतदाताओं पर एक ही दलीय पद्धति लद जाती। तब एक पार्टी को दो भागों में विभक्त होना पड़ता, जैसा कि डिमाक्रेटिक-रिपब्लिकनों ने सन् १८२४ में किया था। जब द्विदलीय पद्धति ठीक प्रकार काम कर रही होती है तब चुनाव का निर्णय वे मध्यवर्ती निर्वाचक करते हैं जो स्वतन्त्र कहलाते हैं। वे दोनों पार्टियों के वचनों को तोल कर अपना मत देने का निश्चय करते हैं। प्रत्येक चुनाव में ये स्वतन्त्र मतदाता डिमोक्रेटों और रिपब्लिकनों में अन्तर के किसी प्रचलित विचार को ठीक मान कर चलते हैं। उनको उस समय जैसा भी लगता है उसके अनुसार वे रिपब्लिकनों को डिमोक्रेटों की अपेक्षा, अथवा उससे उलटा डिमोक्रेटों को रिपब्लिकनों की अपेक्षा, अधिक परिवर्तन-विरोधी मान लेते हैं। इसके अतिरिक्त समृद्धि, या

भ्रष्टाचार या शान्ति सम्बन्धी विचारो का भी इन पर प्रभाव पडता है। परन्तु सबसे अधिक ये यह देखते हैं कि राष्ट्रपति पद का उम्मीदवार कौन व्यक्ति है।

कुछ राज्यो का 'ठोस' डिमोक्रेटिक और कुछ का 'ठोस' रिपब्लिकन होना संयुक्त राज्य अमेरिका मे साधारणतया लोकतन्त्रीय पद्धति का दोष माना जाता है। संघीय निर्वाचन मे इन राज्यो के सामने कोई विकल्प नही रहता, स्थानीय रूप से प्रबल पार्टी के प्रारम्भिक निर्वाचनो मे ये प्रतिस्पर्धी उम्मीदवारो मे से एक का चुनाव भले ही कर दें। परन्तु राष्ट्रीय निर्वाचनो मे इन एकदलीय राज्यो की प्रबलता नही होती, इसलिए राष्ट्र मे लोकतन्त्र सुरक्षित रहता है। भाग्यवश संयुक्त राज्य अमेरिका मे किसी ऐसे 'ठोस' धार्मिक या जातीय समाज का प्रभाव नही है जो कि उम्मीदवारो या समस्याओ का विचार किये बिना अपने मत सामूहिक रूप से दे। अमेरिकनो की दृष्टि मे लोकतन्त्र का आधार ही यह है कि मतदाता निर्वाचनो का निर्णय उम्मीदवारो और नीतियो का स्वतन्त्र चुनाव कर के करें।

ब्रिटेन की द्विदलीय पद्धति कुछ भिन्न प्रकार की है। ब्रिटिश लोगो का विश्वास है कि 'लेबर' और 'कन्जर्वेटिव' पार्टियां अपनी नीतियो और सिद्धान्तो के कारण, डिमोक्रेटो और रिपब्लिकनो की अपेक्षा, एक दूसरे से अधिक भिन्न हैं। यदि ऐसा हो तो इसे कुछ स्पष्ट कर देना आवश्यक है।

शायद इसका उत्तम स्पष्टीकरण यह है कि किसी भी अच्छी द्विदलीय पद्धति मे मतदाताओ को, बिना किसी गृह-युद्ध के, दोनो मे से एक पार्टी को चुनने की स्वतन्त्रता तो होती ही है, वे नीतियो और मार्गो का चुनाव भी यथा-सम्भव अधिक विविध प्रकारो मे से करना चाहते है। संयुक्त राज्य अमेरिका मे राष्ट्रीय प्रगति की मुख्य दिशा के विषय मे किसी भी प्रकार का विवाद नही है। बड़ी पार्टियो मे से कोई भी तानाशाही या अर्थव्यवस्था के विनाश, या अन्य किसी आपत्ति के मार्ग को अपनाना नही चाहती। परन्तु यह एक चौड़ी सडक है, जिसमे छोटी बडी गलियां तो है ही। कभी-कभी घूमकर छोटे रास्ते से निकल जाने का अवसर भी है। पार्टियो के रुख मे वास्तविक अन्तर निर्वाचन मे जनता के चुनाव का विषय बन जाता है।

विरोधी पार्टी निर्णतव्य प्रश्नो का निश्चय मतदाताओं की ऐसी आलोचनाओ और असन्तोषो को देखकर करती है जिनके सहारे उसे आशा हो कि वह उन्हें पदारूढ पार्टी का विरोधी बना सकेगी। परन्तु दोनो पार्टियां ऐसे प्रश्नों से बचकर चलती हैं जिनके कारण बहुसख्यक मतदाताओं के बिदक जाने की सम्भावना हो। व्यवहार कुशल राजनीतिज्ञो द्वारा निर्णतव्य प्रश्नो के निश्चय का फल यह होता है कि पार्टियों मे मतभेद तो यथेष्ट रहता है, परन्तु उन पर "संविधान को उलट देने" का आक्षेप नही आने पाता।

अमेरिकी पार्टियाँ यदि ब्रिटिश पार्टियो से अधिक भिन्न हैं तो इसका कारण यह है कि ब्रिटिश राजनीतिक नेता, जनता को इस प्रकार डराये बिना कि वे चुनाव हार जायं, चुनाव जीत जाने की दशा मे अधिक बडे परिवर्तन करने की प्रतिज्ञाएं कर सकते है। ब्रिटिश जनता अमेरिकनो की अपेक्षा कम उत्तेजित होती है, कम से कम तब से जब कि प्रथम विश्व युद्ध मे कुछ पहले उत्तरी आयरलैंड मे विद्रोह हो जाने का भय हो गया था। ब्रिटिश लोग एक भी गोली छोडे बिना चर्चिल से कूदकर ऐटली पर जा सकते और फिर वापिस चर्चिल पर आ सकते हैं। अमेरिकी लोग शायद समाजवादियो की जीत का सामना इतनी शान्ति से न कर सकते, परन्तु वे भी गृह-युद्ध के बिना ही हूवर से रूजवेल्ट पर ट्रूमन से आईजनहावर पर छलांग लगा सकते हैं। व्यावहारिक द्विदलीय पद्धति मे दोनो पार्टियों में अन्तर का यह यथासम्भव ठीक अन्दाजा है।

डिमोक्रेटिक और रिपब्लिकन पार्टियो मे अनेक बेसुरे तत्व हैं परन्तु विभिन्न अनुपातों में दोनो पार्टियों को सदा अपने जाने का भय रहता है। परन्तु नेताओ की अगले चुनाव जीतने की इच्छा पार्टी को एकत्र बनाये रखने की शक्ति का काम करती है। कभी-कभी कोई विद्रोही नेता पार्टी से पृथक् होकर एक तीसरी लेड पार्टी बना लेता है, क्योकि वह समझता है कि पार्टी अत्यन्त परिवर्तन-विरोधी हो गयी है। थियोडोर रूजवेल्ट ने सन् १९१२ मे इसी प्रकार रिपब्लिकनो मे पृथक् होकर "प्रोग्रेसिव" अथवा 'बुल-मूज' पार्टी बना ली थी। राबर्ट ला फोलैट (बडे ने) सन्

१६२८में एक प्रोग्रेसिवकी हैसियत से ही आन्दोलन किया था। वह भी रिपब्लिकन पार्टी से ही फूटकर पृथक् हुआ था। सन् १६४८ मे दो पार्टियां डिमोक्रेटिक पार्टी से फूटकर बनी थी। डिमोक्रेटिक पार्टी की आलोचना वालेस के अनुयायी 'प्रोग्रेसिव' उसे अति अपरिवर्तन-वादी बतलाकर, और 'डिक्सीक्रैट' उसे अत्यन्त चरम-परिवर्तन-पक्षपानी ( रेडिकल ) बतलाकर करते थे। इन दोनो फक्का पार्टियो मे से कोई भी पुरानी पार्टी को नष्ट करके उसका स्थान नही ले सकी। परन्तु सन् १६१२ मे 'बुल-मूजरो' के फट जाने के कारण रिपब्लिकन हार गये थे और उडरो विलसन चुनाव जीत गया था।

अन्य पार्टियो की आधार-भूत निर्बलता यह है कि वे झगडे का आरम्भ सदा किसी सैद्धान्तिक कारण से करती हैं और उनकी ओर आकृष्ट केवल वे मतदाता होते हैं जो उस सिद्धान्त के भक्त होते हैं। इन फटी हुई लप्पच पार्टियो के अनेक अनुयायी स्पष्ट भाषा मे नागनाथ और सापनाथ को समाप्त करके पार्टियो का पुनर्गठन सिद्धान्तो के आधार पर करने का प्रतिपादन करते हैं।

वे सब परिवर्तन-विरोधियो को—दक्षिण-पन्थियो मे पागलपन की सीमा पर पहुचे हुए फासिस्टो तक को—एक 'कन्जर्वेटिव' ( परिवर्तन विरोधी ) पार्टी मे, और सब उदार विचार वालो को,—जो कम्युनिस्टो का और वामपन्थियो मे पागलो तक का स्वागत कर सकें—एक "प्रोग्रेसिव" अर्थात् प्रगतिशाली पार्टी मे एकत्र देखना चाहते हैं। उनका विचार है कि मतदाताओ को सच्चे निर्वाचन का अवसर तभी मिल सकेगा।

परन्तु भेडो और बकरियो की छटाई के इस सुझाव का फल दोनो के एक दूसरे से बिल्कुल दूर भाग खडे होने के अतिरिक्त और कुछ नही होगा, और यह आत्मघात कर लेने का मूर्खतापूर्ण मार्ग है। कोई भी जीवित रहने योग्य जनतन्त्र किसी न किसी प्रकार ऐसी किसी दमनीय पद्धति की खोज कर ही लेता है जिससे लोगो को अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा करने का अवसर मिल जाय, वह कितनी ही अपूर्ण क्यो न हो। अमेरिकी रिपब्लिकनो और डिमोक्रेटो की पद्धति, अनेक परस्पर विरोधी स्वार्थों को, एक दूसरे के नाश का प्रयत्न किए बिना, एकत्र रहने के लिए

सहमत कर लेती है। यह त्रुटियों और तर्क-विरुद्ध समझौतों से परिपूर्ण है, परन्तु अब तक यह विनाश से बचती चली आयी है।

संयुक्त राज्य अमेरिका में दो मुख्य पार्टियों के संचालक अनुभवी राजनीतिज्ञों में से अधिकतर इस विचार से सहमत नहीं हैं कि परस्पर विरोधी पार्टियों का संगठन तर्क के आधार पर किया जाय। यदि कुछ असन्तुष्ट मतदाता, फूटकर कोई तृतीय पार्टी खड़ी कर लें तो वे अपना द्वार उनके लिए बन्द नहीं कर देते। वे समझौते का मार्ग पसन्द करते हैं, जिससे तृतीय पार्टी के जितने भी मतदाता आ सकें उतने वापिस आ जाय। वे तृतीय पार्टी के केवल उन नेताओं के लिए दरवाजा बन्द करते हैं जिन्हें वे झगड़ालू समझते हैं और जिनसे भय होता है कि वे अन्य मतदाताओं को भी बहका ले जायेंगे। विभिन्न विरोधी तत्वों को एकत्र करने की यह प्रवृत्ति ही द्विदलीय पद्धति का मुख्य बल है।

मुख्य संगठनों को चुनौती देने का यत्न करनेवाली इन तृतीय पार्टियों के अतिरिक्त, अनेक गौण पार्टियाँ भी अनिश्चित संख्या में होती हैं। इनमें से कुछ अपने प्रदेश में प्रभावशाली होती हैं। उदाहरणार्थ, इस शताब्दी के आरम्भिक वर्षों में फार्मर-लेबर ( किसान-मजदूर ) और प्रोग्रेसिव ( प्रगतिशाली ) पार्टियाँ मध्य-पश्चिम में राज्य विधान मण्डलों के चुनाव जीत गयी थी।

अन्य गौण पार्टियों का क्षेत्र तो राष्ट्र-व्यापी होता है, परन्तु उन्हें कुछ लाख से अधिक मत कभी नहीं मिलते। उनके सदस्यों को राज्यों तक के चुनाव जीतने की आशा नहीं होती—यद्यपि मिलवौकी और ब्रिजपोर्ट नगरों पर सोशलिस्टों का नियन्त्रण बहुत समय तक रह चुका है। छोटी पार्टियों को आशा रहती है कि यदि हमारा नाम निर्वाचन में सामने आ गया और हमने अपने उत्साही अनुयायियों को, थोड़ी संख्या में भी क्यों न हो, संगठित कर लिया तो हम बड़ी पार्टियों को अपने संगठित मतों का लालच देकर अपना कार्यक्रम अपनाने के लिए प्रेरित कर सकेंगे। छोटी पार्टियों से एक लाभ यह होता है कि उनके सहारे छोटे संगठन भी अपने ऐसे विचारों का विज्ञापन कर सकते हैं जो अभी अपनाये जाने योग्य नहीं हुए। परन्तु उनके नेताओं को शासन में सम्मिलित करने का वचन कोई नहीं देता। उदाहरणार्थ,

बीसवी शताब्दी के आरम्भ मे जो समाजवादी विचार प्रस्ट किए गये थे उनमे से अधिकतर आज विभिन्न नामो से, डिमोक्रेट और रिपब्लिकन दोनो पार्टियो के आन्दोलनो का अंग बन चुके है। एक बार मद्य-निषेध के पक्षपातियो ने अपने विचार को सविधान के एक संशोधन के रूप मे स्वीकृत करवा लिया था। कम्यूनिस्ट पार्टी बहुत कम मत प्राप्त कर पाती है, परन्तु यह अपने मत किसी प्रतिक्रिया-वादी उम्मीदवार को देकर या किसी उदार उम्मीदवार का अनचाहा समर्थन करके, निर्वाचन को शायद कुछ न कुछ प्रभावित कर लेती है।

अन्त मे उन छोटी-छोटी टुकडियो की चर्चा कर देना भी आवश्यक है जो कि चुनाव मे चुस्ती से भाग लेती और उस पर कुछ प्रभाव डाल लेती है, क्योकि उसके बिना संयुक्त राज्य अमेरिका की दलगत राजनीतिक पद्धति का विवरण पूरा नही होगा। इन टुकडियो का नाम निर्वाचन मे सामने नही आता। ये अपने उम्मीदवार को अप्रत्यक्ष रूप से खडा करती है, अर्थात् उने किसी बडी पार्टी से नामजद करवा देती हैं।

उदाहरणार्थ, अमेरिका मे 'लेबर' या श्रमिक पार्टी नही है। इसका कारण यह है कि बहुत समय हुआ जब 'अमेरिकन फेडरेशन ऑव् लेबर' अर्थात् अमेरिकी "श्रमिक-संघ ने निश्चय कर दिया था कि श्रमिको के मत भी दोनो बडी पार्टिया आपस मे बाट सकेंगी। श्रमिक नेता उन्ही उम्मीदवारो का समर्थन करने लगते है जिन्हे वे अपना मित्र समझते हैं। किसी स्थान पर वे किसी रिपब्लिकन का समर्थन करते हैं तो किसी अन्य स्थान पर किसी डिमोक्रेट का। उनका विचार है कि श्रमिक मतो को एक असफल पार्टी के रूप मे अलग बाध कर डाल देने की अपेक्षा जीतती हुई पार्टी को प्रभावित करके अधिक लाभ उठाया जा सकता है। इसके अतिरिक्त यह भी स्पष्ट नही है कि संयुक्त राज्य अमेरिका में कोई पृथक् "श्रमिक मतदाता" है। अमेरिकी श्रमिक अपना मत अपनी यूनियन के नेताओ की सलाह से नही देते। इससे प्रकट होता है कि जिसे "वर्ग-चेतना" कहा जाता है वह अमेरिका मे उतनी प्रबल नही है जितनी युरोप के कई देशो मे।

राजनीति मे भाग लेने वाले संगठन और भी हैं। ये प्रायः व्यवसाय के आधार पर संगठित हैं। उनके नाम हैं—"युनाइटेड स्टेट्स चेम्बर ऑव कामर्स ऐण नेशनल

असोसिएशन ऑव मेन्युफेक्चरर्स" अर्थात् अमेरिका के व्यापारियों की सभा तथा निर्माताओं का राष्ट्रीय संघ, "द फार्म ब्यूरो फेडरेशन" या किसान-संस्था-संघ, "द ग्रेन्ज" (ग्रामीण जमींदारों की पचायत), और "द फार्मर्स् यूनियन और एग्रिकल्चर" ( कृषि की उन्नति चाहनेवाली किसान-सभा ), "द लीग ऑव विमेन वोटर्स ऐण्ड जनरल फेडरेशन ऑव् विमेन्स क्लब्स" ( स्त्री मतदाताओं की लीग तथा स्त्री क्लबों का संघ ), "अमेरिकन लीजन ऐण्ड वेटरन्स ऑव फारिन वार्स" ( अमेरिकी सेना और विदेशी युद्धों से निवृत्त सैनिक ), और "द डॉटर्स ऑव् द अमेरिकन रेवोल्यूशन" ( अमेरिकी क्रान्ति की पुत्रियां )।

कर लगाने के प्रयोजन से कानून इन सगठनों को दो भागों में बाट देता है। एक तो वे जो अपने स्वार्थों की सिद्धि के लिए कानून-निर्माताओं पर प्रभाव डालने का यत्न करते हैं और दूसरे वे जो देश के लाभ के लिए सार्वजनिक समस्याओं का अध्ययन करते हैं। जिस आय पर सघीय आय-कर लग सकता है उसमें से राजनीतिक पार्टियों अथवा कानून-निर्माताओं को प्रभावित करने के लिए बनाये गये सगठन को दिया हुआ चन्दा घटाया नहीं जाता।

इस प्रकार प्रमुख राजनीतिक पार्टियों को अनेक प्रकार के प्रभावों और दबावों के उलझे हुए जाल में काम करना पड़ता है। वे न केवल प्रत्येक मतदाता की सम्भावित आवश्यकताएं समझ कर उसे सन्तुष्ट रखने का यत्न करती हैं, उन्हें उन 'दुष्ट स्वार्थों' की पूर्ति भी करनी पड़ती है जो कि 'धुआं भरे कमरे' में बैठे व्यक्तियों की अदृश्य नकेल खींचते रहते हैं। दोनों पार्टियां नाना प्रकार की ऐसी छोटी पार्टियों और निजी संगठनों से घिरी रहती हैं जो कि न जाने किस-किस स्वार्थ की सिद्धि करना चाहते हैं और जिन में से प्रत्येक यह दावा करता है कि उसके पास हजारों मत बंधे-बंधाये तैयार हैं और जो कोई खरा वचन देगा वे उसको भेंट कर दिये जायगे। पार्टियों के नेताओं का काम न केवल यह देखना है कि किस-किस को मिलाकर क्या वचन देना ठीक होगा, अपितु अन्त में क्या काम करना ठीक रहेगा, जिससे मतदान में उनकी ही पार्टी जीते।

अध्याय ३

# राजनीतिक दलो का विकास और उनकी कार्य प्रणाली

अमेरिकी राष्ट्रपति के निर्वाचन मे जब राजनीतिक दलो ने पहले पहल भाग लिया तब उनके सगठन राष्ट्रव्यापी नही थे। तब जो राष्ट्रीय नेता राष्ट्रपति बनना चाहते थे उनकी परस्पर प्रतिस्पर्धा और राष्ट्रीय नीतियो के विषय मे लोगो के मतभेदो के अतिरिक्त, सगठित पार्टियों जैसी कोई वस्तु नही थी। कांग्रेस ही परस्पर विरोधी भागो मे विभक्त हो जाती थी और प्रत्येक भाग अपना कॉकस (सम्मेलन) करके अपना उम्मीदवार चुन लेता था। परन्तु शीघ्र ही इन 'कॉकसो' की लोक-प्रियता नष्ट हो गयी। पार्टियो के जो नेता कांग्रेस मे नहीं थे वे भी चाहते थे कि चुनाव और नामजदगी मे हमारी बात रक्खी जाय। वे एक ओर तो मतदाताओ को नाराज करना और खोना नही चाहते थे और दूसरी ओर उम्मीदवारो की नामजदगी अपने हाथो मे रखना चाहते थे। उन्होने अपनी इस इच्छा-पूर्ति के लिए जो प्रयत्न किये उनसे ही पार्टियो का विकास हो गया।

सन् १८२४ मे डिमोक्रेटिक 'कॉकस' ने ऐण्ड्रू जैक्सन को नामजद नही किया। इससे मतदाताओ को निराशा हुई। चार वर्ष पश्चात् यह भूल सुधार दी गयी, जैक्सन चुन लिया गया, परन्तु नामजदगी की 'कॉकस' पद्धति की लोकप्रियता समाप्त हो गई। तब विरोधी पार्टिया 'कन्वेन्शनो' अर्थात् इसी प्रयोजन से बुलाये

गये विशेष सभा-सम्मेलनों में एकत्र होने लगी। स्थानीय 'कन्वेन्शनों' में प्रतिनिधियों का चुनाव राज्य 'कन्वेन्शनों' के लिए, और राज्य 'कन्वेन्शनों' में राष्ट्रीय 'कन्वेन्शन' के लिए होता था। ये 'कन्वेन्शन' क्रमश: स्थानीय, राज्यीय और राष्ट्रीय पदों के उम्मीदवारों का चुनाव भी करते थे। यह पद्धति एक प्रकार से लोकतन्त्रात्मक थी क्योंकि इसमें पार्टी के कार्यकर्ता-सदस्यों को विविध स्तरों पर एकत्र होने और मत देने का अवसर मिल जाता था। दूसरी ओर जो साधारण मतदाता पार्टी के कार्यकर्ता-सदस्य नहीं होते थे उन्हें निर्वाचन-दिवस के अतिरिक्त कभी कुछ कहने-सुनने का अवसर नहीं मिलता था। इसके विरुद्ध भी शिकायत हुई और कालान्तर में इसका परिणाम बहुत से राज्यों में 'प्राइमरी' अर्थात् प्राथमिक चुनावों की पद्धति अपनाये जाने के रूप में प्रकट हुआ।

अब प्रायः सब राज्यों में निर्वाचन-वर्ष के वसन्त में या ग्रीष्म के आरम्भ में 'प्राथमिक चुनाव' होते हैं, और उनमें पार्टियाँ स्थानीय और राज्यीय पदों और कांग्रेस की सदस्यता के उम्मीदवार चुनती हैं। कुछ राज्यों में राष्ट्रीय 'कन्वेन्शन' के प्रतिनिधि भी प्राथमिक चुनाव से चुने जाते हैं। वे 'कन्वेन्शन' में कम से कम शुरू के कुछ मतदानों में राष्ट्रपति के किसी विशेष उम्मीदवार का समर्थन करने के लिए वचन-बद्ध हो सकते हैं। यह भी सम्भव है कि 'प्राथमिक' के मत-पत्र में एक स्थान ऐसा रक्खा जाय जहाँ मतदाता राष्ट्रपति पद के लिए अपनी पसन्द प्रकट कर सकें।

परन्तु 'प्राथमिक' चुनावों की पद्धति अभी इतनी विकसित नहीं हुई कि रिपब्लिकन या डिमाक्रेटिक कन्वेन्शनों के एकत्र होने से पहले ही राष्ट्रपति पद के लिए इस पार्टी के उम्मीदवार का निश्चय हो जाय। जो उम्मीदवार प्राथमिक चुनावों में मत्त्व हाने के पश्चात् 'कन्वेन्शन' में नामजदगी प्राप्त नहीं कर पाते वे स्वभावतः चाहते हैं कि राष्ट्रपति का उम्मीदवार चुनने के लिए राज्यों के प्रायमिक चुनाव मण्डली की संख्या और अधिकार बढ़ जाय। इसके विपरीत, जिन पेशेवर राजनीतिज्ञों को 'कन्वेन्शन' चलाने का अभ्यास पड़ चुका है, वे चाहते हैं कि नियन्त्रण हमारे ही हाथ में रहे।

जबतक राष्ट्रपति पद के लिए पार्टी का उम्मीदवार नामजद करने का वास्तविक अधिकार राष्ट्रीय 'कन्वेन्शन' के हाथ में बना रहेगा तबतक जनता की रुचि उसमें एक राजनीतिक उत्सव के रूप से ही रहेगी।

जिन लोगों ने 'कन्वेन्शन' की अव्यवस्थित भीड और हल्ले-गुल्ले को देखा है वे प्राय आश्चर्य करते हैं कि अमेरिका सरीखा महान् लोकतन्त्रीय राष्ट्र अपने राष्ट्रपति को ऐसे गडबड, भीड और हल्ले-गुल्ले में चुना जाना सहन भी कैसे कर लेता है। परन्तु ऐसा भ्रम उन्हें ऊपर के दृश्य को ही वास्तविक वस्तु समझ लेने के कारण होता है। 'कन्वेन्शन' में प्रतिनिधि राष्ट्रपति को चुनने के लिए एकत्र नहीं होते। वे वहा पार्टी के अन्य साथी सदस्यो से परिचय करने और जनता का उत्साह बढाने के लिए एकत्र होते हैं। परन्तु अनुभवी राजनीतिक नेता इस दृश्य की ओट में ऐसे उम्मीदवार की खोज पर अपना ध्यान और शक्ति केन्द्रित किये रहते हैं जो पार्टी को सगठित रख सके और स्वतन्त्र मतदाताओं को आकर्षित कर सके। नेता लोग प्रतिनिधियो की इच्छा की भी उपेक्षा नहीं करते।• वे छोटी-छोटी बैठकों में उनसे बातचीत करके उनकी इच्छा जानते रहते हैं। ये सभाएं टेलिवीजन के पर्दे पर नही दिखाई जाती।

इसी समय प्रतिनिधियो का उत्साह बैण्ड-बाजो, फौजी कवायदो और अन्य प्रदर्शनो के द्वारा बढाया जाता है। और ऋतु की स्वाभाविक गरमी तो वहा होती ही है। जब उम्मीदवार अन्तिम रूप में चुना जा चुकता है तब 'युद्ध का नाच' अपनी चोटी पर पहुँच जाता है, और वह तबतक चलता ही रहता है जबतक कि पराजित पक्षवाले भी जोशखरोश और हल्ले-गुल्ले में हारकर खुशियो और खेला में शामिल नही हो जाते।

जो लोग इस हा-हू और उछल कूद को टेलिवीजन के पर्दे पर देखते हैं उनमे से बहुतों को यह हरकत असभ्यतापूर्ण लगती है। नि सन्देह यह वैसी ही है भी। परन्तु मानव जाति के विकास में युद्ध के नाचों का इतिहास बहुत पुराना और सफलता का इतिहास है। सारे ससार में असभ्य जातिया कबीलों को इकट्ठा करने

और मुग्ध लोगों को उठाने तथा लड़ाई में लगाने के लिए अन्त प्रेरणा से युद्ध के नाचा का प्रयोग करती रही हैं। जिन अनुभवी राजनीतिज्ञों ने राष्ट्रीय 'कन्वन्शनों' की नींव डाली थी उनकी सूझ-बूझ की उपेक्षा शायद लापरवाही से नहीं की जा सकती।

परन्तु टेलिवीजन के प्रयोग के कारण कन्वेन्शन के बहुत से कामों का रूप निश्चय ही बदल जायगा। इसमें प्रतिनिधियों के दो-दो मण्डल भेजने की प्रथा में भी परिवर्तन हो जायगा। इनमें से प्रत्येक मण्डल आधे मतों का अधिकारी होता है। इस प्रथा के कारण मतदान असाधारण मन्द गति से हो पाता है, और शायद इन राजनीतिक नेताओं की दृष्टि में लाभदायक भी रहता है जो कि समय टालना चाहते रहते हैं। इससे उन प्रतिनिधियों के आम विज्ञापन की भूख भी मिट जाती है जो कि सन् १९५२ में एक क्षुब्ध प्रतिनिधि नेता के कथनानुसार, 'टेलिवीजन के भूत' होते हैं। परन्तु इससे टेलिवीजन के दर्शक ऊब जाते हैं और किसी को उबा देना निश्चय ही राजनीतिक चतुरता नहीं है। जब प्रतिनिधियों को यह पता लग जायगा कि टेलिवीजन का चित्र दूर-दूर तक दिखलाई पड़ता है और बहुत से बहरे नागरिक होठों को देखकर ही बात को समझ जाते हैं तब शायद कन्वेन्शन में उनका व्यवहार भी सुधर जायगा।

परन्तु राष्ट्रीय कन्वेन्शन करने की प्रणाली में चाहे जो परिवर्तन हो जाय, यह सन्दिग्ध ही है कि पार्टियों के नेता राष्ट्रपति की नामजदगी का नाटक उन लोगों के हाथ से निकल जाने देने के लिए कभी तैयार हो जायँगे जो अब कन्वेन्शन में उसे खेलते हैं।

कन्वेन्शन में पार्टी अपना 'प्लेटफार्म' या चुनाव-घोषणापत्र भी तैयार करती है। कन्वेन्शन के आरम्भिक दिनों में एक प्रस्ताव-समिति अपनी बैठकें करती है। वह श्रमिकों, व्यापारियों, स्त्रियों के कलवा, नीग्रो लोगों, किसानों, युद्ध निवृत्त सैनिकों और अन्य उन सब लोगों की बात सुनती है जो उसे यह विश्वास दिला सकें कि तनातनीवाले चुनाव-संघर्ष में बहुत से मतदाता हमारे कहने पर चलेंगे।

यदि समिति यह समझे कि प्रार्थी को 'प्लेटफार्म' मे एक तख्ता या पैराग्राफ दे देने से पर्याप्त मत मिल सकेंगे तो वह वैसा कर देती है, परन्तु शर्त यह रहती है कि उससे "पार्टी के सिद्धान्तो का उल्लघन न हो"। इसका अर्थ यह है कि जिस किसी बात से पार्टी के अनुयायी बिगड जायं और चुनाव के दिन बहुत से मतदाताओ के घर बैठ रहने का भय हो जाय वह पार्टी के सिद्धान्तो का उल्लघन करने वाली है।

उदाहरणार्थ, सन् १९४८ के डिमोक्रेटिक कन्वेन्शन मे 'मानवता के अधिकारो' अथवा अल्पसख्यको के साथ भी समानता का बरताव करने का कानून बनाने के 'तख्तो' का प्रबल विरोध किया गया था। एक ओर तो वे लोग थे जिनका तर्क था कि मानवता के अधिकारो का तख्ता मजबूत करके अल्पसख्यक लोगो के लाखो मतो को खीचा जा सकेगा, और दूसरी ओर वे थे जो पार्टी के 'नियमित' लाखो सदस्यो के रूठ जाने का 'भय' प्रकट कर रहे थे। इसी प्रकार की युक्तिया मजदूरो और किसानो से सम्बद्ध नीतियो के विषय मे दी जा सकती हैं, विशेषत तब, जब कि इस 'तख्ते' मे रुचि रखनेवाले, एक पक्ष को दूसरे से लडा सकें और इस प्रकार नेताओ को तुरन्त सीधा उत्तर देने के लिए विवश कर सकें।

नि सन्देह, "प्लेटफार्म कमेटी" अपनी बात यथासम्भव ऐसे शब्दो मे प्रकट करती है जो खुश तो सबको और नाराज़ किसी को भी न करने वाले हो। वह गृह-नीति, सन्तुलित बजट, हल्के टैक्सो, और अमेरिकी जीवन-पद्धति पर विशेष बल देती है।

वस्तुत पार्टी "रिकार्ड" पर चलती है, जिसका अर्थ व्याख्याताओ की भाषा मे यह दावा होता है कि हमारी ही पार्टी अच्छी, खरी, मजबूत और भरोसे के लायक है। वे अपनी पार्टी की प्रशसा करके, विरोधी पार्टी के ऐसे कामो का विशद वर्णन करते हैं जिनके कारण वह मतदाताओं मे लोकप्रिय न रही हो। प्रत्येक पार्टी अपना परम्परागत व्यक्तित्व सुरक्षित रखने का और उसके मुकाबले मे विरोधी पार्टी की दुर्दशा चित्रित करने का यत्न करती है। उदाहरणार्थ, रिपब्लिकन

अपनी पार्टी की तो कुशलता और ईमानदारी का चित्र खींचते हैं और अपने मुकाबले में डिमोक्रेटों को अकुशल और अर्ध-कम्युनिस्ट बतलाते हैं। डिमोक्रेट मतदाताओं से कहते हैं कि हम जनता के मित्र और उन्नति के पक्षपाती हैं, और हमारे मुकाबले में रिपब्लिकन उन अमीरों के मित्र हैं जिन्हें 'बीसवीं शताब्दी में लातें मारते और चिल्लाते चीखते हुए भी घसीटना पड़ रहा है।' दोनों पार्टियों में अनेक ऐसे प्रमुख सदस्य होते हैं जिनके व्यवहार से इन दावों का खण्डन हो जाता है, फिर भी मतदाता यही समझते हैं कि पार्टी की परम्परागत विशेषताओं में कुछ सचाई है।

बहुत कम मतदाता 'प्लेटफार्म' पढ़ने का कष्ट करते हैं। राजनीतिक व्याख्याता अवश्य उसके उद्धरण देते रहते हैं। यदि उसमें कोई बात ऐसी हो जिससे बहुत से मतदाताओं के अप्रसन्न हो जाने की सम्भावना हो तो विरोधी पार्टी उसका उद्धरण देती है। परन्तु व्यवहार में 'प्लेटफार्म' की रचना उम्मीदवार के आन्दोलन भाषणों से ही होती है। वह अपनी पार्टी के 'प्लेटफार्म' का प्रत्यक्ष विरोध तो कभी नहीं करता, परन्तु उसकी व्याख्या करते हुए वह उन भागों को छोड़ देता है जिन पर वह जोर देना नहीं चाहता, और जिन्हें वह महत्वपूर्ण समझता है उनके विषय में वह अपने स्वतन्त्र वक्तव्य दे डालता है। निर्वाचन हो चुकने पर लोग राष्ट्रपति के भाषणों को पार्टी की प्रतिज्ञाएँ मान कर चलते हैं और उससे आशा करते हैं कि वह कांग्रेस को मनाकर या दबाकर उसमें प्रतिज्ञाएं पूरी करवा लेगा।

इसलिए पार्टी का 'प्लेटफार्म' तैयार करने में पार्टी के कन्वेन्शन की विधि-निर्माण शक्ति का दर्जा दूसरा होता है, प्रथम स्थान राष्ट्रपति के ही कार्यक्रम का होता है। कन्वेन्शन के वास्तविक काम केवल दो हैं—उम्मीदवार का चुनाव और दलीय कार्यक्रम के प्रदर्शनात्मक उत्सवों के द्वारा पार्टी को एक कर देना।

उपराष्ट्रपति का चुनाव साधारणतया राष्ट्रपति पद के लिए नामजद व्यक्ति करता है और कन्वेन्शन के प्रतिनिधि बिना विशेष विवाद के उसे स्वीकार कर लेते

हैं। उपराष्ट्रपति पद का उम्मीदवार प्राय कन्वेन्शन मे पराजित पक्ष को सन्तुष्ट करने की दृष्टि से चुना जाता है। ऐसा इसलिए किया जाता है कि पार्टी के जोते हुए पक्ष को यह भय रहे कि राष्ट्रपति का देहान्त हो जाने पर शासन को सत्ता हाथ से चली जायगी। इस प्रथा के आलोचक बराबर यह माग करते रहते हैं कि नामजदगी का ढग ऐसा होना चाहिए कि वही व्यक्ति उपराष्ट्रपति पद के लिए नामजद किया जाय जो कि यदि राष्ट्रपति पद के लिए खडा किया जाता तो अपने बल से चुनाव जीत सकता।

प्रत्येक पार्टी की एक राष्ट्रीय समिति होती है, जो कन्वेन्शनो के मध्यवर्ती काल मे उनका काम करती रहती है, क्योकि वे तो प्रति चार वर्ष पश्चात् ही होते हैं। परन्तु समिति अपना अधिकतर कार्य राष्ट्रपति के चुनाव के वर्ष मे ही करती है। राष्ट्रीय कन्वेन्शन के स्थान और समय का निश्चय भी यही समिति करती है। इसके ही कर्मचारी आन्दोलन-साहित्य तैयार करते और स्थान-स्थान पर वक्ताओ को भेजते हैं। राष्ट्रपति और कांग्रेस के चुनाव आन्दोलन के लिए धन-सग्रह भी यही समिति करती है।

समिति का गठन, प्रत्येक राज्य प्रदेश और अमेरिका के आधीन द्वीपो से एक पुरुष और एक स्त्री सदस्य लेकर किया जाता है। उनका चुनाव या तो राज्य के प्रतिनिधि करते हैं या राज्य के प्राथमिक मण्डल करते हैं। समिति के सदस्यो को अधिकतर कार्य अपने अपने गृह राज्य मे ही करना पडता है। वहाँ वे सब काम राज्य-समितियो के सहयोग से करते हैं। राष्ट्रीय समिति के प्रधान को राष्ट्रपति पद का उम्मीदवार चुनता है, क्योकि समिति को उसका ही आन्दोलन करना होताहै।

प्रधान के अतिरिक्त, समिति के अति महत्वपूर्ण पदाधिकारी सचिव और कोपाध्यक्ष हैं। समिति का प्रधान राष्ट्रपति पद के उम्मीदवार के साथ मिलकर आन्दोलन का कार्यक्रम तैयार करता, सचिव पत्र-व्यवहार आदि दफ्तरी काम सम्भालता, और कोपाध्यक्ष कोप का सग्रह करता है।

उम्मीदवारों और अन्य वक्ताओं के लिए आवश्यक सूचनाएं और जानकारी संग्रह करने के लिए समिति कुछ अनुसन्धान-कर्मचारी भी रखती है। ये सूचनाएं ऐसी होती हैं जैसे कि प्रत्येक जिले की आर्थिक, जातीय, धार्मिक और राजनीतिक विशेषतायें, कांग्रेस के उम्मीदवारों के निर्वाचन में मतदान का पुराना लेखा, और अन्य जानकारियां जिनकी सहायता से वक्ता मतदाताओं को आकृष्ट तो कर सकें, परन्तु उन्हें खिजावें नहीं। समिति कुछ कुशल लेखक भी रखती है, जो कि अन्दोलनों के मध्य में कांग्रेस के विवादों में पार्टी का पक्ष पुष्ट करने के लिए, अति-व्यस्त कांग्रेस सदस्यों और सेनेटरों को भाषण तैयार करके देते रहते हैं।

कांग्रेस में प्रत्येक पार्टी की एक विशेष समिति चुनाव में कांग्रेस-सदस्यों की, और एक दूसरी समिति सेनेटरों की सहायता करने के लिए होती है। इन समितियों के पास अपना कोष भी होता है, और जिन स्थानों पर चुनाव की सफलता में सन्देह होता है वहां ये धन और वक्ता भेजने का प्रबन्ध करती हैं।

प्रत्येक राज्य में प्रत्येक पार्टी की एक राज्य-समिति होती है। ये समितियां स्वभावतः उन राज्यों में अधिक चुस्त होती हैं जिनमें चुनाव वस्तुतः अधिक संघर्षमय होता है। इस प्रकार यह संगठन बढ़ता हुआ जिलों, नगरों, कस्बों और अन्त में उन मुहल्ला तक पहुंच जाता है जिनमें चुनाव के केन्द्र बनाए जाते हैं, और उन सबकी पृथक् समितियां होती हैं।

मुहल्लों के काम को "दरवाजे की घण्टी बाजाना" कहते हैं। पार्टियों के कार्यकर्ता, लोगों को व्यक्तिशः समझाते रहते हैं कि मताधिकारी बनने के लिए अपना नाम समय रहते रजिस्टर करवा लो। जब उम्मीदवार उनके नगर में आता है तब वे लोगों को उसकी सभाओं में जाने और अन्त के चुनाव के दिन मत देने के लिए भी प्रेरित करते रहते हैं। मुहल्ले से ऊपर के संगठनों का काम मुख्यतया मुहल्ला-कार्यकर्ताओं के प्रयत्नों का सहारा लगाने का होता है। वे वक्ताओं, पुस्तक, पुस्तिकाओं, साहित्य, रेडियो और टेलिवीजन आदि के लिए धन संग्रह भी करते हैं जिससे मतदाताओं को प्रभावित किया जा सके।

देश के विस्तार का और जितने मतदाताओं तक पहुचना पडता है उनकी विशाल सख्या का विचार करते हुए, राष्ट्रीय चुनाव लडने का व्यय बहुत भारी नही होता। समस्त व्यय के अधिकतर अनुमानो के अनुसार प्रति मतदाता पीछे व्यय लगभग २५ सेण्ट का अर्थात् १८-१९ आने का होता है और सारा व्यय २ से ३ करोड डालर तक बैठता है। उदाहरणार्थ, सन् १९४४ मे डिमोक्रेटो ने अपना व्यय अधिकृत रूप से ७५ लाख डालर और रिपब्लिकनो ने १ करोड ३० लाख डालर बतलाया था। राष्ट्रीय समितियो में से प्रत्येक को एक आन्दोलन मे ३० लाख डालर से अधिक व्यय करने की अनुमति नही होता, परन्तु राज्यीय और स्थानीय समितियाँ अपना कोश स्वय एकत्र करती हैं। इसके अतिरिक्त, अपने अपने प्रिय उम्मीदवार को सफल बनाने के लिए सब प्रकार के लोग और सगठन धन तो अपनी गाठ से व्यय करते हैं, अपना समय भी मुफ्त देते हैं। हेच ऐक्ट के अनुसार फेडरल-सिविल-सर्विस के सदस्यो के लिए राजनीतिक आन्दोलन मे भाग लेना निषिद्ध है, परन्तु अभी तक ऐसा कोई उपाय नही निकला जिसके द्वारा चुनाव आन्दोलन मे भाग लेने वाले प्रत्येक नागरिक को यह हिसाब देने के लिए विवश किया जा सके कि उसने अपना कितना समय और धन इस कार्य में व्यय किया।

यह शिकायत सदा ही होती रहती है कि दूसरी पार्टी ने बहुत धन व्यय किया। ऐसा कानून बनाने की माग भी बार-बार की जाती है कि जिसमे आन्दोलन व्यय इतना सामित कर दिया जाय कि कम सम्पन्न पार्टी भी उसे सुगमता से उठा सके। परन्तु धन देकर मत खरीदने की प्रथा अब पहले जितनी आम नही रही, और यह विश्वास भी अनेक चुनाव-परिणामो से भ्रान्त सिद्ध हो चुका है कि अधिक सम्पन्न पार्टी अवश्य जीतती है।

सरकार द्वारा पार्टियों को आर्थिक सहायता दी जाने का प्रस्ताव भी कुछ लोग करते हैं परन्तु उसके स्वीकृत होने मे बडी बाधा यह है कि लोग यह मानने में सकोच करते हैं कि *राजनीति भी शासन का एक अवश्यक और विशेष अग है।* कांग्रेस यदि प्रत्येक प्रमुख पार्टी को डेढ या दो करोड डालर देना चाहे, जैसा कि बार-बार सुझाया भी जाता है, तो उसे पहले स्वयं जॉर्ज वाशिंगटन के समय से चला आया

यह विश्वास छोड़ना पड़ेगा कि पार्टियों में किसी प्रकार का अनौचित्य अवश्य है। कांग्रेस अपनी समितियों का सगठन और उनके सचालक पदाधिकारियों का चुनाव तो पार्टी के आधार पर करती है, परन्तु विधि-निर्माण के समय पार्टियों का जिक्र तक करने में उसे घबराहट होती है। पार्टियों को राजनीतिक पद्धति का आवश्यक अग मानने में एक और बाधा यह है कि बहुत-से बड़े-बड़े चदा देने वाले उसी ढंग को पसन्द करते हैं जो अब प्रचलित है। वे पार्टियों को अपनी सहायता के बिना स्वतन्त्रता-पूर्वक चलता देखने की अपेक्षा, उनके कामों के लिए धन एकत्र करना अधिक पसन्द करते हैं।

एक सुझाव यह है कि जो तीन-एक करोड उत्साही समर्थक अगले नवम्बर में पार्टी के उम्मीदवार को मत देने वाले हों उनमें एक डेढ करोड से एक-एक डालर एकत्र कर लिया जाय। परन्तु अनुभव बतलाता है कि उचित मात्रा में धन व्यय करके इस सुझाव पर अमल नहीं किया जा सकता।

टेलिवीजन के विकास के कारण राष्ट्रीय आन्दोलन के व्यय का प्रश्न और भी विकट हो गया है। लोग न केवल कन्वेन्शनों को टेलिवीजन में देखना चाहते हैं, वे आन्दोलन के समय प्रमुख उम्मीदवारों के दर्शन भी पर्दे पर करना चाहते है।

ज्यों-ज्यों पर्दे पर उम्मीदवारों के दर्शन करने की इच्छा बढती जायगी त्यों-त्यों आन्दोलन का व्यय भी बढ़ता जायगा और यदि उसका हिसाब ईमानदारी से रखा गया तो यह असम्भव नहीं कि वह प्रति व्यक्ति चालीस या पचास सेण्ट तक पहुच जाय।

यदि सगठन सुव्यवस्थित हो और अगले निर्वाचन तक भली प्रकार तथा निर्विघ्न चलता रहे तो उसे आमतौर पर "मशीन" कहा जाता है।

संयुक्त राज्य अमेरिका में राजनीतिक "मशीनों" के विकास के लिए परिस्थितियां अनुकूल हैं, क्योंकि प्रति दो वर्ष पीछे तो कांग्रेस के चुनाव आ जाते हैं, और राज्यों के तथा प्राथमिक मण्डलों के चुनाव बीच में भी होते रहते हैं। केवल बडे राष्ट्रीय कन्वेन्शन चार वर्ष पश्चात् होते हैं। बीच में उनकी हलचल समाप्त-सी हो जाती

है। पार्टियों की राष्ट्रीय समितियां राष्ट्रपति के चुनावों के मध्य में अपना काम चुपचाप करती रहती हैं, और राज्यीय तथा स्थानीय 'मशीनें' तो सदा ही काम में लगी रहती हैं।

'मशीन' का निर्माण ऐसे बहुत-से पेशेवर राजनीतिक कार्यकर्ताओं से मिलकर होता है जिनकी आजीविका ही राजनीति से चलती है। उनकी तुलना में, जो सुधारक उसे केवल फुरसत के समय राजनीतिक आन्दोलन करके नष्ट कर देना चाहते हैं वे निरे शौकिया राजनीतिज्ञ होते हैं, और उनके 'मशीन' से पराजित हो जाने की ही सम्भावना अधिक रहती है। 'मशीन' के राजनीतिज्ञ ऐसे-ऐसे कठिन काम प्रायः प्रतिदिन करते रहते हैं जैसे कि समाज से सम्पर्क रखना, अपने शत्रुओं की गति-विधि का पता लगाते रहना, जिन लोगों के कानून-सम्मत या कानून-विरुद्ध स्वार्थों पर कानून का प्रभाव पड़ता हो उनसे मेल रखना, और विधि-निर्माताओं तथा शासकों को यह बतलाते रहना कि कौन-कौन क्या-क्या है, इत्यादि। 'मशीन' के कार्यकर्त्ता पुरस्कृत भी नाना प्रकार से होते रहते हैं। कुछ के नातेदारों को सरकारी नौकरियां मिल जाती हैं, और कुछ स्वयं ही सरकार के राजनीतिक चक्र में नाके के स्थानों पर तैनात हो जाते हैं। सम्भव है कि उन्हें उन व्यापारिक फर्मों से भी कुछ मिलता हो जो कोई लाइसेंस या सरकारी ठेका लेना चाहती है या केवल इतना चाहती हैं कि पुलिस उनकी ओर से आंख मीचे रहे।

सर्वाधिक-सुसंचालित मशीनों का संचालन एक 'मालिक' करता है। वह प्रायः कोई पद स्वीकार नहीं करता। जिन डोरियों से पदाधिकारियों को काबू में रखा जाता है वह उन्हीं में इतना उलझा रहता है कि रोजाना के दफ्तरी काम के लिए वह समय नहीं निकाल सकता। वह अपने गिरोह को कठोर अनुशासन में रखता है और बदले में उनका ऐसा मार्ग-प्रदर्शन करता और ऐसा मेल मिलाता है कि उसे अपनी सफलता का निश्चय हो जाता है।

जब किसी को कोई राजनीतिक काम निकालना हो तब "मालिक" से "मिलना चाहिए"। वह सब का मित्र होता है, विशेषत गरीबों का, विदेशों से आये हुए वासाथियों का, और छोटे-मोटे अपराधियों का। 'मालिक' स्वयं भी प्रायः किसी

विदेश से आने हुए पिता का ही पुत्र होता, और गरीबों की किसी बस्ती में से उठकर अपनी संगठन-कुशलता और गरीबों के विषय में अपनी जानकारी के बल पर राजनीतिक 'मशीन' मे ऊपर तक पहुंचा हुआ होता है।

प्रसिद्ध राजनीति-विशेषज्ञ जॉर्ज-प्लुंकिट को बहुधा यह कहते उद्धृत किया जाता है "यदि मेरे जिले मे कोई परिवार जरूरतमन्द हो तो मुझे उसका पता धर्मार्थ संस्थाओं से भी पहले चल जाता है, और मैं और मेरे आदमी सबसे पहले उनके पास पहुंच जाते हैं। मेरे पास ऐसे मामलो की देख-भाल करने के लिए एक विशेष सेना है। इसका फल यह है कि गरीब लोग जॉर्ज डब्लू० प्लुंकिट को अपना पिता समझते और कोई भी कठिनाई होने पर उसके पास चले आते हैं और चुनाव के दिन उसे भूलते नही।"

राजनीतिक "मालिक" का काम हर दुखियों को सहारा देना है, वे चाहे गरीब हों चाहे अमीर। एक हाथ से तो वह किसी विदेश से आयी हुई ऐसी परेशान माता को सहायता देता है जिसका पुत्र कष्ट में हो, अथवा उस वृद्ध दम्पति को ईंधन या भोजन भेजता है जिसे सम्मानित धर्मार्थ संस्थाओं ने 'अपात्र' ठहरा दिया हो, अथवा पार्टी के किसी कार्यकर्ता के पुत्र की नौकरी पुलीस मे लगवा देता है। इन कामों को उदारतापूर्वक करते हुए वह सदाचार या धर्म के बारीक विचारों मे नहीं पड़ता। उसकी इन सेवाओं के कारण उसके ग्राहक हृदय से उसके प्रशंसक बन जाते हैं और उनके सब नातेदार अपने मत उसी उम्मीदवार को देते हैं जिसे वह अपना कृपा-भाजन बतलाता है।

दूसरे हाथ से वह अमीरों और उनके मित्रों की कठिनाइयां हल करता है—ठेकेदारों की, माल ढोने वाली कम्पनियों की, भूमिपतियों की, शराब के व्यापारियों की, या शायद उन कम प्रतिष्ठित नागरिकों की जिनका काम चल सकता है बशर्ते कि कानून सख्ती से लागू न किया जाय। वह टाउन हॉल या राज्य के बड़े दफ्तर में उन लोगों से "कह" देता है जो "मालिक" के मित्रों या अनुयायियों के मतों के बल पर चुने गये होते हैं। वह अपने धनी ग्राहकों से उनका कृतज्ञता-पूर्ण दान लेकर उसे अपने कार्यकर्ताओं और गरीबों में बांट देता है।

दुस्साहसी डाकुओं के ८ग की पुरानी राजनीतिक 'मशीन' अब परिस्थितियां बदल जाने के कारण खोखली पड़ गयी है। अब सामाजिक सुरक्षा बढ़ गई, विदेशों से आने वाले वासार्थियों के लिये नये कानून बन गये और नौकरियों में योग्यता का आदर अधिक होने लगा है। बड़े नगरों में अब ऐसे गरीब और परेशान विदेशी वासार्थी पहले से कम रह गये हैं जिनकी सेवा राजनीतिक पार्टियों के कार्यकर्ता, अपरिचित देश में एकमात्र दयालु मित्र के रूप में कर सकें। अब 'मेहरबानी' की ऐसी नौकरियां भी पहले से कम रह गयी हैं जिनका उपयोग पार्टी के कार्यकर्ताओं को इनाम देने के लिए किया जा सके। बहुत-से शहरों की पुलिस अब भी भ्रष्टाचारी है, और उससे 'मशीन' को सहारा मिलता है। परन्तु सारे देश को मिलाकर देखने पर सन् १६५२ के चुनावों में प्रकट हो गया था कि जिन बड़े नगरों में मन्दी के समय डिमोक्रेटिक 'मशीन' का बोलबाला था उनमें उसका बल प्राय समाप्त हो चुका था।

दोनों बड़ी पार्टियों ने राजनीति में भाग लेने के 'शौकीन' लोगों की 'मशीन' संगठित करने के प्रयत्न भी किये हैं। पार्टियां अपने ऐसे उत्साही समर्थकों का स्वागत करती हैं जो केवल शौक के लिए, या सभा और कन्वेन्शन में जाने का या कभी नामजदगी मिल जाने का अवसर पाने के लिए, काम करें। सन् १६५२ में आइजनहोवर और स्टीवन्सन, दोनों के व्यक्तित्व से बहुत-से उत्साही कार्यकर्ता आकर्षित हो गये थे। उनमें बहुतेरे युवक भी थे। सम्भव है इन 'शौकीन' लोगों के संगठन, भविष्य में मत प्राप्त करने के लिए जनता तक पहुंचने में और भी अधिक उपयोगी सिद्ध हों। यदि ऐसा हुआ तो राजनीतिक शक्ति के स्रोतों में यह एक नया परिवर्तन होगा। भूतकाल में शक्ति का स्रोत वे असहाय निर्धन थे जिन्हें दया के मूल्य से खरीदा जा सकता था, और भ्रष्टाचारी 'मशीन' के व्यवहारकुशल कार्यकर्ता चुनाव-केन्द्रों में उनकी भीड़ लगा दिया करते थे। शक्ति का यह पुराना स्रोत अब सूखता जा रहा है, क्योंकि असहाय निर्धनों की संख्या घट गयी है। सन् १६५२ में शक्ति के स्रोत राष्ट्रपति पद के उम्मीदवार व्यक्तियों में केन्द्रित हो गये प्रतीत होते थे। दोनों व्यक्तियों, को उम्मीदवार, 'मशीनों' को प्रसन्न करने के लिए नहीं, अपितु स्वतन्त्र मतदाताओं और मध्य-वित्त वर्ग के 'शौकीन' कार्यकर्ताओं को आकृष्ट करने के लिए बनाया गया

था। ये कार्यकर्ता कृतज्ञता या इनाम पाने की आशा से इतना प्रेरित नहीं थे, जितना कि ये अपने प्रिय उम्मीदवारों के प्रति हार्दिक प्रशंसा के भावों से प्रभावित थे। यदि यह परिवर्तन स्थायी हो गया तो सम्भव है कि इसका प्रभाव उन बहुत-से व्यावहारिक नियमों पर भी हो जाय जो कि राजनीति के क्षेत्र में परम्परा से चले आ रहे हैं।

चुनाव के दिन मतदान करवाने में राजनीतिक पार्टियां महत्त्वपूर्ण भाग लेती हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका में कोई १ लाख ३० हजार क्षेत्र अर्थात् चुनाव-केन्द्र हैं। इनमें से प्रत्येक में ३०० से १००० तक मतदाता अपना मतपत्र डालते हैं। चुनाव का स्थान प्रायः किसी स्कूल या खाली गोदाम, या आग बुझाने के इंजन-घर, या पुलीस थाने में होता है। जब से स्त्रियों को मताधिकार मिला है तब से चुनाव के स्थान, सन् १९२० से पहले की अपेक्षा अधिकाधिक स्वच्छ रहने लगे हैं।

चुनाव-अधिकारियों का चुनाव तो दोनों मुख्य पार्टियां करती हैं, परन्तु उनको पारिश्रमिक राज्यों के कानूनों के अनुसार सरकारी कोष से दिया जाता है। वे मतदाताओं के नामों को जांचते हैं, यह देखते हैं कि प्रत्येक मतदाता को एक ही मतपत्र मिले, मतपत्र-पेटी या मत देने के यन्त्र पर दृष्टि रखते हैं कि किसी प्रकार का धोखा न होने पावे, और अन्त में शाम को देर तक बैठ कर मतों को गिनते और परिणाम की सूचना देते हैं। दोनों पार्टियां चुनाव के प्रायः प्रत्येक स्थान पर अपने निरीक्षक नियुक्त कर देती हैं कि वे किसी भी प्रकार की अनियमितता को तुरन्त बतला दें। इन निरीक्षकों को पारिश्रमिक पार्टी ही देती है।

संयुक्त राज्य अमेरिका में मतदान की गोपनीयता का सिद्धान्त भली-भांति स्थिर हो चुका है। हो सकता है कि कहीं-कहीं राजनीतिक 'मशीन' यह जानने का प्रबन्ध कर दे कि मतदाता मत किस प्रकार डाल रहे हैं, परन्तु इस प्रबन्ध पर विरोधी पार्टी के निरीक्षकों द्वारा प्रायः आपत्ति की जाती है।

मतदान की अमेरिकी पद्धति की एक भारी त्रुटि "लम्बा मतपत्र" है। मतपत्र पर राज्य, जिले और नगर के पचास से सौ तक पदों का अंकित होना कोई असाधारण बात नहीं है। और हैरान मतदाता से उस पर ही निशान बनाने की आशा

रक्खी जाती है। एक बार एक मतपत्र बारह फुट लम्बा था और उस पर लगभग पाच सौ नाम थे। मतदाताओ को राज्य के गवर्नर के अतिरिक्त, कोई आधा दर्जन अन्य अधिकारियो, काउण्टी कमिश्नरो, जजो, कोषाध्यक्ष, जिला अटर्नी और अन्य कई पदाधिकारियो के लिए मत देने को कहा जाता है। नगरो मे उन्हे मेयर, ऐल्डरमैनो, स्कूल बोर्ड के सदस्यो, नगर की कचहरी के जजो, असेसरो, टैक्स कलेक्टरो और अन्य दर्जनो पदो का चुनाव करना पडता है।

केवल किसी पेशेवर राजनीतिज्ञ के लिए यह सम्भव हो सकता है कि वह इतने पदो मे कुछेक से अधिक के नाम जानता हो, और उसके भी उन्हे जानने का कारण यह है कि उन्हे नामजद करने मे उसका हाथ होता है। मतदाता केवल राष्ट्रपति, गवर्नर (राज्यपाल), मेयर (नगर प्रमुख) और कुछेक अन्य पदो के लिए मत देते है, और शेष को वे या तो छोड देते है या आंख मीच कर मत दे देते हैं।

पुराने ढंग के राजनीतिज्ञ लम्बा मतपत्र इसलिए पसन्द करते हैं कि इससे उन्हे जनता के प्रति अपने उत्तरदायित्व से बचे रहने का अवसर मिल जाता है। जिन व्यक्तियो को वे किसी कारण पुरस्कृत करना चाहते हैं उन्हे वे ऐसे गोण पदो के लिए नामजद कर देते है जिन्हे जनता याद नही रख सकती या जिनकी उपयोगिता वह समझ नही सकती। फल यह होता है कि इन पदो का चुनाव जनता आंख मीच कर देती है। जनता द्वारा निर्वाचित हो जाने के पश्चात्, राजनीतिक नेताओ के ये मित्र उक्त गवर्नर या मेयर तक से स्वतन्त्र हो जाते है जो जनता द्वारा आंख खोलकर चुने होते हैं।

इस पद्धति के कारण राज्यीय या स्थानीय निर्वाचन, सघीय की अपेक्षा कम लोकतन्त्रीय होते हैं। राष्ट्र की दृष्टि से देखा जाय तो जनता केवल इन पदो के लिए मत देती है—राष्ट्रपति, कांग्रेस सदस्य, और सैनेटर। ये सब व्यक्ति इतने महत्वपूर्ण हैं कि ये जनता की आंखो के सामने रहते हैं और वह उन्हे उनके कामो के लिए उत्तरदायी ठहरा सकती है।

बडे मतपत्र की त्रुटिया दूर करने के लिए मतपत्र को छोटा करने का आन्दोलन बीसवी शताब्दी के आरम्भ में आरम्भ हुआ था। "शार्ट-बैलट आर्गेनाइजेशन" अर्थात्

लघु मतपत्र संगठन का प्रथम अध्यक्ष उडरो विल्सन था। उसका अभिप्राय अधिकतर निर्वाचित पदों को नियुक्त पदों में बदल देने का था, जिससे कि राज्यों में भी निम्न कर्मचारियों की नियुक्ति, संयुक्त राज्य अमरीका के राष्ट्रपति के समान गवर्नर या मेयर कर दे और स्वयं प्रशासन का उत्तरदायी प्रमुख बना रहे। परन्तु राजनीतिज्ञों को अब भी लम्बा मतपत्र ही अच्छा लगता है। राज्यों के शासन में जनता की रुचि मन्द और अस्थिर होती है। इसलिए वहां इस दशा में बहुत कम उन्नति हो पायी है। परन्तु नगरों में अच्छी उन्नति हो गयी है। वहां सन् १९१० के पश्चात् अधिकाधिक नियुक्तियां पर मेयर का नियन्त्रण रहने लगा है। और कई नगरों में स्थानीय शासन का रूप कमीशन का या सिटी-मैनेजर का (अध्याय ९ देखिये) हो जाने के कारण मतदाताओं को छोटे मतपत्र का लाभ मिलने लगा है।

सम्भव है कि लम्बे मतपत्र के कारण मतदाताओं को विशेषत स्वतन्त्र मतदाताओं की संख्या घटाने में कुछ सहायता मिली हो। जो मतदाता देख भाल कर चुनाव करना चाहता है वह मतपत्र पर दर्जनों अज्ञात नाम देख कर खीझ जाता है। परन्तु जिस मतदाता की पार्टी निश्चित हो उसे लम्बा मतपत्र अधिक स्वाभाविक लगता है।

समस्त मतदाताओं में से कोई तीन चौथाई के विषय में ख्याल है कि वे वंश परम्परा से किसी एक ही पार्टी के सदस्य चले आ रहे हैं और वे विरोधी पार्टी के किसी आदमी को मत देकर अपने हाथ मलिन करने के विचार मात्र तक से घृणा करते हैं। इसलिए चुनावों का फैसला, द्विदलीय राज्यों में तो शेष २५ प्रतिशत मतदाताओं द्वारा होता है और एकदलीय राज्यों में उन छोटे-छोटे दलों द्वारा, जो कि पार्टी की सम्मानित परिधि के भीतर रहकर भी नामजदगियों पर झगड़ा करते रहते हैं। स्वतन्त्र मतदाताओं के इस भाग का महत्व सर्वाधिक है। इनकी संख्या बढ़ रही दीखती है, और इनके कारण ही राष्ट्रीय चुनावों को वह अनिश्चितता प्राप्त होती है जो कि लोकतन्त्रीय पद्धति का आधार समझी जाती है।

राष्ट्रीय संघट के समय राजनीतिक पार्टियां अपनी निर्वाचन शक्ति को अपने नेता अर्थात् राष्ट्रपति में या उस पद के उम्मीदवार में केन्द्रित कर देती हैं। उसे

ही देश परम्परागत मतदाताओं को चुनाव के दिन उनकी आराम कुरसियों पर से उठाकर मत देने के लिए बाहर लाना होता है। उसे ही, अपने प्रतिस्पर्धी अर्थात् विरोधी पार्टी के उम्मीदवार के मुकाबले मे स्वतन्त्र मतदाताओं के मत जीतने पडते है।

निर्वाचन और पद-ग्रहण के पश्चात् विजयी राष्ट्रपति से आशा की जाती है कि वह कांग्रेस मे अपनी पार्टी का नेतृत्व करेगा, जिससे कि वह जो कानून बनवाना चाहे सो बनवा सके। सकट के समय राष्ट्रपति चाहता है कि वह इतिहास मे अपना नाम कर जाय। आदोलन की झोंक मे की हुई अदूरदर्शिता पूर्ण प्रतिज्ञाओं और इतिहास के निर्माताओं के उत्कृष्ट कार्यों से तुलना का प्रसग आने पर वह स्वभावत भूत की अपेक्षा भविष्य पर दृष्टि रखकर चलना पसन्द करता है। इस प्रयत्न मे उसे कांग्रेस के नेताओं, अपने से बहुधा ईर्ष्या करने वाले अपनी पार्टी के नेताओं और उन विरोधी नेताओं से भी भुगतना पडता है जो कि अब शायद गत चुनाव मे पराजित, राष्ट्रपति पद के उम्मीदवार अपने नेता के प्रभाव और नेतृत्व मे रहना या न रहना चाहते हो।

सकट के समय सब पार्टियो का नेता बन जाने का अवसर यही होता है, और युवक अमरीकनो को जीवन मे एकमात्र समय यही दीखता है। बूढे अमेरिकनों को एक भिन्न प्रकार के समय की, सन् १९२० सरीखे की, याद है, जब कि प्रथम विश्वयुद्ध के पश्चात् लोग थके हुए थे और किसी के चलाये कहीं भी जाना नहीं चाहते थे।

प्राय देखा गया है कि जब अमेरिकी जनता का आपत्ति से सामना नहीं होता तब पार्टियाँ उम्मीदवारो के रूप मे मतदाताओं के सामने ऐसे पुतले खडे कर देती हैं जिन मे नेतृत्व का गुण प्राय एक भी नहीं होता। परन्तु जब आंधी का मौसम आता है तब व न जाने किस रहस्यमय विधि से लिकन और विलसन सरीखे पुरुष खोज निकालती हैं।

कुछ विद्यार्थियो का विचार है कि इस विधि मे ऊपर-ऊपर से जो रहस्यमयता दीख पडती है, वह वास्तविक नहीं है। 'ह्वाइट हाउस' (राष्ट्रपति का कार्यालय

और निवास भवन) सूचनाओं के संसार व्यापी जाल का केन्द्र है। वहां राष्ट्रपति को, देशी और विदेशी, गुप्त और प्रकट, सब जानकारियां, वह संक्षिप्त या विस्तृत जिस किसी भी रूप में चाहे, मिल सकती हैं। अनेक राष्ट्रपति ऐसे हो चुके हैं जो कि पहले साधारण मनुष्य जान पड़ते थे, परन्तु जब उन पर संसार की जानकारियों की तीव्र धारा छोड़ी गयी तब वे रातों-रात कुशल राजनीतिज्ञ बन गये। एक कल्पना यह भी है कि जब कोई गम्भीर संकट सामने नहीं होता तब राष्ट्रपति आलसी हो जाता है और उसमें महत्ता के कोई चिह्न दिखलाई नहीं पड़ते। परन्तु आन्धी के समय वहां मनुष्य जाग कर अपने आसपास उपलब्ध साधनों से ऐसे बड़े-बड़े काम कर गुजरता है जिन की उसके मित्रों तक ने कभी कल्पना भी नहीं की होती।

सम्भव है कि आज की उत्तेजक घटनाओं के प्रभाव से मुख्य पार्टियों का सगठन और काम-काज के ढग, परिवर्तन की प्रक्रिया में से गुजर रहे हों। सन् १९३० से निरन्तर संकट की जो स्थिति चल रही है और जिसके अभी कई वर्ष तक चलते रहने की सम्भावना है उसके कारण 'ह्वाइट हाउस' और कांग्रेस, दोनों में लोकप्रिय नेतृत्व और राजनीतिज्ञता के असाधारण गुणों की अपेक्षा होने लगी है। रेडियो और टेलिवीजन के कारण अब ऐसे अवसर बहुत कम रह गए हैं कि 'अन्धकारमय' कमरों में गुप्त रूप से किये हुए रहस्यमय कामों से भी किसी को यश की प्राप्ति हो जाय। रहन-सहन का दर्जा ऊंचा हो जाने के कारण अब वह 'भीड़' छट गयी है जो कभी स्थानीय राजनीतिक "मालिकों" की कृतज्ञ रहा करती थी, और जो पीछे से राष्ट्रपति रूजवल्ट की अनुगामी बन गयी थी, क्योंकि वह आवश्यकता के समय उसका मित्र सिद्ध हुआ था। आज शायद वही लोग अच्छे सुन्दर मकानों में रहते हैं और अपना मत देने को मांग की जाने पर सर्वथा भिन्न प्रकार का मूल्य चाहते हैं। चुनावों में धन शक्ति अब भी बहुत है और दोनों पार्टियों पर चंदा देने वालों का प्रभाव प्रत्यक्ष है। परन्तु मतदाता भ्रष्टाचार को बुरा मानने लगे प्रतीत होते हैं, शायद भूत-काल की अपेक्षा कहीं अधिक।

अब पार्टियां अपने अनुयायियों को निम्नतम स्तरों पर सगठित करने के लिए नये से नये उपाय सोचने लगी हैं। राजनीति-विज्ञान वेत्ता पार्टियों के नेताओं को

अधिक अच्छे उपायो से पार्टियाँ संगठित करने के लिए प्रेरित करने लगे हैं, जिससे वे उनके "प्लेटफार्मों" की तैयारी वाद-विवाद आदि की लोकतन्त्रीय विधियो से कर सकें। वे कहते हैं कि 'कन्वेन्शनों' को लोकतन्त्रीय पद्धति से करने पर पार्टी के सदस्य उनमे एकत्र होने लगेंगे और काग्रेस मे तथा राज्यीय विधान मण्डलो मे भी उनके प्रतिनिधि अपना मत अधिकाधिक पार्टी के ही पक्ष मे देने लगेंगे। लक्षणो से प्रतीत होता है कि पार्टियों के कुछ नेता नये उपायो पर विचार करने लगे हैं और सम्भव है कि कई दृष्टियो से पुरानी परम्परागत विधियो मे परिवर्तन हो जाय।

अध्याय ४

## शासन

संविधान में लिखा है कि "एक्जेक्यूटिव (कार्यपालिका) के अधिकार राष्ट्रपति में निहित होंगे।" ये 'कार्यपालिका के अधिकार' क्या है, इस प्रश्न पर कांग्रेस और राष्ट्रपति में सदा किसी न किसी प्रकार का संघर्ष चलता रहता है। राष्ट्रपति के अधिकारों की अनिश्चितता तथा उनके एक ही व्यक्ति के हाथ में रहने के कारण, यह सम्भावना रहती है कि कहीं उसे किसी ऐसी असाधारण परिस्थिति में अपना पद और अधिकार ग्रहण न करना पड़े जिसके लिए कोई नियम निर्धारित नहीं किये गये।

निश्चय ही, संविधान ने राष्ट्रपति को निश्चित कुछ अधिकार दिये हैं। वह किसी बिल के विरुद्ध अपने 'वीटो' अर्थात् निषेधाधिकार का प्रयोग कर दे तो वह कांग्रेस के समस्त मत-बल के एक-चौथाई के समान हो जाता है, क्योंकि यदि राष्ट्रपति 'हाँ' कह दे तब तो बिल कांग्रेस के बहुमत मात्र से पास हो सकता है, और यदि वह 'ना' कर दे तो कांग्रेस के दो तिहाई मतों की आवश्यकता पड़ती है।

वैदेशिक मामलों में पहल राष्ट्रपति ही करता है। राष्ट्रपति ने जो सन्धि की हो उसे सेनेट कार्यान्वित होने से अवरुद्ध तो कर सकती है, परन्तु वह स्वयं न तो कोई सन्धि कर सकती है और न राष्ट्रपति को किसी से कोई सन्धि करने के लिए विवश कर सकती है।

इसी प्रकार, शासन की 'एक्जेक्यूटिव' (कार्यपालिका) शाखा और सैनिक विभागों के उच्च अधिकारियों की नियुक्ति करना राष्ट्रपति का काम समझा जाता

है। परन्तु उन नियुक्तियों की पुष्टि सेनेट करती है। बहुधा ऐसा होता है कि कोई सेनेटर नौकरी के किसी उम्मीदवार की ओर राष्ट्रपति का ध्यान आकृष्ट करता है, और राष्ट्रपति बिना इस बात पर गम्भीरतापूर्वक विचार किए उसे इनकार नहीं कर सकता कि 'ह्वाइट हाउस' (अर्थात् राष्ट्रपति की सरकार) को उस सेनेटर के समर्थन की आवश्यकता कहाँ तक पड़ेगी। "सेनेटर का शिष्टाचार" नाम का एक रिवाज भी है। इसके अनुसार बहुमत दल का कोई सेनेटर अपने राज्य में किसी संघीय पद पर किसी व्यक्ति की नियुक्ति को यह कहकर रोक सकता है कि यह आदमी मुझे "व्यक्तिशः नापसन्द" है। तब उसके साथी सेनेटर भी उस नियुक्ति की पुष्टि करने से इनकार करके "शिष्टाचार" का पालन करते हैं। परन्तु इस रिवाज के कारण, जब रिपब्लिकन पार्टी के लोग पदारूढ़ हों तब वे दक्षिणी राज्यों में संघीय पदों पर अपनी नियुक्तियाँ करने में, और जब डिमाक्रेटों की बारी आती है तब वे उत्तर के रिपब्लिकन राज्यों में वैसा करने में संकोच नहीं करते।

अंग्रेज विचारक जान लॉक के विचारों ने संयुक्त राज्य अमेरिका के संस्थापकों को बहुत प्रभावित किया था। उसने अपनी पुस्तक "ट्रिटिजेज ऑव गवर्नमेण्ट" (शासन के निबन्ध) में इंगलैण्ड के कानूनी "विशेषाधिकारों" अर्थात् राजा द्वारा अपने अधिकारों के विशिष्ट तथा तर्क-विरुद्ध प्रयोग के रूप का वर्णन किया है। लॉक ने कहा है—

"विशेषाधिकार हमारे चतुरतम और उत्कृष्टतम राजाओं के हाथ में सदा सबसे अधिक रहता था, क्योंकि प्रत्यक्ष ही उनके व्यवहार का लक्ष्य प्रधानतया जनता के हित के अतिरिक्त और कुछ होता था। इसलिए जब ये राजा कानून की लीक से हट कर अथवा उसके विपरीत भी कोई कार्रवाई कर देते थे तब जनता उनमें संतुष्ट होने के कारण, वह जो कुछ भी करते थे उसमें अपनी सहमति प्रकट कर देती थी... उसका यह निर्णय ठीक ही होता था कि राजा अपने कानूनों के विरुद्ध कुछ नहीं करते, क्योंकि वे सब कानूनों के आधार और लक्ष्य—जनहित—के अनुकूल ही कार्य करते थे।"

लॉक का कथन यह भी था कि विधि-निर्माण का अधिकार सर्वोपरि है और "जनता ने एकबार उसे जिन हाथों में सौंप दिया वे पवित्र और अपरिवर्तनीय" हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका का बहुत सा राजनीतिक इतिहास, इंगलैण्ड के समान, इन परस्पर-विरोधी सम्बन्धों में व्यावहारिक सगति लगाने का ही इतिहास है।

सयुक्त राज्य अमेरिका मे 'एक्जेक्यूटिव' अर्थात् कार्यपालक शासकों के अधिकारों की सीमाओं का निर्धारण, अधिकाधिक मात्रा मे, राष्ट्रपति के सम्बन्ध मे जनता का जो मत होता है उसके अनुसार ही होता आया है, विशेषत तब से जब से कि रेडियो और टेलिविजन ने राष्ट्रपति को जनता के अधिक निकट सम्पर्क में ला दिया है। परन्तु हमारे आरम्भिक इतिहास मे भी, राष्ट्रपति कभी-कभी "कानून की लीक से हटकर अथवा उसके विपरीत" कारवाई कर लेते थे।

उदाहरणार्थ, सन् १७६३ मे जब फ्रांस ने इंग्लैण्ड से युद्ध की घोषणा कर दी तब राष्ट्रपति वाशिंगटन ने सयुक्त राज्य अमेरिका की तटस्थता घोषित कर दी थी। उसने अपना मत यह बना लिया था कि फ्रान्स के साथ अमेरिका की मित्रता की सन्धि वहा लागू नही होती जहा फ्रान्स आक्रान्ता हो। मेडीसन ने तब वाशिंगटन पर सवैधानिक अधिकार के बिना आचरण करने का और इगलैण्ड के राजा के विशेषाधिकार का अनुकरण करने का आक्षेप किया था।

पुन सन् १८०३ में, राष्ट्रपति जेफर्सन को अकस्मात ही नेपोलियन से लुइजियाना का प्रदेश खरीद लेने का अवसर मिल गया। यदि इस अवसर का लाभ तुरन्त ही न उठा लिया जाता तो नेपोलियन का मन बदल जाने की पूरी सम्भावना थी। जेफर्सन ने उसे खरीद लिया। उसने निजी बातचीत में माना भी था कि यह "काम सविधान की सीमा से बाहर का" था, परन्तु उसे आशा थी कि कांग्रेस उसे खरीदने के लिए धन देकर उसकी सहायता करेगी। कांग्रेस ने उसका साथ दिया, और यही कारण है कि आज भी मिसिसिपी घाटी के पश्चिमी भाग पर सयुक्त राज्य अमेरिका का ही अधिकार है।

अब्राहम लिंकन ने सम्भवत सविधान की अपेक्षा, अन्य किसी राष्ट्रपति की अपेक्षा अधिक भिन्न प्रकार की थी, और अमेरिकी जनता उसके इस कार्य का स्मरण

करके उसकी निन्दा नही करती। उदाहरणार्थ, लिंकन ने संविधान के बावजूद, "हवियस-कॉर्पस" के (अर्थात् किसी बन्दी को अदालत में पेश करने की प्रार्थना करने के) अधिकार का प्रयोग स्थगित कर दिया था, और कारण यह बतलाया था कि सारे संविधान को नाश से बचाने के लिए वैसा करना आवश्यक था। उसने प्रश्न किया था, "क्या एक के अतिरिक्त शेष सब कानून अ-पालित ही रहेंगे, और क्या उस एक कानून का उल्लंघन न होने देने के लिए शासन को छिन्न-भिन्न हो जाने दिया जायगा ? और ऐसा करने के पश्चात् भी यदि शासन उलट गया तो क्या वह शासको की प्रतिज्ञा का भग नही होगा, जबकि हमारा विश्वास है कि एक कानून की उपेक्षा कर देने से शासन की रक्षा हो सकती है ?"

सन् १९१७ मे, संयुक्त राज्य अमेरिका के प्रथम विश्व-युद्ध मे सम्मिलित होने से पूर्व, उडरो विलसन ने कांग्रेस से अमेरिकी व्यापारिक जहाजो को शस्त्रसन्नद्ध करने का अधिकार प्राप्त करने का यत्न किया था। जब कांग्रेस नही मानी तब उसने अपने सेनापतित्व के अधिकार का प्रयोग किया और अपनी कुछ सेना को व्यापारिक जहाजों पर तैनात कर दिया।

संविधान के अनुसार, युद्ध की 'घोषणा' करने का अधिकार कांग्रेस का है, और सम्भवत इस विधान का अभिप्राय यह था कि युद्ध छेडने न छेडने का निर्णय कांग्रेस किया करे। परन्तु व्यवहार में देश का कोई भी शक्तिशाली अंग ऐसी स्थिति में आ सकता है कि वह संयुक्त राज्य अमेरिका को युद्ध में फंसा दे। यहा तक कि सन् १९०३ मे सैन फ्रान्सिस्को के शिक्षण-बोर्ड तक ने, केलिफोर्निया मे प्रचलित जन-भावना का लिहाज करके, यह आज्ञा दे दी थी कि स्कूलो में जापानी बालको को गोरे बालको से पृथक् रक्खा जाय। इस आज्ञा के कारण जापान मे साधारण जनता की भावनाएं भयंकर रूप मे भडक उठी। तब राष्ट्रपति थिओडोर रूजवेल्ट ने अपने मन्त्रिमण्डल का एक सदस्य जापानियो को यह विश्वास दिलाने के लिए सैन फ्रान्सिस्को भेजा कि मैंने तुम्हारे अपमान का प्रतिकार करने का यत्न कर देखा है, यद्यपि मुझे उक्त आज्ञा वापस लेने के लिए शिक्षण-बोर्ड को विवश करने का कोई अधिकार नहीं है।

अपने अधिकार के अन्तर्गत कोई भी कार्रवाई करके और युद्ध की परिस्थिति उत्पन्न करके, राष्ट्रपति भी युद्ध को देश के द्वार पर लाकर खड़ा कर सकता है। उदाहरणार्थ, वुडरो विल्सन ने सन् १९१७ में ब्रिटिशों और जर्मनों द्वारा अमेरिका की तटस्थता के अधिकारों के उल्लंघन का प्रतिवाद ऐसे शब्दों में किया था कि उससे प्रकट होता था कि अमेरिकी जनमत धीरे-धीरे तटस्थता से हटकर जर्मनी विरोधी होता जा रहा है। जब उसने कांग्रेस से युद्ध की घोषणा करने के लिए कहा तब उसके लिए इन्कार करने का अवसर ही नहीं रहा था। इसके विपरीत, सन् १८१२ में कांग्रेस का बहुमत इंगलैण्ड से युद्ध करने का प्रबल पक्षपाती था। कुछ ऐतिहासिकों का मत है कि राष्ट्रपति मैडीसन को सन् १८१२ के युद्ध में उसकी इच्छा के विरुद्ध घसीट लिया गया था।

वस्तुतः, राष्ट्रपति को युद्ध अथवा शान्ति के प्रश्नों का निर्णय, बहुधा, कांग्रेस या अमरीकी जनता द्वारा उन पर विचार की प्रतीक्षा किए बिना करना पड़ जाता है। राष्ट्रपति फ्रैंकलिन रूजवेल्ट ने पर्ल-हार्बर पर जापान के आक्रमण से पहले कई बार हिटलर के विरुद्ध शीघ्र-शीघ्र ऐसी कारवाइयाँ की थीं जो विलम्ब करने से शायद न की जा सकतीं। ग्रीनलैण्ड के तट पर एक जर्मन चौकी पर अधिकार कर लेने और आइसलैण्ड की रक्षा के लिए सेनाएँ भेज देने की कारवाई भी उन्हीं में से एक थी। बर्लिन पर रूसियों की घेराबन्दी और दक्षिणी कोरिया पर कम्युनिस्ट आक्रमण के समय राष्ट्रपति ट्रूमन को भी ऐसी ही आकस्मिक आपत्तियों का सामना करना पड़ा था। ये दोनों आक्रमण भी उसी प्रकार स्वतन्त्र संसार को टटोलने के लिए किए गए थे, जैसे कि जापानियों, जर्मनों और इटालियनों ने किए थे और जिसका परिणाम द्वितीय विश्व-युद्ध हुआ था। यदि बर्लिन और कोरिया में रूसियों को तुरन्त ही जवाब न दिया जाता तो संसार तृतीय विश्व-युद्ध के मार्ग पर जा पड़ता। संयुक्त राज्य अमरीका का राष्ट्रपति ही अपने अधिकार का प्रयोग करके इन आकस्मिक संकटों का सामना कर सकता था, अन्य कोई नहीं।

राष्ट्रपति को जब कोई कारवाई करने का संवैधानिक अधिकार हो तब भी विरोधी कांग्रेस उसे अपनी नीति कार्यान्वित करने के लिए धन देने से इन्कार करके

उसका मार्ग अवरुद्ध कर सकती है। राष्ट्रपति ट्रूमन ने जब "नाटो" (नार्थ-ऐटलाण्टिक-ट्रीटी-ओर्गेनाइजेशन) की आरम्भिक रक्षा-सेना को सहारा लगाने के लिए अमेरिकी सेनाएँ युरोप भेजी थी तब उन्होंने वैसा सेनापति की हैसियत से किया था। भूत-काल मे अन्य भी कई राष्ट्रपति ऐसा कर चुके थे। जब उन्हे विदेशो में सेना भेजना उचित जान पडा तब उन्होंने अपने अधिकार का प्रयोग करके वैसा कर दिया। राष्ट्रपति ट्रूमन के ऐसा करने पर कांग्रेस मे बड़ा विवाद हुआ था कि राष्ट्रपति को सेनाएँ युरोप भेजने का अधिकार है या नही, और उनके कई विरोधियो ने तो व्यय मे कटौती का प्रस्ताव करके उनके हाथ बाध देने का भी यत्न किया था परन्तु यह संघर्ष संवैधानिक कम और राजनीतिक अधिक था।

कांग्रेस के साथ राष्ट्रपति के सम्बन्धो का रूप, 'एक्जेक्यूटिव' (कार्यपालको) और विधि-निर्माताओ मे अधिकार-प्राप्ति तथा राजनीतिक लाभ-प्राप्ति के उलभन-भरे सघर्षो का मिला-जुला रूप है। संसदीय पद्धति मे प्रधान मन्त्री के दल के प्रायः सभी सदस्य उसका समर्थन ही करते हैं, क्योंकि यदि वह किसी महत्वपूर्ण प्रश्न पर पराजित हो जाय तो वह और उसका दल दोनो, पद-च्युत हो जाते हैं। परन्तु कांग्रेस मे 'ह्वाइट हाउस' के किसी भी प्रस्ताव पर दोनो दल साधारणतया बट जाते है। कुछ सदस्य तो राष्ट्रपति से सहमत या असहमत होते हैं, और अन्य, उसकी नीतियो के पक्ष या विपक्ष मे मत केवल दलीय कारणो से देते हैं। वास्तव मे जिन शक्तियो का प्रभाव पड रहा होता हे उनका परिचय संविधान को पढने से नही मिल सकता। यदि राष्ट्रपति कांग्रेस मे, और विरोधी दल मे भी मित्र बनाने की कला मे कुशल हो तो वह बहुतेरे मत केवल मित्रता के द्वारा प्राप्त कर सकता है। यदि राष्ट्रपति को केन्द्रीय सरकार मे नियुक्तियाँ करनी हो और उसने नियुक्त व्यक्तियो के नामो की घोषणा अभी न की हो तो वह,अपने शत्रुओ को भी अपने समर्थक पोषको को नोकरी दिलवाने की सुविधा देकर उनके मत खरीद सकता है। प्राय. देखा जाता है कि जिस कांग्रेस सदस्य को अपने सिद्धातो के कारण राष्ट्रपति का पक्ष लेना पडता है उसे अपने समर्थको को नोकरियो पर लगवाने का उतना अवसर नही मिलता जितना कि राष्ट्रपति के विरोधी दल के किसी-किसी सदस्य को मिल जाता है। तेल उसी धुरी मे डाला जाता है जो आवाज करती है।

इसीलिए कहते हैं कि प्रत्येक राष्ट्रपति जब पहले पहल 'ह्वाइट हाउस' में पहुँचता है तब वह "हनीमून" (सुहाग यात्रा) करता है। उस समय उसके हाथ में बहुतेरी नौकरियां होती हैं जिनसे वह अपने शत्रुओं को शान्त कर सकता है। ज्योंही उसकी नौकरियों का खजाना घटता है त्योंही कांग्रेस और 'ह्वाइट हाउस' में परम्परागत संघर्ष फिर छिड़ जाता है, और तभी से राष्ट्रपति को अपनी आकर्षण-शक्ति और जनता के समर्थन पर निर्भर रहना पड़ता है।

राष्ट्रपति फ्रेंकलिन रूजवेल्ट ने अपनी "अंगीठी के पास बैठकर बातचीत करने" का सिलसिला शुरू करके रेडियो का प्रयोग प्रभावशाली ढंग से करने की परम्परा डाली थी। कई बार क्रुद्ध और गुर्राती हुई कांग्रेस के साथ कठिन संघर्षों में रूजवेल्ट अपनी बात स्वीकृत करवा लेने में सफल हुए थे, क्योंकि कांग्रेस में उसके शत्रुओं को अपने राज्य की जनता का भय लगा रहता था।

इसके विपरीत, यदि राष्ट्रपति अपने दल के किसी कांग्रेस-सदस्य या सेनेटर को छाँटने का यत्न करे, तो उनका समर्थन करने के लिए जनता खड़ी हो जाती है। सन् १९३८ में रूजवेल्ट ने कुछ ऐसे डिमोक्रेटों को मतदाताओं से हरवाने का प्रयत्न किया था जो उसकी नीति का विरोध करते थे, परन्तु वे सभी प्रबल बहुमत से पुनर्निर्वाचित हो गये थे। जब राष्ट्रपति की पार्टी मतदाताओं के पास जाय तब उसे पार्टी का संगठित मोर्चा तोड़ने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए। हाँ, वह कभी-कभी, विशेषतः गुप्त रूप से, दल के किसी भीतरी शत्रु के विरुद्ध अपने प्रभाव का उपयोग कर सकता है।

राष्ट्रपति की दलगत छंटनियों का सर्वत्र विरोध होने का कारण प्रत्यक्ष वही तर्क है जिससे अमेरिकी द्विदलीय पद्धति का समर्थन किया जाता है और जिसके प्रति जनता की गहरी और स्वाभाविक आदर बुद्धि है।

अमेरिका का मन्त्रिमण्डल वैसा नहीं है जैसा कि ग्रेट ब्रिटेन के संसदीय लोकतन्त्र का मन्त्रिमण्डल होता है। अमेरिका में प्रशासनीय विभागों के अध्यक्ष कांग्रेस के सदस्य नहीं होते हैं और वे 'हाउस' के सदन में प्रश्नों का उत्तर देने के लिए नहीं जाते। राष्ट्रपति अपने मन्त्रिमण्डल का चुनाव करते हुए कई प्रकार की उलझनों और

आवश्यकताओ पर विचार करता है। कार्यदक्षता तो उनमे से केवल एक होती है। मन्त्रिमण्डल के पद उन राज्यो अथवा प्रदेशो मे देख-भालकर वितरित किये जाते हैं जहा मतदाताओ के मत प्राप्त करना आवश्यक होता है। महत्वपूर्ण धार्मिक और आर्थिक समूहों का भी इस वितरण मे ध्यान रक्खा जाता है। मन्त्रियो को ठोस डिमोक्रेटिक दक्षिणी राज्यो अथवा मैन और वार्मोण्ट जैसे ठोस रिपब्लिकन राज्यो मे शायद ही कभी लिया जाता है, क्योकि जिन राज्यो की जनता सदा एक ही पक्ष मे मत देती है उनकी स्थानीय देशभक्ति का लिहाज करना राजनीतिक साधनो का अपव्यय मात्र सिद्ध होता है।

नियमित विभागो के अध्यक्ष मन्त्रिमण्डल के सदस्य होते हैं और वे प्राय पूर्णतया राष्ट्रपति के नियन्त्रण मे काम करते हैं। राष्ट्रपति मन्त्रिमण्डल के किसी सदस्य को कोई ऐसा कर्तव्य पालन करने से इनकार करने पर पृथक् भी कर सकता है जो संवैधानिक अधिकारो पर आधारित हो। प्रारम्भ मे केवल 'स्टेट' ( वैदेशिक ) और युद्ध विभाग स्पष्ट रूप से राष्ट्रपति के अधीन रखे गये थे। ये दोनो विभाग राष्ट्रपति के संवैधानिक अधिकारो की ही शाखा समझे जाते थे। कोश-विभाग का सचिव अपने कार्यों का विवरण कांग्रेस के सामने प्रस्तुत करता था, क्योकि उसके कर्तव्य कांग्रेस के अधिकारो पर आधारित थे। परन्तु राष्ट्रपति वाशिंगटन ने धीरे-धीरे मन्त्रिमण्डल को राष्ट्रपति के नियन्त्रण मे लाना आरम्भ किया, और अब तो साधारणतया सभी विभागो पर राष्ट्रपति के अधिकार का कोई विरोध नहीं करता। इसके विपरीत, कांग्रेस अपने अधिकारो के आधार पर नये-नये कर्तव्यो की सृष्टि करके उन्हे सीधा ही मन्त्रिमण्डल के किसी सदस्य को या किसी ब्युरो के प्रमुख को सौंप सकती है। इस प्रकार के कर्तव्य पालन करने वाले अधिकारी पर राष्ट्रपति का अनुशासन अथवा नियन्त्रण कहाँ तक चल सकता है यह अभी पूर्णतया निश्चित नहीं हुआ है।

कांग्रेस ने बहुत-सी आपत्कालिक और स्वतन्त्र एजन्सियो की भी स्थापना की है, जैसे कि उसने सन् १९३५ में बेरोजगारो को रोजगार दिलाने के लिए 'वर्क्स प्रोग्रेस-ऐडमिनिस्ट्रेशन' ( निर्माण-उन्नति-शासन ) की और निजी उद्योगो की कुछ प्रथाओ का नियन्त्रण करने के लिए "फेडरल-ट्रेड-कमिशन" ( संघीय-व्यवसाय

आयोग) की की थी। राष्ट्रपति के साथ इन एजेन्सियों के सम्बन्ध के विषय में अनेक प्रश्न उठ हैं, परन्तु उनका कोई स्पष्ट हल न्यायालय भी नहीं दे सके।

“रूरल-इलेक्ट्रिफिकेशन ऐडमिनिस्ट्रेशन” (ग्राम विद्युत् विस्तार प्रशासन) सरीखी कुछ एजेन्सियाँ सार्वजनिक सेवक हैं और उनको किसी साधारण विभाग में अन्तर्भुक्त करके, राष्ट्रीय शासन के प्रमुख के रूप में राष्ट्रपति ही उनका नियन्त्रण कर सकता है। अन्य कुछेक उनकी स्वच्छता से राष्ट्रपति के नियन्त्रण में नहीं रक्खी जा सकतीं। “सिविल-ऐरोनॉटिक्स बोर्ड” (नागरिक उड्डयन बोर्ड) और “फेडरल कम्युनिकेशन्स कमीशन” (संघीय-संचार आयोग) को क्रमशः वायुयानों और रेडियो-स्टेशनों के संचालन के नियम बनाने का अधिकार दिया गया है और उनकी शक्ति कानून की होती है। इन एजेन्सियों का कर्तव्य है कि वे लोगों के विचारों का पता लगाकर वस्तुस्थिति का जानें और अपने निर्णय कांग्रेस द्वारा निर्धारित व्यापक सिद्धान्तों के अनुसार करें। साधारणतया इन एजेन्सियों को अपने अनुशासन अथवा नियन्त्रण में रखने का राष्ट्रपति को उतना अधिकार नहीं है जितना कि संघ के सरकारी कर्मचारियों को।

“फेडरल ट्रेड कमीशन” (संघीय व्यवसाय आयोग) सरीखी कुछ एजेन्सियाँ अर्ध न्यायिक होती हैं। यह कमीशन विविध पक्षों की बात सुनकर यह निर्णय दे सकता है कि अमुक व्यावसायिक संगठन कानून विरोधी आचरण कर रहा है और उसे अपना रास्ता बदलना पड़ेगा। सुप्रीम कोर्ट (सर्वोच्च न्यायालय) ने निर्णय दिया है कि “फेडरल ट्रेड कमीशन” के किसी कमिश्नर को राष्ट्रपति केवल इस कारण पृथक् नहीं कर सकता कि उसका कोई काम उसे नापसन्द है।

नीति, कार्यपालन और न्याय से सम्बद्ध विविध संस्थाओं के विशिष्ट निकाय का यह सिद्धान्त न्यायालयों की समझ में भी नहीं आता परन्तु इसके व्यावहारिक पक्ष को समझना उतना कठिन नहीं। अधिकारियों का चुनाव राष्ट्रपति ही करता है, वे चाहे उसके नियन्त्रण में रहें या नहीं, और उसकी पुष्टि सीनेट करती है। इस व्यवस्था की राजनीतिक वास्तविकता “फेडरल पावर कमीशन” (संघीय-शक्ति-आयोग) के उदाहरण से स्पष्ट हो जायगी। यह कमीशन अन्य वस्तुओं के अतिरिक्त प्राकृतिक

गैस के अन्तर राज्यीय वितरण का भी नियन्त्रण करता है। गैस कम्पनियाँ गैस का जो मूल्य वसूल करना चाहती थी उसे इस कमीशन ने स्वीकृत नही किया था। इस पर कम्पनियो ने कांग्रेस मे अपील की और वहाँ एक बिल पास करवा लिया, जिसके अनुसार इस प्रश्न का निर्णय कमीशन के हाथ मे नही रहा। राष्ट्रपति ने इस बिल के विरुद्ध अपने निषेधाधिकार का प्रयोग कर दिया, और कांग्रेस उनके निषेधाधिकार का प्रभाव अपने दो तिहाई बहुमत से समाप्त करने में सफल नही हो सकी। इसके पश्चात् एक ऐसे कमिश्नर का कार्य-काल समाप्त हो गया जिसने कम्पनियो से विरुद्ध मत दिया था, परन्तु वह पुन नियुक्त कर दिया गया। कम्पनियो ने सेनेट को मना लिया कि वह उस कमिश्नर की पुनर्नियुक्ति की पुष्टि नही करेगी। अन्त को कम्पनियो का पक्षपाती एक व्यक्ति कमिश्नर नियुक्त किया गया और उसकी पुष्टि सेनेट ने भी कर दी। इससे कमीशन का बहुमत बदल गया और उसने कम्पनियों की इच्छा को अपना लिया और यह संघर्ष समाप्त हो गया। इस कहानी का निचोड यह है कि कोई भी कमीशन या न्यायालय अतन्तोगत्वा निर्वाचन के परिणाम का ही अनुसरण करता है, यदि तुरन्त नही तो अन्त मे अपने सदस्यो मे परिवर्तन के पश्चात्। जिन असैनिक कर्मचारियों को नीति निर्धारण के अथवा राजनीतिक अधिकारियो के काम नहीं करने पडते उनकी नियुक्ति राजनीतिक विचार से नहीं की जाती। इनमे चपरासियों और द्वारपालो से लेकर अनुसन्धान विशेषज्ञो और निरीक्षकों तक रोजमर्रा का काम करने वाले कर्मचारी सम्मिलित होते हैं। यदि इनकी कोई राजनीतिक पसन्द-नापसन्द हो तो उसकी पूर्ति के लिए कानून इनको अपने निवास के राज्य मे मतदान की अनुमति प्रदान करता है। परन्तु ये राजनीति में सक्रिय भाग नहीं ले सकते।

परन्तु राजनीति कभी-कभी असैनिक कर्मचारियो की कार्यकुशलता में भी हस्तक्षेप कर देती है।

कांग्रेस ध्यान न भी दे तो भी बडी शक्तियाँ ऐसी हैं जो नागरिक अथवा असैनिक कर्मचारियो की कुशलता पर अनुकूल और प्रतिकूल प्रभाव डालती हैं। अनुकूल प्रभाव उन बहुसंख्यक विशेषज्ञ निरीक्षको का और ऊपर के अधिकारियो का पडता है जो

जानते हैं कि सरकारी कर्मचारियों को व्यवस्था मे किस प्रकार रखना चाहिए। ऊँचे अफसर भी यह जानते होते है और वे विशेषज्ञ व्यवस्थापकों का समर्थन करते रहते हैं। सन् १६४७ मे राष्ट्रपति ने एक शासकीय आज्ञा दी थी कि व्यवस्था मे उत्तमता को बढानेके लिए कुशलता को उत्तर करनेकी टेकनिकल विधियोंका आदान-प्रदान किया जाय। पीछे यह पद्धति और भी तीव्रता से अमल मे लाई गयी। इस आज्ञा मे कहा गया था कि शासनाधिकार एजेन्सियो को दे दिया जाय, प्रबन्ध का ऐसा दर्जा कायम किया जाय कि कार्य अधिक अच्छा होने लगे, और जिस प्रकार अत्यन्त आधुनिक बीमा कम्पनियो और बैंको मे विशेषज्ञों द्वारा निरीक्षण किया जाता है उसी प्रकार सरकारी विभागो मे भी किया जाय। सघीय शासन में कई स्तरो पर उच्च कुशलता दृष्टिगोचर होती है, और उसकी विधियो का अनुकरण बहुत से निजी व्यापारिक सगठन भी करते है।

शासन की कुशलता पर प्रतिकूल प्रभाव डालने वाली आन्तरिक शक्ति का काम वे अधिकारी करते हैं जो कि अपने अधीनस्थ कर्मचारियो के साथ व्यवहार करने की आधुनिक विधियो को नही जानते। निजी व्यापारिक सस्थाओं मे भी यही बात देखी जाती है। कुछ अधिकारी राजनीतिक कारणो से, या सैनिक योजनाएँ बनाने या वैदेशिक मामलो मे उच्च योग्यता के कारण नियुक्ति किये जाते हैं। सम्भव है कि उनको प्रबन्ध की कला का ज्ञान तनिक भी न होता हो। राष्ट्रपति अपने मन्त्रियों का चुनाव केवल इस आधार पर नही कर सकता कि उन्हें किसी बडे सगठन को अल्पव्यय मे सचालित करने का ज्ञान है या नही।

शासन-सचालन के व्यय मे कांग्रेस द्वारा रुचि लेने का परिणाम प्राय नागरिक कर्मचारियों की कुशलता घट जाने के रूप में प्रकट होता है। प्रबन्ध की आधुनिक विधियों का आधार; जैसा कि अत्यन्त सफल निजी व्यापारी संगठनों से प्रमाणित हुआ है, कर्मचारियो के साथ शिष्ट व्यवहार करने की नीति है। इस शिष्टता का एक नमूना पूर्वाह्न मे जलपान के लिए 'छुट्टी' दे देना है। शिष्टतापूर्ण प्रबन्ध का फल, अल्प व्यय में अधिक उत्पादन होता है। परन्तु ये विधियाँ सुगमता से राजनीतिक आक्षेपो का लक्ष्य बन जाती हैं।

कोई भी राजनीतिज्ञ, सरकारी कर्मचारियो पर प्रमाद और बेईमानी के कठोर आक्षेप करके, मत तो प्राप्त कर सकता है परन्तु लेखा ठीक-ठीक रखने पर पता चला है कि कांग्रेस मे किसी एजन्सी के विरुद्ध केवल एक आक्षेप-पूर्ण भाषण के कारण एक लाख डालर तक की हानि हो सकती है।

इसके विपरीत, जिन एजन्सियो का प्रमुख अधिकारी अच्छा व्यवस्थापक नहीं होता उनकी जाच यदि कांग्रेस न्याय और ईमानदारी से करवाये तो अपव्यय के प्रकट हो जाने के कारण धन की बचत हो जाती है।

अनैतिक कर्मचारियो सम्बन्धी नीतियो मे सुधार की आशा, ऐसे प्रमुख व्यवसायियो को सहायता लेने से भली प्रकार पूरी हो सकती है जो कुशलता के आधुनिक सिद्धान्तो को समझ चुके हैं। जब इस प्रकार के व्यक्ति पर्याप्त सख्या मे इन समस्या पर इस प्रकार ध्यान देने लगेंगे कि कांग्रेस पर भी उनका प्रबल प्रभाव पडे तब वे राजनीतिक आक्षेपो-प्रत्याक्षेपो को निरुत्साहित कर सकेंगे। उनसे यह आशा भी की जा सकती है कि वे शासन के अच्छे व्यवस्थापको के साथ अपनी टेकनिकल जानकारी का बडे पैमाने पर आदान-प्रदान करें और उनको आवश्यक सहायता दें।

संघीय (केन्द्रीय) शासन की विशालता सदा चिन्ता का विषय बनी रही है, अपने भारी व्यय के कारण ही नही, अपनी "नौकरशाही" के कारण, उससे भी अधिक। नौकरशाही शब्द का प्रयोग अमेरिकी भाषा मे यह प्रकट करने के लिए किया जाता है कि सहस्रो व्यक्तियो को नौकरी पर लगाने वाली शासन की विशाल एजन्सिया गडबड मे कही अदृश्य न हो जाय, और कांग्रेस का अथवा राष्ट्रपति तक का उन पर ध्यान भी न जाय। यह सन्देह भी है, और वह निष्कारण नही है, कि इनमें से कई एजन्सिया बहुत समय पूर्व किसी विशिष्ट संकट का सामना करने के लिए आरम्भ की गयी थी और वे अब तक स्वतन्त्र रूप मे चली आ रही हैं, क्योंकि किसी को उनका पता नही लगा और इसीलिए उन्हें अपना कार-बार समेट लेने के लिए नही कहा गया।

एक और विश्वास यह है, और वह अपेक्षाकृत अधिक साधार है, कि विविध समयो पर स्थापित की हुई विविध एजन्सियो ने अपना काम इतना फैला लिया है

कि एक ही काम को कई-कई एजन्सियां करने लगी हैं। कभी-कभी कोई-कोई एजन्सी अपने वर्तमान रूप में गलत विभाग का कार्य कर रही प्रतीत होती है, और उस काम का सम्बन्ध उसी प्रकार के अन्य कार्य के साथ ठीक प्रकार नहीं जोड़ा जाता।

हाल में सब राष्ट्रपतियों ने शासन-विभाग का पुनर्गठन करने का प्रयत्न किया है, जिसमें वह अधिक कुशल और तर्क-संगत बन जाय। राष्ट्रपति हूवर ने युद्ध-निवृत्त सैनिकों की बिखरी हुई एजन्सिया को एकत्र करके "वटरेन्स ऐडमिनिस्ट्रेशन" (युद्ध-निवृत्त विभाग) का संगठन कर दिया था। उन्होंने सन् १९३२ में "रिआर्गेनिजेशन ऐक्ट" (पुनर्गठन कानून) बनवाया था, जिससे उनको, कांग्रेस की देख-रेख में, विविध विभागों को परिवर्तित करने का अधिकार प्राप्त हो गया था। परन्तु इस प्रकार की सब नयी योजनाएं कांग्रेस के सामने उपस्थित की जाती थी और यदि कांग्रेस उन्हे साठ दिन के भीतर अस्वीकृत नही कर देती थी तो उन पर कानूनी छाप लग जाती थी।

सन् १९३२ में हाउस प्रतिनिधि सभा पर डिमोक्रेट पार्टी का अधिकार हो गया, और उसने श्री हूवर की योजनाओं को स्वीकार न करके, पुनर्गठन का काम डिमोक्रेटिक दल के नये राष्ट्रपति के लिए छोड़ देना पसन्द किया।

राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने सन् १९३६ मे एक समिति पुनर्गठन का अध्ययन करने के लिए नियुक्त की। उन्होंने सन् १९३७ में अति परिवर्तनकारी सिफारिशें की, और उनका राष्ट्रपति के विरोधियों ने प्रबल विरोध किया। सन् १९३९ में एक बहुत नरम बिल पास हुआ, और उसके अनुसार राष्ट्रपति कुछ परिवर्तन कर सके। उदाहरणार्थ, उन्होंने बजट को राष्ट्रपति के शासन-कार्यालय के अधीन कर दिया। युद्ध-काल में उन्होंने मकानों और जहाजों की एजन्सियो को "नैशनल-हाउसिंग-एजन्सी" (राष्ट्रीय-भवन-एजन्सी) और "वार-शिपिंग-ऐडमिनिस्ट्रेशन" (युद्ध-पोत-शासन) के रूप में दृढ कर दिया, और युद्ध-काल के विशेषाधिकारों के अनुसार भी अन्य अनेक सुधार किए।

राष्ट्रपति ट्रूमन ने सन् १९४७ मे एक "रिआर्गेनिजेशन ऐक्ट" (पुनर्गठन कानून) बनवाकर, उसके अनुसार भूतपूर्व राष्ट्रपति हूवर की अध्यक्षता में एक द्विदलीय

कमीशन नियुक्त किया। हूवर-कमीशन ने पूर्ण अध्ययन के पश्चात् कुछ सुझाव दिये, जिनसे, हूवर के अनुमान के अनुसार, सरकार को ३ अरब डालर प्रतिवर्ष की बचत हो सकती थी। 'हूवर' विवरण का जनता ने अच्छा स्वागत किया। राष्ट्रपति ट्रूमन ने कोई बीस योजनाएं कांग्रेस के सामने उपस्थित की, और कांग्रेस ने उनमे से तीन चौथाई को रहने भी दिया। सन् १९५३ मे कांग्रेस ने "रिआर्गेनिज़ेशन ऐक्ट" अर्थात् पुनर्गठन कानून की अवधि राष्ट्रपति आइजनहॉवर के लिए भी बढा दी।

ब्यूरो और एजन्सियो को पुनर्गठित करने के लाभ इतने प्रभावशाली कभी नही हुए कि जनता उनका उत्साह-पूर्वक समर्थन करती, परन्तु उनसे शासन के अनेक प्रमुख दोष अवश्य दूर हो गए। परन्तु "कोर ऑव इंजिनीयर्स" ( इंजिनीयरो की टुकडी ) सरीखी कुछ एजन्सियो को कांग्रेस मे इतना प्रबल राजनीतिक समर्थन प्राप्त है कि कोई भी राष्ट्रपति उनके विरोध की परवाह न करके उनमें परिवर्तन करने में अब तक सफल नही हो सका।

मितव्ययिता, अर्थात् जिस वस्तु की जनता को आवश्यकता नही उसे न खरीदना, कांग्रेस का काम है; परन्तु व्यय घटाने का यश प्राप्त करने की कांग्रेस की इच्छा को कोई भी राष्ट्रपति ऐसा 'चुस्त' बजट तैयार करके विफल कर सकता है जिसमें कि ऐसी कोई बात हो ही नही जिसकी जनता को आवश्यकता नही है। दूसरी ओर कुशलता अर्थात् न्यूनतम व्यय मे अधिकतम सिद्धि कर लेना, राष्ट्रपति का काम है। इसमे कांग्रेस पाई-पाई की कटौती करके और किन्ही विशिष्ट स्वार्थो को प्रसन्न रखने के लिए अपव्यय-पूर्ण व्यवस्थाएं करके, किसी हद तक राष्ट्रपति को असफल कर सकते है। परन्तु राष्ट्रपति हूवर और उनके उत्तराधिकारियो के विषय मे यह कहा जा सकता है कि औसतन उन सब ने अच्छे संगठन और आधुनिक प्रबन्ध की दशा मे कुछ प्रगति की है।

अध्याय ५

## कॉंग्रेस क्या है ?

संयुक्त राज्य अमेरिका की कांग्रेस और पार्लमेण्ट या ससद मे बडा अन्तर यह है कि कांग्रेस मे शासन की 'एक्जेक्यूटिव' (कार्यपालिका) शाखा के प्रतिनिधि शामिल नही होते। इगलैण्ड में जिस प्रकार प्रधानमन्त्री और उसका मन्त्रिमण्डल सदन के सदस्य होते हैं उस प्रकार अमेरिका मे राष्ट्रपति और उसका मन्त्रिमण्डल कांग्रेस के नही होते। कांग्रेस राष्ट्रपति को 'इम्पीचमेण्ट' की कारवाई के अतिरिक्त अन्य किसी प्रश्न का उत्तर देने के लिए विवश नही कर सकती, और न यदि वह किसी सरकारी बिल को पास करने से इनकार कर दे तो कोई सवैधानिक संकट खडा होता है। उसके कारण राष्ट्रपति न तो त्याग पत्र देता है और न वह कांग्रेस को बरखास्त करके जनता को नये निर्वाचन के लिए विवश कर सकता है।

संयुक्त राज्य अमेरिका के शासन मे जनता का प्रतिनिधित्व एक ओर तो कांग्रेस करती है और दूसरी ओर राष्ट्रपति। प्रत्येक को एक दूसरे के विरुद्ध जनता का समर्थन पाने के लिए उससे अपील करने का अधिकार तो होता ही है, साधन भी होते हैं, और वे उनका उपयोग भी करते हैं। परिणाम यह होता है कि 'एक्जेक्यूटिव' अर्थात् शासन की कार्यपालिका शाखा और कांग्रेस अर्थात् शासन की विधि-निर्मात्री शाखा मे सघर्ष का रूप प्रत्यक्ष युद्ध और विरामसन्धि मे बदलता रहता है। जब कांग्रेस पर राष्ट्रपति के दल का नियन्त्रण होता है तब भी यही क्रम चलता है। एक और परिस्थिति, जो कि ससदीय पद्धति में उत्पन्न नही हो सकती, तब सामने आती है

जब कि जनता राष्ट्रपति तो एक पार्टी का चुन देती है और कांग्रेस दूसरी को। तब शासन की कार्यपालिका और विधि-निर्मात्री शाखाए आप से आप एक दूसरे की विरोधी हो जाती ह।

इस प्रकार सयुक्त राज्य अमेरिका की कांग्रेस, पार्लमेण्ट या संसद की अपेक्षा ज्यादा गैर जिम्मेवार रहती है, क्योकि राष्ट्रपति के दल के ही सदस्य, राष्ट्रपति के पदत्याग पत्र देने का समर्थन न करते हुए भी, शासन के किसी प्रस्ताव के विरुद्ध मत दे सकते हैं। उत्तरदायित्व के इस अभाव के कारण कांग्रेस के आन्दोलनकारी नेताओ को सस्ती नामवरी कमाने का प्रोत्साहन होता रहता है, पदारूढ दल यह अनुभव नही करता कि उसका जीवन या मृत्यु कठोर अनुशासन पर निर्भर करता है।

उडरो विलसन जब कालेज मे प्रोफेसर थे तब उन्होने सविधान मे ऐसा परिवर्तन कर देने का विचार प्रस्तुत किया था, जिससे कांग्रेस को भी ससद के अधिकार और उत्तरदायित्व प्राप्त हो जाये। उनका तर्क यह था कि यदि कांग्रेस के सामने राष्ट्रपति का बिल स्वीकृत करने अथवा सकट खडा करने का विकल्प रहेगा तो वह अपना काम अधिक गम्भीरता से करेगी और जनता भी उसके काम को अधिक समझने का यत्न करेगी। जब विलसन राष्ट्रपति हो गए तब उन्होने कांग्रेस के द्वारा अडंगा लगाया जाने पर सकट खडा कर देने का विचार किया था। वह उपराष्ट्रपति और अपने मन्त्रियो सहित पद त्याग कर सकते थे, और तब उस समय के कानून के अनुसार राष्ट्रपति का उत्तराधिकारी कोई भी न रहता और कांग्रेस का नयी कार्यपालिका का चुनाव करना पडता। परन्तु उन्हे युद्ध का सामना करना पड गया और वह शासन की निर्धारित प्रणाली के विरुद्ध नही जा सके। सयुक्त राज्य अमेरिका मे कांग्रेस को ससद मे परिवर्तित कर देने की कोई प्रत्यक्ष सार्वजनिक माग नही है।

शासन की शाखाओ मे अधिकारो के इस विभाजन का एक परिणाम यह है कि सेनेट भी उतना महत्वपूर्ण सस्था बन गया है जितना कांग्रेस। अन्य देशो मे शासन की कार्यपालिका शाखा का नियन्त्रण द्वितीय सदन करता है इसलिए उसकी प्रवृत्ति सब अधिकार अपने हाथ मे लेने की ओर उच्च सदन को बूढे राजनीतिज्ञो की विवाद-

सभा के रूप में छोड़ देने की रहती है। उदाहरणार्थ, इंगलैण्ड में "हाउस-ऑव-लार्ड्स" से 'वीटो' का अर्थात् किसी बिल को निषिद्ध कर देने का अधिकार छीन लिया गया है। वह किसी बिल के विरुद्ध मत प्रकट करके उसे विलम्बित कर सकता है, परन्तु अन्तिम निर्णय "हाउस ऑव कामन्स" का ही रहता है। संयुक्त राज्य अमरिका में सेनेट भी उतनी ही शक्तिशाली है जितना कि हाउस, और कुछ मामलों में तो हाउस से भी अधिक।

अमेरिका के राजनीतिक जीवन में दो सदनों के विधान मण्डल की परम्परा की जड़ें बहुत गहरी हैं। औपनिवेशिक शासनता के समय भी दो ही सदन थे और अब भी, नेब्रास्का को छोड़कर, सब राज्यों में दो हो दो सदन हैं। परन्तु अब भी कोई एक सदन की कांग्रेस बनाने के पक्ष में आन्दोलन करने की कल्पना नहीं करता। इसका प्रधान कारण यह है कि संयुक्त राज्य अमेरिका आज भी बड़े और छोटे राज्यों का एक संघ है। बड़े और छोटे राज्यों को इस प्रकार मिलाने की समस्या का अभी तक ऐसा कोई हल नहीं सुझाया गया जिससे कि अमेरिका के लोग सन्तुष्ट हो जाय।

सब बिलों को दो विभिन्न सदनों में से गुजरना पड़ता है। इसके कारण आपत्काल में विलम्ब नहीं होता, क्योंकि तब सब लोग राष्ट्रपति के नेतृत्व में चलने के पक्षपाती बन जाते हैं। परन्तु साधारण काल में साधारण कानून मन्द गति से बनते हैं। एक ही प्रकार के विचारों को बार-बार दुहराया जाता है, इससे विरोधियों को प्रस्तावों की तुलना करने की अनेक सुविधाएँ मिल जाती हैं। अमेरिका की जनता की भावना शासन मात्र के विरुद्ध अविश्वास की है। ऐसा होते हुए भी विवादास्पद कानून सुगमता पास नहीं होते। इस बात पर कोई आश्चर्य नहीं किया जाता। कहावत भी है 'एक से दो मुड भले'।

यद्यपि संविधान में सुधार करके यह नियम कर दिया गया है कि सेनेटरों का निर्वाचन राज्य-विधान मण्डलों के स्थान पर साधारण मतदाता ही करेंगे, तो भी सेनेट और 'हाउस-ऑव-रिप्रेजेण्टटिव्ज़' के वातावरण में अन्तर रहता है। सेनेटर औसत कांग्रेस-सदस्यों की अपेक्षा कुछ वर्ष बूढ़े होते हैं। कांग्रेस सदस्य बहुधा बढ़कर सेनेट में पहुंच जाते हैं। परन्तु ऐसे व्यक्ति बहुत कम मिलेंगे जिन्होंने सेनेट का सदस्य

रह चुकने के पश्चात् कांग्रेस का चुनाव लडा हो। सेनटरो का पद अधिक प्रतिष्ठित समझा जाता है उनकी सख्या केवल ९६ है। और कांग्रेस-सदस्यो की ४३५। सेनेट के सदस्यो को अपनी बात प्रकाशित करने के अनक अवसर मिलते है और उनका उपयोग भलाई या बुराई के लिए किया जा सकता है।

सेनेट को विदेशो के साथ की हुई सधियो और राष्ट्रपति द्वारा की हुई नियुक्तियो को पुष्ट करने का अधिकार है। इस कारण बहुत-से सेनेटर वैदेशिक सम्बधो और शासन के संगठन पर विशेष ध्यान देते हैं। उनमे से कई एक विषयो के प्रतिष्ठित और प्रमाणिक ज्ञाता बन गये हैं।

सेनेट और हाउस के आधे से अधिक सदस्य वकील हैं। कोई वकील कांग्रेस के एक कार्य काल तक उसका सदस्य रहने के बाद यदि पुर्नर्निर्वाचन मे हार जाय तो वह अपना कानूनी पेशा फिर अपना सकता है और साधारणतया उसकी वकालत पहले से अच्छी चलने की सम्भावना रहती है। इसके अतिरिक्त, कांग्रेस के सदस्यो के लिए कानून दफ्तरो मे साझीदार बने रहना खिलाफ-कानून नही है, और जिन लोगो का नए कानूनो मे कुछ स्वार्थ होता है वे ऐसे वकीलो को अपना वकील बनाये रखने के लिए फीस देते रहते हैं। सरकारी कर्मचारी या कार्यपालिका शाखा के अधिकारी यदि इस प्रकार का सम्बन्ध बनाये रखे, तो बुरा माना जाता है।

एक स्कूल के एक विद्यार्थी ने एक बार कहा था कि "हमारा शासन वकीलो का है, मनुष्यो का नही।" यह अत्युक्ति है। परन्तु इसमे सन्देह नही कि अर्थ-नीति और अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग जैसे बडे-बडे प्रश्नों मे भी कांग्रेस के मत पर, इजिनियर, व्यापारी या पत्रकार की विचारशैली की अपेक्षा प्राय वकील के चिन्तन की छाप अधिक रहती है।

कांग्रेस और राष्ट्रपति दो बडे साधन है जिनके द्वारा राष्ट्र के राजनीतिक दल देश पर शासन करते और सत्ता प्राप्ति के लिए सघर्ष करते हैं। राष्ट्रपति एक व्यक्ति होता है, इसलिए दल मे उसकी स्थिति अधिक निश्चित होती है, और वह उसके पुर्नर्निर्वाचन मे अथवा इतिहास मे जो स्थान प्राप्त करना चाहता हो उसकी

प्राप्ति में सहायक होती है। दूसरी ओर कांग्रेस में राष्ट्रपति के ही दल में सदा कुछ व्यक्ति ऐसे भी रहते हैं जो किसी न किसी प्रकार राष्ट्रपति की नीतियों का विरोध करते रहते हैं। इनमें कुछ व्यक्ति ऐसे भी होते हैं जो यह समझते हैं कि हमारा पुनर्निर्वाचन स्थानीय स्वार्थों पर निर्भर करता है, और वे स्वयं दल की साधारण नीति के विरोधी हो सकते हैं। इसलिए प्रत्येक दल कांग्रेस के अन्दर सदा मत-विभाजनों से बंटा रहता है; और यही हाल विरोधी दल का रहता है।

कांग्रेस का उत्तरदायित्व केवल प्रति दो वर्ष पश्चात् परखा जाता है, और तब भी साधारणतया कुछ अनिश्चित रूप में। बहुत से कांग्रेस सदस्यों के मत का आगामी चुनाव पर प्रायः सामूहिक रूप से कोई स्पष्ट प्रभाव नहीं पड़ता, यद्यपि किसी कांग्रेस-सदस्य का अपने जिले में निर्णायक प्रभाव हो सकता है। यही कारण है कि दलों में अनुशासन का अभाव रहता है। बहुत से कांग्रेस-सदस्य ऐसे 'सुरक्षित' जिलों के होते हैं जो बारम्बार उन्हीं को चुनकर भेज देते हैं, चाहे कि वे अपने जिले के लोगों की परवाह न करें; और उनके ऐसा करने की सम्भावना कठिनाई से ही हो सकती है। वे अपने राष्ट्रीय दल से प्रायः सर्वथा स्वतन्त्र होते हैं; हां, यदि उनका दल चुनाव हार जाय तो कांग्रेस की किसी समिति का अध्यक्ष बनने का अवसर भी उनके हाथ से निकल जाता है। इसलिए जो राज्य और जिले स्थानीय परिस्थितियों में परिवर्तन न होने के कारण उन्हीं प्रतिनिधियों को बारम्बार चुनकर भेजते रहते हैं उनमें स्पष्टतः जनता के प्रति कांग्रेस का उत्तरदायित्व केवल छाया के रूप में रहता है। स्पष्टतः जनता कांग्रेस के विषय में अपना मत प्रकट करने के लिए केवल तभी दिखाई पड़ती है जब संघर्ष तीव्र हो, और उसमें जब किसी उम्मीदवार का सम्बन्ध उन प्रश्नों के साथ जुड़ा हो जिन्हें कि जनता महत्वपूर्ण समझती है।

जो राज्य किसी एक पार्टी का प्रभाव न होने के कारण संदिग्ध माने जाते हैं और जिनके मतदाता मत देते समय अपने आप को किसी पार्टी से बंधा हुआ नहीं समझते, उनमें साधारणतया चुनाव का निर्णय उन्हीं के स्वतन्त्र मतों से होता है।

और यदि राज्य में किसी एक दल का प्रभाव अधिक हो तो स्वतन्त्र मतदाता उसके साथ मिलकर उसके प्रारम्भिक निर्वाचना मे अपना प्रभाव बढा सकते है ।

परन्तु जैसा कि लावेल मेलेट ने अपनी पुस्तिका "हेण्डबुक आव पालिटिक्स" (राजनीनि का गुटका) मे बतलाया हे, स्वतन्त्र निर्वाचक बहुधा अपने मतो को बाट कर अपनी शक्ति को व्यर्थ खो देते है । स्वतन्त्र मतदाता प्राय उदार होते हैं। वे सुगमता से यह विश्वास कर लेते हैं कि उनका कर्त्तव्य प्रारम्भिक निर्वाचना मे सर्वोत्तम उम्मीदवार को ही मत देने का हे। किसी बात पर अपना 'प्रतिवाद' प्रकट करने के लिए व अपने बहुत से मत किसी छोटे उप-दल को दे बैठते हैं। यदि यही समत वे बडे दला मे से किसी के उम्मीदवार को द तो चुनाव पर उनका निर्णयाक प्रभाव पड सकता है।

जो राजनीतिज्ञ नियमित रूप से पार्टियो का काम करते हैं वे स्वतन्त्र मतदाताओ के इस स्वभाव का लाभ कभी-कभी बडी चतुराई से उठा लेते हे। जब उन्हे स्वतन्त्र मतदाताओ का डर होता हे तब वे चुपचाप किसी ऐसे अतिरिक्त उम्मीदवार का समर्थन करके उनके मता को व्यर्थ कर देते हैं जो जीत तो नहीं सकता 'परन्तु सर्वोत्तम व्यक्ति' को मत देना चाहने वालो के मत अवश्य खीच लेता है।

यदि शक्ति का पासग स्वतन्त्र मतदाताओ के हाथ मे हो तो उसका सफलतापूर्वक उपयोग करने का उपाय यह हे, जैसा कि मेलेट ने भी बतलाया है, कि वे परस्पर मिलकर निर्णय कर लें कि जो व्यक्ति इस समय पदारूढ हे वह यदि पुनर्निर्वाचन के लिए खडा होगा तो वह उन्हे पसन्द होगा या नही । यदि वे उसे पसन्द करे तो मिलकर उसे सफल बना सकते हैं, और तब इसके पुरानेपन और प्रभाव, दोनो में वृद्धि हो जायगी। यदि वे उसे पसन्द न करें तो उन्हे मिलकर उसके ऐसे प्रतिस्पर्धी को मत देना चाहिए जिसके 'सर्वोत्तम' उम्मीदवार न होने पर भी जीतने की सम्भावना सब से अधिक हो। कोई उम्मीदवार कितना ही नापसन्द क्यो न हो वह जब पदारूढ व्यक्ति को हराकर कांग्रेस मे जायगा तब उसे 'नया' माना जायगा उसके साथ पुरानपन का प्रभाव नही होगा ।

स्वयप्रभू जनता के साथ उसके विधि निर्माता प्रतिनिधियो के ये सम्बन्ध कितने ही भयकर रूप से शिथिल क्यो न प्रतीत हो, "स्वतन्त्रता की घोषणा" में जनतन्त्र का जो यह मौलिक सिद्धान्त घोषित किया गया है कि शासको को सब न्यायसगत अधिकार शासितो से ही प्राप्त होते हैं, उसके साथ इनकी सगति अवश्य बैठ जाती है। जिन राज्यो और कांग्रेस के जिलो मे सदा एक ही दल की जीत होती है, उनमे शासित जनता की व्यापक सहमति बिना अधिक विवाद के उसी दल के पक्ष मे दी हुई रहती है। वह जब चाहे तब इस कोरे चेक को वापिस भी ले सकती है। इसके अतिरिक्त लोकतन्त्रीय शासन की एक बडी विशेषता यह है कि न केवल उन्हे जो अपना मत नही देते अपितु उन्हे भी जो कि मत देते हैं परन्तु हार जाते हैं, जीतने वालो द्वारा शासित होने के लिए चुपचाप सहमत हो जाना चाहिए। कांग्रेस की निर्वाचन प्रणाली मे अन्य निर्बलताएं चाहे जो हो, उससे यह परिणाम तो निकल ही आता है।

यदि जनता राष्ट्रपति के काम का लेखा देखकर उसे पसन्द करे और 'ह्वाइट हाउस' पर दोबारा उसके दल का अधिकार हो जाय तो इससे उसके दल के कांग्रेस-सदस्यो को लाभ होता है। कांग्रेस-चुनाव के कडे मुकाबले मे भी उसी पक्ष का पल्ला भारी रहने की सम्भावना होती है जो राष्ट्रपति के चुनाव में जीता हो। इसे राष्ट्रपति के "कोट की पूछ पर सवार होना" कहते हैं। 'कोट की पूछ' के सिद्धान्त का उपयोग नि सन्देह कांग्रेस-सदस्यो और सेनेटरो की निष्ठा अपने दल के नेता के प्रति दृढ करने में तो होता ही है। यदि वे उसकी अधिक हानि करेंगे तो उससे उनकी अपनी भी हानि होगी। यह एक स्मरण रखने योग्य तथ्य है कि ह्वाइट हाउस पर जिस पार्टी का अधिकार होता है वह उन मध्य-वर्ती चुनावो मे जिनमे कि राष्ट्रपति नही चुना जाता, सदा कुछ स्थान खो बैठती है।

कांग्रेस मे दल का नेता प्राय उन सदस्यो में से चुना जाता है जो राष्ट्रपति का समर्थन करते हैं, परन्तु कुछ समितियो के प्रधान ह्वाइट हाउस के पूर्ण विरोधी भी हो सकते हैं। यद्यपि उन्हे अपने क्षेत्र मे बहुत अधिकार होते हैं। उदाहरणार्थ, सन् १९५३ में राष्ट्रपति आइजनहोवर का शासन आरम्भ होते के समय, हाउस की "वेज

एण्ड-मीन्स-कमिटी (उपाय-नया-साधन समिति) के चेयरमैन ने टैक्स घटाने से पहले बजट को सन्तुलित करने की राष्ट्रपति की नीति का तीव्र विरोध किया था।

इस प्रकार की अनुशासनहीनताओं के कारण आगामी चुनाव में दल में फूट पड़ जाने का भय रहता है, और इस कारण दल के सगठन को अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए अनेक सुझाव पेश किये गये हैं। कई बार दोनों सदनों के दलीय 'कॉकसों' अर्थात् नीति-निर्धारक सम्मेलनों ने यत्न किया है कि उनके सदस्य दल के निर्णय पर ही चलें। परन्तु जो पहले कोई प्रतिज्ञा किये हुए होते हैं अथवा जिन्हें उस निर्णय के अनुसार मत देने में अन्य कोई आपत्ति होती है, उनके लिए बचाव का कोई मार्ग निकल ही आता है। अनुशासन का पालन कराने के प्रयत्नों की सफलता में बाधा यह है कि जो उसका भंग करते हैं उनके लिए दण्ड की व्यवस्था कुछ नहीं है। सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि राष्ट्रीय दल के नेता किसी भी व्यक्ति को उसके राज्य में उसके दल से निकाल नहीं सकते। यदि वह अपने आप को डिमोक्रेट कहता है परन्तु मत रिपब्लिकनों के साथ देता है तो उसे वैसा करने से तबतक कोई नहीं रोक सकता जबतक कि उसके राज्य की जनता उसे निर्वाचित करती रहे। दल अधिक से अधिक इतना कर सकता है कि उसे समितियों में से निकाल दे, जैसा कि रिपब्लिकनों ने सन् १९५३ में सेनेटर मौर्स को किया था।

सब मिलाकर अनुशासन-हीनता उस द्विदलीय पद्धति का तर्कसंगत परिश्रम है जो कि अमेरिका की कांग्रेस में प्रचलित है। उसमें संसदीय अधिकारों और उत्तर-दायित्वों के लिए कोई स्थान नहीं है।

राष्ट्रपति के विरोधी दल का प्रायः कांग्रेस के दोनों सदनों में अल्पमत रहता है, परन्तु सदा नहीं। अल्पमत का कर्तव्य निरा विरोध करना है, यह विचार केवल अंशतः सत्य है। निःसन्देह विरोधी दल का कर्तव्य है कि वह संदिग्ध प्रश्नों पर पूर्ण विवाद करे और शासन के संदिग्ध कार्यों की पूरी-पूरी जाँच करवाये। परन्तु अल्पमत दल के आन्तरिक मतभेदों और राष्ट्रपति तथा बहुमत दल के पारस्परिक विरोधों के कारण विरोधी दल उलझन में फंस जाता है। प्रत्येक दल के कुछ सदस्य

अधिकतर प्रश्नों पर अपने ही दल के विरुद्ध मत देने को तैयार रहते हैं। अल्पमत दल के अनिनिष्ठावान सदस्य भी बहुधा यह सोचने लगते हैं कि हमें राष्ट्रपति का या उसके दल का विरोध करना चाहिए या नहीं।

सन् १९३३ से सन् १९५२ तक रिपब्लिकनों की नीति साधारणतया राष्ट्रपति का विरोध करने की थी। जब राष्ट्रपति को कांग्रेस में किसी कठिनाई का सामना करना पड़ता था तब रिपब्लिकन मत-विभाजन में दक्षिण के डिमोक्रेटों का साथ दिया करते थे, जो राष्ट्रपति के अपने ही दल में उसके विरोधी थे। बहुत समय तक इस नीति का चुनावों की हार जीत पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा, क्योंकि जनता कांग्रेस के डिमोक्रेटिक दल की अपेक्षा राष्ट्रपति की पक्षपाती अधिक थी। अन्त में जाकर यह नीति सफल तभी हुई जब मतदाता शासन की आलोचना से प्रभावित होने लगे।

जब राष्ट्रपति को ऐसी कांग्रेस का सामना करना पड़ता है जो कि विरोधी दल के नियन्त्रण में हो तब कांग्रेस और ह्वाइट हाउस का साधारण विरोध तीव्र रूप धारण कर लेता है। परन्तु इसकी भी सीमा है। कुछेक "पागल" सदस्यों को छोड़ कर कोई भी राजनीतिज्ञ राष्ट्रपति के विरोध में युद्ध को इतना लम्बा नहीं खींचता कि उससे राष्ट्र की सुरक्षा ही जोखिम में पड़ जाय। कानूनन राष्ट्रपति का विरोध करनेवाली कांग्रेस को अधिकार होता है कि वह शासन का व्यय अस्वीकृत कर दे, और विरोधी सेनेट चाहे तो राष्ट्रपति के मन्त्रिमण्डल की नियुक्ति अस्वीकृत कर सकती है, परन्तु अन्तिम परिणाम की दृष्टि से कांग्रेस के समझदार सदस्य चरम सीमा तक जाना अच्छी राजनीति नहीं समझते। फलतः युद्ध सर्वग्रासी नहीं होने पाता।

उदाहरणार्थ, श्री ट्रूमन को अस्सीवीं कांग्रेस से मार्शल योजना स्वीकृत कराने में सफलता मिल गयी थी, क्योंकि रिपब्लिकनों के नेता सैनेटर वैन्डनबर्ग ने अपनी पार्टी का मार्ग-प्रदर्शन बुद्धिमत्ता से किया था। उसने अपने दल को समझाया कि ऐसे मामले पर लड़ाई ठानना उचित नहीं जिससे उसे लाभ कम और हानि अधिक हो सकती है। यदि यह योजना अस्वीकृत हो जाती और इटली में सन् १९४८ के चुनावों में कम्यूनिस्ट पार्टी जीत जाती तो संयुक्त राज्य अमेरिका में इटली के संकट के लिए

उत्तरदायी उन लोगो को ठहराया जाता जिन्होंने मार्शल योजना को स्वीकृत नही होने दिया था।

परन्तु आन्तरिक मामलो में अस्सीवी कांग्रेस के नियन्त्रण-कर्त्ता रिपब्लिकनो और डिमोक्रेट राष्ट्रपति मे जो आतंक-युद्ध छिडा रहता था वह कोई छोटा-मोटा नही था। राष्ट्रपति चाहता था कि जो प्रस्ताव कुछ भी लोक-प्रिय हो उन्हे कांग्रेस पास कर दे। इनमे कुछ प्रस्ताव ऐसे भी थे जिन्हे शायद डिमोक्रेटिक कांग्रेस भी पास न करती। तब रिपब्लिकन कांग्रेस बहुत से डिमोक्रेटो की सहायता से श्री ट्रूमन के प्रत्येक प्रस्ताव को अस्वीकृत करने लगी तब उनको आन्दोलन करने के लिए एक नया आधार मिल गया। फल यह हुआ कि यद्यपि रिपब्लिकन श्री ट्रूमन की अधिकतर नीतियो को रोकने में सफल हो गए परन्तु उनका दोष ट्रूमन पर नही डाल सके, और वह चुनाव जीत गए।

इसके विपरीत, जब सन् १९३२ मे राष्ट्रपति हूवर को विरोधी कांग्रेस का सामना करना पडा तब डिमोक्रेटो ने मन्दी दूर करने के उसके अन्तिम प्रयत्नो को भी सफल नही होने दिया और उस असफलता का दोष भी उसके ही सिर पडा। ऐसी स्थिति इतनी अधिक बार हो चुकी है कि यह साधारण विश्वास सा बन गया है कि जिस राष्ट्रपति का दल मध्यवर्ती निर्वाचन मे कांग्रेस पर से अपना नियन्त्रण खो देगा, वह दो वर्ष पश्चात् के चुनाव मे भी अवश्य हार जायगा।

यह कुछ विचित्र बात लगती है कि कांग्रेस और राष्ट्रपति के संघर्ष की, दोनो पार्टियो के बीच के निरन्तर सघर्ष टक्कर होती रहने पर भी, शासन अपने सभी कार्य करवा लेता है। कारण यह है कि यहाँ सघर्ष के जिन रूपों का वर्णन किया गया है वह राजनीतिक पक्ष का महत्व प्रकट करने के लिए ही किया गया है, परन्तु बहुत से प्रभाव ऐसे होते हैं जिनका फल अन्त मे परस्पर सम्मति और व्यावहारिक कार्यवाही के रूप में प्रकट होता है। ऐसा एक प्रभाव यह तथ्य है कि दोनो ही दलो मे उदार और अनुदार विचारो के लोग होते हैं। राष्ट्रपति को सदा विरोधी दल से भी कुछ न कुछ सहायता मिल जाती है। यह चाहे तर्क-विरुद्ध प्रतीत होता हो, परन्तु इसके

कारण विरोधी दलों में सर्वग्रासी युद्ध नहीं होने पाता। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि जो लोग कांग्रेस में नेता के पद तक पहुँचते हैं उनमें बहुसंख्या ऐसे व्यवहार-निपुण राजनीतिज्ञों की होती है जो समझौते की कला में कुशलता के कारण ही शक्ति प्राप्त किये होते हैं।

अध्याय ६

# कॉंग्रेस की कार्य-प्रणाली

प्रति दो वर्ष पश्चात् नयी कांग्रेस चुनी जाती है। उदाहरणार्थ, बयासीवीं कांग्रेस सन् १९५० मे और तिरासीवी सन् १९५२ मे चुनी गई थी। प्रत्येक नये निर्वाचन मे 'हाउस' के सब और 'सेनेट' के एक तिहाई सदस्य चुने जाते हैं।

कांग्रेस का अधिवेशन वर्ष मे कम से कम एक बार अवश्य होना चाहिए। इसकी बैठक ३ जनवरी को नियम-पूर्वक होती है। नयी कांग्रेस अपने प्रथम अधिवेशन मे अपना 'संगठन' करती, अर्थात् बहुमत दल मे से अपने पदाधिकारी चुनती और समितियो के अध्यक्ष तथा सदस्य नियुक्त करती है।

सेनेट का अध्यक्ष संयुक्त राज्य अमेरिका का उपराष्ट्रपति होता है और मत-विभाजन के समय पक्ष-विपक्ष मे समान मत आने पर निर्णायक मत देता है। उसके अन्य कर्तव्य अनिश्चित हैं। 'ह्वाइट-हाउस' चाहे तो उपराष्ट्रपति से सेनेट के साथ सम्पर्क रखने का काम ले सकता है अथवा उसे मन्त्रिमण्डल की बैठक मे सम्मिलित रखकर उसे राष्ट्रपति के कर्तव्यो का निर्वाह करने का अभ्यास भी करवा सकता है। जो उपराष्ट्रपति पहले सेनेटर रह चुका हो वह कभी-कभी अपने भूतपूर्व साथियो को प्रभावित भी अच्छी तरह कर सकता है।

सेनेट एक स्थानापन्न अध्यक्ष भी चुन लेती है, जो उपराष्ट्रपति की अनुपस्थिति मे कार्य करता है। सेनेट के अन्य निर्वाचित पदाधिकारी 'सेक्रेटरी' और 'सारजेण्ट-एट-आर्म्स' होते हैं, जो उसका रोजाना का काम चलाते हैं। उनके

अतिरिक्त पादरी, और बहुमत तथा अल्पमत दलों के सेक्रेटरी भी होते हैं। यदि निर्वाचन में राजनीतिक काया पलट हो न हो जाय तो समितियों के प्रधान आदि, सिनेट के अतिरिक्त पदाधिकारी, पुराने कांग्रेस के ही चलते रहते हैं।

पदाधिकारियों, समितियों के अध्यक्षों, और बहुमत-दल की समिति के सदस्यों को बहुमत-दल का 'कॉकस' नामजद करता है। साधारणतया, इन सबको पूर्ण सिनेट प्रथम बार के निर्वाचन में ही चुन लेती है। अल्पमत-दल अपने जिन सदस्यों को समितियों में रखवाना चाहता है उनका चुनाव वह स्वयं करता है। चुनाव के समय सदस्यों के पुरानेपन का लिहाज बहुत अधिक किया जाता है। किसी समिति का अध्यक्ष प्रायः सदा बहुमत-दल का वही सदस्य होता है। जो उस समिति में सबसे अधिक समय तक काम कर चुका होता है। पुरानेपन के कारण ही किसी-किसी सिनेटर को अपनी समिति के पदों पर नियुक्तियों का अधिकार भी प्राप्त हो जाता है।

'हाउस' का अध्यक्ष स्पीकर कहलाता है। उसका निर्वाचन सदस्य करते हैं और वह सदा 'हाउस' के बहुमत-दल का कोई व्यक्ति होता है। यदि राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति का देहान्त हो जाय तो राष्ट्रपति का प्रथम उत्तराधिकारी 'स्पीकर' ही होता है। कांग्रेस में सबसे अधिक शक्तिशाली पद उसका ही है।

यद्यपि इस पद का नाम इंगलैण्ड की परम्परा से लिया गया है, परन्तु स्पीकर के काम वही नहीं हैं जो इंगलैण्ड में। इंगलैण्ड का 'हाउस ऑव् कामन्स' अपने 'स्पीकर' का चुनाव, अध्यक्षीय कार्य में उसकी निष्पक्षता और योग्यता के कारण करता है। परन्तु संयुक्त राज्य अमेरिका की कांग्रेस में स्पीकर दलीय नियन्त्रण का एक सबसे महत्त्वपूर्ण साधन होता है। उदाहरणार्थ, कांग्रेस के दोनों सदनों में विचार विनिमय के लिए हाउस की समितियों के सदस्य वही नियुक्त करता है। इन सदस्यों का काम यह होता है कि सिनेट के अपने समान प्रतिनिधियों के साथ मिल कर हाउस और सिनेट के एक ही विषय के बिलों में अन्तर को दूर कर दें। इनकी

संयुक्त रचना को साधारणतया दोनो सदन स्वीकार कर लेते हैं, और इस कारण बहुत से अति महत्वपूर्ण प्रश्नो मे से कइयो का निर्णय इस बात पर निर्भर रहता है कि सयुक्त विचार विनिमय के लिए स्पीकर किसे चुनता है।

स्पीकर अपनी इच्छानुसार निर्णय कर सकता है कि सदन मे किसे भाषण करने दिया जाय और किसे नही। यदि यह सन्देह हो कि किसी बिल पर विचार करने के लिए किन्ही दो समितियो मे से कौन सी उपयुक्त है तो स्पीकर निर्णय दे सकता है कि बिल किसके सुपुर्द किया जाय, और इस प्रकार वह बिल उसकी समर्थक या विरोधी समिति के हाथ मे पहुँच सकता है। स्पीकर चाहे तो अपने स्थान पर किसी को नियुक्त करके स्वय सभा मे सम्मिलित होकर विवाद मे भाग ले सकता है।

सन् १६१० से पूर्व तक, मेन राज्य के टॉमस बी. रीड और इलिनॉय राज्य के 'अकल जो' कैनन के हाथो मे पडकर स्पीकर का कार्य कठोर लौह शासन मे परिणत हो गया था। स्थायी समितियो के सब सदस्यो की नियुक्ति स्पीकर कैनन स्वयं करता था। नियम-समिति का अध्यक्ष भी वह स्वयं ही रहता था। इस समिति को अधिकार था कि वह चाहती तो किसी बिल पर कारवाई को रोक सकती थी। सन् १६१० मे डिमोक्रेट और पश्चिम के 'विद्रोही' रिपब्लिकन मिलकर, स्पीकर को नियम-समिति से पृथक् रखने मे सफल हो गये, और बाद को उन्होने उससे स्थायी-समितिया नियुक्त करने का अधिकार भी छीन लिया।

सेनेट के समान, हाउस मे भी प्राय मुख्य पदो पर, विशेषत समितियो के अध्यक्षो और अधिकारी समितियो के सदस्यो की नियुक्तिया करते हुए पुरानेपन का अत्यधिक विचार किया जाता है। इसका फल यह होता है कि कांग्रेस मे प्राय अति महत्वपूर्ण पदो पर ऐसे बूढे व्यक्ति नियुक्त हो जाते हैं जो अपने 'सुरक्षित' राज्यो से अपने जीवन-भर बार-बार निर्वाचित होकर आते रहते हैं।

पदाधिकारियो और समितियो के अतिरिक्त, सेनेट और हाउस दोनो मे दलो के अपने-अपने सगठन होते है, और उनका कानून बनाने पर प्रभावशाली नियन्त्रण रहता है।

प्रत्येक सदन में प्रत्येक दल का संगठन होता है। डिमाक्रेट इसे 'काकस' कहते हैं और रिपब्लिकन "कॉनफ्रेन्स"। दल अपने सदस्यों को न केवल अविहित पदों के लिए नामजद करते हैं, वे सदन के लिए अपना नेता और सहायक नेता अर्थात् सचेतक भी चुनते हैं। सदन का नेता सदन में अपने दल की कार्य-शैली का निर्देशक होता है। वही निश्चय करता है कि कौन सदस्य कब क्या बोलेगा, और काम को शीघ्र निवटाया जाय या लम्बा खींचा जाय। सचेतक सब सदस्यों को अपनी दृष्टि में रखता है और जब 'वोट' के लिए उनकी आवश्यकता होती है तब उन्हें ले आता है।

बहुमत-दल की 'हाउस' में एक मार्ग-निर्देशक समिति भी होती है। सदन का नेता ही उसका भी नेता होता है। वह नियम-समिति के निकट सम्पर्क में रहती है, और दल की 'कॉनफ्रेन्स' या 'काकस' जिस बिल का समर्थन करने का निश्चय करती है उसे आगे बढ़ाने का यत्न करती है। सेनेट में दोनों दलों की मार्ग-निर्देशक समितियाँ होती हैं, परन्तु उनका बल थोड़ा होता है, क्योंकि सेनेटर मुश्किल से वश में नहीं आते।

दलों के संगठन का विधि-निर्माण पर प्रबल प्रभाव होता है, यद्यपि वे सदा ही उसका नियन्त्रण नहीं कर पाते। जब कोई बात 'दल' की बात बन जाती है, तब यह प्रभाव विशेष रूप से प्रकट होता है क्योंकि प्रत्येक दल दूसरे दल के विरोध में अपना मार्ग निश्चित कर लेता है। ऐसे मामलों में दल के संगठन विवाद के संचालन तथा सदस्यों को एकत्र करने के द्वारा सहायता करते हैं। परन्तु बहुधा विचाराधीन प्रश्न के कारण दोनों दलों में आन्तरिक मतभेद खड़े हो जाते हैं, और तब दलीय संगठन अधिक पुराने और प्रभावशाली सदस्यों की इच्छा पूरी करने का यत्न करते हैं। यह कोई असाधारण बात नहीं कि दोनों दलों का नियन्त्रण करने वाले, दोनों दलों के युवक सदस्यों के विरुद्ध अनियमित रूप से मिल कर एक हो जायं। उदाहरणार्थ, श्री ट्रूमैन के समय दोनों दलों के पुराने लोगों में राष्ट्रपति के विरुद्ध परस्पर सहयोग के चिह्न बहुधा दृष्टिगोचर हुआ करते थे।

जो यात्री वाशिंगटन जाते और सेनेट या हाउस की कार्रवाई दर्शकों की गैलरी मे बैठकर देखते हैं वे सदन का दृश्य देख कर बहुधा स्तब्ध रह जाते हैं। साधारणतया जब किसी सदस्य का भाषण हो रहा होता है तब अधिकतर आसन खाली पडे रहते हैं। जो सदस्य उपस्थित होते हैं वे भी कुछ पढते रहते या घूम फिरकर एक दूसरे के साथ बात-चीत करते रहते हैं। कुछेक का ध्यान स्पीकर पर लगा रहता है और वे बार-बार उसे टोकते रहते है, कभी-कभी उसका पक्ष लेने के लिए, परन्तु अधिकतर उसकी युक्तियो को काटने के लिए। फिर मत विभाजन या 'कोरम' के लिए सब सदस्यो को नाम लेकर पुकारा जाता है। तब सारा भवन और कार्यालयो की इमारतें घण्टियो से गूंज जाती है और सदस्य अपने नाम की पुकार का उत्तर देने के लिए आकर तुरन्त एकत्र होने लगते हैं। शीघ्र ही वे पुनः बिखर जाते हैं, और फिर उदासीनता का साधारण वातावरण छा जाता है।

प्राय: सभी सेनेटरो और कांग्रेस-सदस्यो को बहुत समय तक काम करना पडता है। उनके उत्सुक निर्वाचक उन्हे इतना परेशान किये रहते हैं कि किसी शान्त व्यक्ति का तो धीरज ही छूट जाय। सदन के दृश्य से कांग्रेस कार्य-प्रणाली का ठीक-ठीक चित्र प्रकट नही होता। वहा का अधिकतर समय किसी ऐसे बडे विवाद मे व्यतीत नही होता जिसका राष्ट्र के सब लोगो पर अथवा कांग्रेस के कुछ ही सदस्यो पर प्रभाव पडे। अधिकतर समय सदन ऐसा स्थान बना रहता है जहा कि सदस्य अपने नाम की पुकार का जवाब देने, लेखे पर आने के लिए एकाध भाषण कर देने या किसी दूसरे सदस्य के भाषण मे टोका-टाकी करने, या कभी-कभी ऐसे सदस्यो से दो बातें करने के लिए जाता है जिनकी सहायता की उसे किसी आगामी कानून के सम्बन्ध मे अपेक्षा हो। सदन एक बाजार है परन्तु जो माल वहा बिकता है वह कही और ही तैयार होता है, मुख्यतया समितियो और गोष्ठी-कक्षा मे।

सेनेट और हाउस, दोनो मे विधि-निर्माण के मुख्य-मुख्य विषयो की स्थायी समितिया होती हैं। सन् १९४६ मे कांग्रेस का पुनर्गठन हुआ था और तब सेनेट की स्थायी समितियाँ घटाकर उससे १५ और हाउस की ४८ से १९ कर दी गई थी।

उद्देश्य यह था कि एक ही काम कई-कई समितियों में बंटा न रहे और प्रत्येक सदस्य कम समितियों से सम्बद्ध रहकर अपना ध्यान अपने काम पर अधिक केन्द्रित कर सके। यह सुधार उतना परिवर्तनकारी नहीं निकला जितना कि यह तब लगता था, क्योंकि समितियाँ तुरन्त ही नयी-नयी उपसमितियाँ नियुक्त करने लगीं।

अनेक संयुक्त-समितियाँ भी होती हैं, जो दोनों सदनों के सदस्यों से मिलकर बनती हैं। ये छपाई और आर्थिक विवरण आदि अनौपचारिक ऐसे शुष्क विषय पर विचार करती हैं जिनमें कि महत्वाकांक्षी राजनीतिज्ञों को राजनीतिक क्षेत्र में आगे बढ़ने की दृष्टि से उतना आकर्षण नहीं लगता जितना कि टैक्स लगाने अथवा सशस्त्र सेनाओं आदि के कामों में। संयुक्त-समितियाँ विचार की पुनरावृत्ति से बचती हैं, परन्तु जो विषय राजनैतिक विवाद में उलझे हुए होते हैं उन पर उन्हीं तर्कों से दो बार पृथक विचार का समर्थन किया जाता है जो कि कांग्रेस में दो सदन रखने के समर्थन में प्रस्तुत किये जाते हैं।

सन् १९४६ में पुनर्गठन के समय, कांग्रेस ने यह निश्चय किया था कि वह विशेष समितियों की नियुक्तियों में अपव्यय नहीं करेगी। पिछले वर्षों में उनकी नियुक्तियाँ बहुत हुई थीं, विशेष जाँच के लिए। उनका एक लाभ यह था कि जो सदस्य कांग्रेस को किसी प्रश्न की जाँच के लिए सहमत कर लेता था, साधारणतः वही समिति का अध्यक्ष बना दिया जाता था और उस पर काम करने का भरोसा किया जा सकता था।

उदाहरणार्थ, सीनेटर ट्रूमन द्वितीय विश्व-युद्ध के संचालन की जाँच करने के लिए नियुक्त एक समिति के अध्यक्ष थे और उन्होंने अयोग्यता अथवा पक्षपात के अनेक मामलों को सफलता पूर्वक रोक दिया अथवा नहीं होने दिया था। इसी काम के कारण उन्होंने उपराष्ट्रपति का पद अर्जित किया और 'ह्वाइट हाउस' में पहुँच गए।

यद्यपि सन् १९४६ के पश्चात् विशेष समितियाँ कम नियुक्त की गई हैं, तथापि विशेष अथवा स्थायी उपसमितियाँ इसी प्रकार के कामों के लिए कभी-कभी नियुक्त होती रही हैं।

कानून बनाने की साधारण विधि में समितियों को बहुत समय तक भारी अध्ययन करना पड़ता है। बहुत से महत्वपूर्ण बिल राष्ट्रपति द्वारा सुझाये जाते हैं, और जिस विभाग का उनसे सर्वाधिक सम्बन्ध होता है वह प्राय प्रस्तावित विधेयक का मसविदा भेज देता है। परन्तु यह मसविदा प्रारम्भिक मात्र होता है। जिस समिति के सुपुर्द कोई विधेयक किया जाता है वह उसे कांग्रेस के सामने भेजने से पहले अपना सन्तोष भली प्रकार कर लेती है कि वह अपने अंतिम मसविदे के एक-एक शब्द की जिम्मेवारी ले सकती है या नहीं।

समितियाँ बहुधा अन्य लोगों के भी विचार सुनती हैं। यह सुनवाई विषय के अनुसार कभी गुप्त होती है, कभी खुली। इन सुनवाइयों में शासन विभागों के अध्यक्षों और उनके विशेषज्ञों से भी पूछताछ की जाती है, परन्तु इससे सदा सब बातें जानने में सफलता प्राप्त नहीं होती, क्योंकि साधारणतया कांग्रेस के सदस्य विशेषज्ञों की अपेक्षा उस विषय से कम परिचित होते हैं। यही बात 'लाबिइस्टों' अर्थात् किसी बिल में रुचि रखनेवाले व्यक्तियों द्वारा किए हुए वकीलों से पूछताछ के विषय में कही जा सकती है। 'लाबिइस्टों' का मुख्य काम समितियों के सामने विवाद करने का होता है, परन्तु 'लाबिइस्ट' मेलजोल बढ़ाने में भी निपुण होते हैं और वे बहुधा कांग्रेस के सदस्यों के साथ बातचीत करने के अवसर निकाल लेते हैं। सरकारी कर्मचारियों और 'लाबिइस्टों', दोनों को, कुछ सन्देह की दृष्टि से देखा जाता है। परन्तु उनकी गवाहियों में बहुत-सी उपयोगी और सच्ची सूचनाएं भी रहती हैं, निःसन्देह उनका लक्ष्य उस पक्ष को लाभ पहुँचाना हो रहता है जिसका वे समर्थन कर रहे होते है। समितियां जो सामग्री संग्रह करती हैं उसमें से बहुत-सी का महत्व राजनीतिक होता है कि कौन बिल को पास कराना और कौन रोकना चाहता है, और किस पक्ष का राजनीतिक प्रभाव सबसे अधिक है।

कांग्रेस के बहुत कम सदस्यों को राजनीतिक विषयों के अतिरिक्त अन्य किसी का विशेषज्ञ बनने का समय मिलता है, और चूंकि अब शासन के काम अधिकाधिक पेचीदा होते जाते हैं, इसलिए कांग्रेस भी यह अनुभव करने लगी है कि अपने मार्ग प्रदर्शन के लिए उसे भी विशेषज्ञों की अपेक्षा है। अधिकतर समितियों के पास अपने ही कर्मचारी होते हैं जिनमें एक या अनेक विशेषज्ञ भी सम्मिलित रहते हैं।

प्रत्येक सदन का एक विधि-विशेषज्ञ कार्यालय होता है। वह समितियों और सदस्यों के लिए विधेयकों के मसविदे बना देता है और यह ध्यान रखता है कि नये कानून की प्रत्येक बात पहले से विद्यमान कानूनों के साथ संगत हो।

हाल के वर्षों में कांग्रेस ने अपने पुस्तकालय में कानूनों का हवाला अथवा प्रतीक बतलानेवाले विशेषज्ञों की सेवाएँ बहुत बढ़ा ली हैं। इनमें अनेक विषयों के विशेषज्ञ भी सम्मिलित हैं। उनसे आशा की जाती है कि वे सब सम्बद्ध तथ्यों की सूचना बिना किसी राजनीतिक पक्षपात के देते रहेंगे। कांग्रेस के कुछ सदस्य इस सुविधा का उपयोग अपने भाषणों अथवा समिति के काम के लिए तथ्यों की खोज करते रहने में करते हैं।

कांग्रेस अपना काम किस प्रकार करती है, इस विषय के किसी भी विवरण को पढ़ या सुनकर यही प्रतीत होगा कि वह किसी भी मामले में ठीक परिणाम पर नहीं पहुँच सकती, परन्तु वह बहुधा वही काम करती है जिसकी उस समय आवश्यकता होती है और जिसे लोग चाहते हैं। सन् १९३३ के पश्चात् कांग्रेस को संसार में हलचल मचा देने वाले जो निर्णय करने पड़े उनकी संख्या उसके प्रत्येक अधिवेशन में निरन्तर बढ़ती चली गई। परन्तु यह असम्भव ही लगता है कि कांग्रेस के बुद्धिमान् और देश भक्त सदस्य इन सब महत्वपूर्ण समस्याओं के पूर्ण ज्ञाता बन गये होंगे, क्योंकि उनपर कार्य का अत्यधिक भार रहता है। फिर भी 'न्यू डील' ( राष्ट्रपति रूजवेल्ट की आर्थिक नीति का नाम ) के प्रारम्भिक वर्षों से लेकर 'मार्शल योजना' और रक्षा के नवीन कार्यक्रम तक जितने भी नये कानून बने उनका बहुत बड़ा अनुपात सफल रहा और उसे दोनों दलों ने स्वीकार कर लिया। कहीं न कहीं से कांग्रेस का मार्ग-प्रदर्शन होता ही रहता है। ऐसा कहें तो शायद ठीक ही होगा कि मुख्य मार्ग-प्रदर्शक शक्ति राजनीति की वह पद्धति है जिसके द्वारा अमेरिकी जनता अपनी आवश्यकताओं, इच्छाओं और निर्णयों को प्रकट करती है। कांग्रेस की कार्य प्रणाली में ऊपर-ऊपर से जो अव्यवस्था दिखलाई पड़ती है उस के बावजूद वह जनता की इच्छा को शासन के कार्यों का रूप देने का एक नाजुक यन्त्र है।

परन्तु कांग्रेस की आयोग्यता की आलोचना निरन्तर होती रहती है और कुछ अधिक समय बीत जाने पर कांग्रेस को भी अपना सुधार आप करने की धुन सवार होती रहती है। इस प्रकार की सबसे अन्तिम धुन उसे सन् १९४६ मे सवार हुई थी। यह सेनेटर लाफोलेट और कांग्रेस-सदस्य मोनरोनी की अध्यक्षता मे नियुक्त एक विशेष संयुक्त समिति द्वारा अमेरिकी-राजनीति विज्ञान-संघ की एक रिपोर्ट के अध्ययन के पश्चात् हुई थी। सन् १९४६ मे पुनर्गठन मे समितियो की संख्या तो कम कर दी गई थी, परन्तु 'टेकनिकल' कर्मचारियों की संख्या बढा दी गई, सदस्यो के वेतन ऊँचे कर दिये गए, और सरकार के विरुद्ध छोटे-छोटे दावो तक का भुगतान करने के लिए प्रत्येक के सम्बन्ध मे एक पृथक् बिल (विधेयक) पास करने के क्षोभ-जनक काम से कांग्रेस को मुक्त कर दिया गया था। परन्तु इस पुनर्गठन की भी यह कहकर आलोचना की गई थी कि इससे सब आवश्यक सुधार तो हुए नहीं, और एक ऐसे अवसर को हाथ से निकल जाने दिया गया जो शायद पुनः शीघ्र नहीं आयेगा।

पुराने सदस्यो का लिहाज करने की प्रथा हृदय से नापसन्द की जाती है, विशेषतः उदार विचार के लोगो द्वारा, क्योंकि दोनो ही दलो मे वृद्धतम व्यक्तियो की प्रवृत्ति अपरिवर्तन वादी होती है। ये बूढे व्यक्ति अधिकार के पदो पर बैठ तो जाते हैं, परन्तु कभी-कभी किसी महत्वपूर्ण समिति के अध्यक्ष के निर्बल और असमर्थ होने का भयंकर उदाहरण भी सामने आ जाता है।

पुराने सदस्यो का लिहाज करने की प्रथा के पक्ष मे प्रधान तर्क यह दिया जाता है कि कांग्रेस का संगठन करते समय चुनाव की अधिकतर समस्याएं इससे स्वयमेव सुलझ जाती हैं। संगठन के समय बहुमत दल मे मतैक्य रहना आवश्यक है, क्योंकि सम्भव है कि उसका बहुमत अत्यल्प हो। यदि दल मे, साधन-तथा-कोश-समिति सरीखी किसी महत्वपूर्ण समिति का अध्यक्ष चुनने के समय मत भेद हो जाय तो व्यवहारतः अल्पमत दल को ही उम्मीदवारो मे से किसी एक को चुन लेने का अवसर मिल जायगा। इस बात की सम्भावना बहुत कम प्रतीत होती है कि सेनेट और हाउस के नियमो का नियन्त्रण जिन व्यवहार-कुशल राजनीतिज्ञो के हाथ मे

है वे पुराने सदस्यों का लिहाज करने की प्रथा में सुधार करना कभी पसन्द करेंगे।

एक और प्रथा जो कि बहुत समय से आलोचना का विषय बनी हुई है वह 'सिनेट' में 'फिलिबस्टर' की अर्थात् अनन्त काल तक बेलगाम बोलने चले जाने की है, जब कुछेक दृढ़ निश्चयी सेनेटर मिलकर किसी बिल को पास न होने देने की ठान लेते हैं। तब वे बारी-बारी अनिश्चित काल तक भाषण कर-करके उस बिल की हत्या कर देते हैं। उन्हें बिल पर विवाद तक नहीं करना पड़ता, क्योंकि शेक्सपीयर की अथवा पाक-शास्त्र की किसी सर्वथा अप्रासंगिक पुस्तक को उच्च स्वर से बाचते चले जाना भी सेनेट के नियमों से संगत है।

सेनेट में 'क्लोचर' का भी एक नियम है, जिसके अनुसार दो-तिहाई के बहुमत से विवाद को बन्द करने का निर्णय किया जा सकता है, परन्तु इस नियम को दोनों दलों ने चतुरतापूर्वक अव्यवहार्य बना दिया है; क्योंकि वस्तुतः कोई भी दल 'फिलिबस्टर' का अधिकार छोड़ना नहीं चाहता।

'फिलिबस्टर' की आलोचना में कहा जाता है कि उसमें बहुमत के शासन के सिद्धान्त का घात होता है। निःसन्देह कोई भी व्यक्ति उस बिल के विरुद्ध 'फिलिबस्टर' का प्रयोग नहीं करेगा जिसके पक्ष में बहुमत स्वयं ही मत देने के लिए तैयार न हो। इसके विपरीत, सेनेट का विश्वास है कि संघीय सिद्धान्त के अनुसार उन मामलों में निरे बहुमत द्वारा शासन का होना उचित नहीं है जो कि अल्पसंख्यक राज्यों को मान्य न हों। अमेरिकी जनता का सदा से यह विश्वास रहा है कि बहुमत के शासन की सीमाएं होती हैं, बहुमत को शासन करने का अधिकार विशेषतया उसी स्थान पर होना चाहिए जहाँ उसका बहुमत हो। दक्षिणी कैरोलीना वाले न्यूयार्क वालों के बहुमत से शासित होना स्वभावतः पसन्द नहीं कर सकते। यह भी स्मरणीय है कि सेनेट का संगठन ही इसलिए किया गया था कि जनसंख्या के आधार पर निर्वाचित 'हाउस' के बहुमत का कांग्रेस में सन्तुलन हो जाय। किसी राज्य में मतदाता कितने हैं, इस बात का विचार किए बिना सेनेट में प्रत्येक राज्य के दो मत होते हैं। यह व्यवस्था एकमात्र इस प्रयोजन से की गई थी कि छोटे राज्यों की बड़े राज्यों के बहुमत से रक्षा हो सके। इसलिए यह आश्चर्य की बात

नहीं कि सेनेट की परम्परा में ऐसे अल्पमत का उसके निरे संख्या-बल की अपेक्षा अधिक आदर किया जाय जो किस प्रस्तावित नियन्त्रण को अत्याचारपूर्ण समझता हो उसका विरोध करने के लिए किसी भी हद तक जाने को तैयार हो। इसलिए विवाद को सीमित करने का कोई सीधा और सरल नियम 'हाउस' के समान सेनेट द्वारा भी अपना लिए जाने की सम्भावना बहुत कम है।

प्रबन्ध के किसी साधारण मान से देखने पर भी सेनेट और हाउस की कार्य-कुशलता का स्तर निम्न है। उसे ऊँचा उठाने के लिए अनेक सुझाव दिये जा चुके हैं। एक सुझाव यह है कि दोनों सदनों में बिजली के मत-विभाजन पट्ट लगा दिए जायँ, जैसे कई राज्यों के विधानमण्डलों में लगे भी हुए हैं। प्रत्येक सदस्य का नाम पुकार कर लाने में समय का भारी नाश होता है, विशेषतः 'हाउस' में। इस पद्धति के पक्ष में कभी-कभी यह कहा जाता है कि उस समय का उपयोग सदस्य परस्पर विचार-विनिमय के लिए कर लेते हैं परन्तु इस उपयोग का मूल्य प्रायः कुछ नहीं है। बिजली का मत-विभाजन-पट्ट लग जाने पर सदस्य एक साथ मत दे सकेंगे, और पट्ट से न केवल उसका परिणाम तुरन्त प्रकट हो जायगा, उसका लेखा भी आप से आप सुरक्षित रहेगा।

एक और सुझाव यह है कि कोलम्बिया जिले को स्वशासन का अधिकार दे दिया जाय। इस समय इस जिले के प्रतिनिधियों का बोर्ड, जिले की सरकार, राज्य-विधान सभा, और संघीय विधान-मण्डल, सब कुछ कांग्रेस ही बनी हुई है। वाशिंगटन के निवासियों का नाम यदि जिले से बाहर कहीं लेखबद्ध न हो और वे वहां मत न देते हों तो वे मत दे ही नहीं सकते।

वाशिंगटन के लिए सेनेट और हाउस दोनों की, जिला समितियां होती हैं। स्थानीय करों के नियम भी कांग्रेस बनाती और यह निर्णय भी वही करती है कि बीसवीं सड़क चौड़ी की जाय या नहीं और नाइयों की दुकानों का निरीक्षण किया जाय तो किस प्रकार। ये छोटे-छोटे काम उस विधान मण्डल के योग्य नहीं जान पड़ते जिसे संयुक्त राष्ट्र संघ के साथ अमेरिका के सहयोग अथवा उत्तरी-अतलान्तिक-संधि-संगठन में गम्भीर प्रश्नों का निर्णय करना हो।

सन् १८८७ में जब इस जिले में किसी स्थानीय स्वशासन की समाप्ति की गई थी तब उसका उद्देश्य सुधार करना था। उन दिनों संयुक्त राज्य अमेरिका में नगरो के शासन में भ्रष्टाचार इतना अधिक फैल चुका था कि आज उसका उदाहरण किसी भी नगर में नही मिल सकता। जो लोग कांग्रेस को जिले के छोटे-मोटे कामों के बोझ से मुक्त करने का सुझाव देते हैं वे कहते हैं कि आधुनिक उपायो द्वारा किसी भी नगर का का-समाज उसका अपना ही शासन-संगठन ईमानदारी और कुशलता से चला सकता है।

कांग्रेस का कार्य निरन्तर न चल सकने और ध्यान बढते रहने का सब से बडा कारण यात्रियो का लम्बा तांता है जो कि राज्यो से वाशिंगटन जाते रहते हैं। अमेरिकनो को अपने राष्ट्र की राजधानी देखने का शौक है। वे चाहते हैं कि उनके राज्य के कांग्रेस-सदस्य उनको 'हाउस' के भोजनालय में भोजन करावें, उनको नाटक का टिकट खरीद दें, और उनके लिए होटल में निवास का स्थान खोज दें। हाई स्कूल की बास्केट-बॉल-टीम चाहती है कि हमारे राज्य का सेनेटर ऐसी व्यवस्था कर दे कि राष्ट्रपति 'ह्वाइट हाउस' की सीढियो पर टीम के साथ खडा होकर फोटो खिचवा लें। एक बार एक सेनेटर ने कुछ दृढ होकर विद्यार्थियो को समझाया कि राष्ट्रपति आजकल युद्ध संचालन के कार्य में अत्यन्त व्यस्त हैं, और तुम्हारे साथ फोटो खिचवाने की फुरसत नहीं है। तुरन्त ही एक अन्य सेनेटर अपने साथी से बाजी मार ले जाने के लिए तैयार हो गया। उसने कहा कि 'ह्वाइट-हाउस' में इस बात की व्यवस्था मैं करूँगा।

कोई भी मतदाताओ को किसी प्रकार यह समझाने का साहस नही करता कि अपने प्रतिनिधियो को परेशान मत करो। सब डरते हैं कि आगामी चुनाव में वही मतदाता उनकी उपेक्षा न कर दें। वस्तुत कांग्रेस के सदस्य अपने राज्य के लोगों के साथ सम्पर्क को इतना मूल्यवान मानते हैं कि जब कांग्रेस का अधिवेशन नही हो रहा होता तब वे स्वयं अपने राज्य में जाकर अधिक लोगो से मिलना पसन्द करते हैं। मिलने वालो के बढते हुए प्रवाह को सम्भालने का उत्तम उपाय यह प्रतीत होता है कि नियमित काम की देखभाल करने के लिए अधिक कर्मचारी रख लिये जायं, जिससे कांग्रेस सदस्यो को मिलने-जुलने का समय मिल सके। जो सदस्य

अपने दफ्तर से हाउस को जाते हुए गली मे अपने दोनो कानो मे दो मतदाताओ के तकाजो के गूंजता रहने पर भी 'मैं अपना मत किधर दूंगा' यह निर्णय करने का आनन्द नही ले सकता। वह शायद या तो मर जायगा और या अपने पद का त्याग कर अपना स्थान किसी अधिक सहिष्णु तथा धैर्यशाली व्यक्ति के लिए रिक्त कर देगा।

कांग्रेस मे भारी हल्ला-गुल्ला मचा रहता है, और फिर भी वह उतना काम भुगता लेती है जितना कि जनता उससे कराना चाहती है, इसका कारण शायद यह है कि सहज राजनीतिज्ञो का काम करने का ढग ही यह है। राजनीतिज्ञ वैसी ही जनता का प्रतिनिधित्व करता है जैसी उसके निर्वाचन क्षेत्र मे बसती है। तिसपर उसके कारण उसकी शक्ति बढ जाती है। वह जो हल्ला-गुल्ला करता है वह अमेरिकी हल्ला-गुल्ला होता है। विदेशी लोग उसे देख कर आश्चर्य करते हैं, यद्यपि उनके देशो मे भी अन्य प्रकार का हल्ला-गुल्ला होता ही होगा। परन्तु हम जैसे भी कुछ हैं, अमेरिकी लोग उन आपत्तियो और समस्याओ का सामना सफलतापूर्वक बिना किसी दुष्परिणाम के कर रहे हैं जिनकी उनके विधान-निर्माताओ ने कल्पना भी नही की होगी। आशा है कि संयुक्त राज्य अमेरिका जो सफलता प्राप्त करेगा उससे न केवल अमेरिकियो को सतोष होगा, वह अन्य स्वतन्त्र लोगो के लिए सहायक होगी। अमेरिकी कांग्रेस जिस जनता की प्रतिनिधि है, उसके गुण और दोष भी उसमें पूर्ण मात्रा मे विद्यमान हैं, और अन्ततोगत्वा वह सफलता भी उतनी ही मात्रा मे प्राप्त कर लेती हैं।

## अध्याय ७

# संघीय न्यायालय

संघीय न्यायालयो और कुछ न्यायालयो के समान काम करने वाली "रिग्यूलेटिंग एजन्सियो" का काम कानून के अनुसार केवल मुकदमा का निर्णय कर देना नही, उससे भी कुछ अधिक है। लिखित कानून के शब्द ही कानून का सर्वस्व नही हो सकते। नये-नये प्रश्न खडे होते रहते हैं और कानून को उनमे भी सुलझना पडता है। कभी-कभी कांग्रेस नये प्रश्नो का हल करने के लिए नये कानून बना देती है। परन्तु कभी-कभी न्यायालयो को पुराने कानूनो में नया अर्थ दिखाई पड जाता है और न्यायालय उसे पुराने कानून की वास्तविक भावना से सगत घोषित कर देते हैं।

किस व्यवस्था को माना जाय और किसको नही, यह निर्णय होता तो है राजनीतिक, परन्तु यह निर्भर करता है मुख्यतया न्यायाधीशों की वैयक्तिक मनोवृत्ति पर, विशेषत 'सुप्रीम कोर्ट' अर्थात् सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशो की मनोवृत्ति पर। ये सज्जन राजनीति से सर्वथा सम्पर्क रहित होते हैं, क्योकि इनकी नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाती है, जो अपने पद तक चुनाव जीत कर पहुचा होता है, और सर्वोच्च न्यायालय के एकान्त में बैठने पर भी इन पर अपने देशवासियो के नैतिक आदर्शों और राजनीतिक निर्णयों का प्रभाव पडता ही रहता है।

गणतन्त्र के आरम्भिक दिनो मे इस समस्या का सीधा सामना नही करना पडता था कि यदि शासन सविधान का उल्लघन करे तो क्या करना चाहिए।

संविधान को "देश के उच्चतम कानून" के रूप मे अपनाया गया था और कांग्रस का या राष्ट्रपति का कोई भी काम जो उसके विरुद्ध हो, सिद्धान्तत कानून नही हो सकता था। सन् १८९६ मे जेम्स ब्राइस ने कहा था—"जो काम वे अपने अधिकार से बाहर करते है वे अवैध है और उन्हे निम्नतम नागरिक भी अवैध मान सकता है, नहीं, उसे वैसा मानना चाहिए।" ब्राइस का विचार था कि किसी कानून को संविधान विरुद्ध ठहरा देने का सर्वोच्च न्यायालय का अधिकार तर्क सगत और अनाक्रमणीय है। परन्तु इतिहास मे उस अधिकार पर विरोधज्ञो ने, एण्ड्रयू जैक्सन और अब्राहम लिंकन न भी, आक्रमण किया है। सन् १९३७ मे "न्यायालयो को भर डालने के विवाद" के समय इस अधिकार पर सन्देह प्रकट करने वालो ने बहुत ही गरमी दिखलायी थी।

औपनिवेशिक शासन मे ब्रिटिश राजा के आज्ञा पत्र को आधार भूत कानून माना जाता था। उस समय भी न्यायालय कभी-कभी किसी कानून को आज्ञापत्र का उल्लंघनकारी होने के कारण अवैध ठहरा देते थे। राज्यों मे वही परम्परा चलती रही। सन् १७८६ मे रोड आइलैण्ड के उच्चतम न्यायालय ने राज्य के विधान मण्डल द्वारा स्वीकृत एक कानून को इस आधार पर अवैध ठहरा दिया था कि वह राज्य के सविधान का उल्लंघन करता था।

सन् १८०३ मे जब मुख्य न्यायाधीश जान मार्शल ने सुप्रीम कोर्ट अर्थात् सर्वोच्च न्यायालय का प्रथम निर्णय लिखकर कांग्रेस के एक काम को अवैध ठहराया तब वह परम्परागत तर्क के अनुसार एक अधिकार का प्रयोग कर रहे थे और वह उसे अपने कार्य का दृढ आधार मानते थे। उन्होंने कहा था कि "यह सिद्धान्त कि सविधान का विरोधी कोई भी कार्य अवैध है, सब लिखित सविधानो के साथ तात्विक रूप से संलग्न होता है और इसलिए यह न्यायालय इसे अपने समाज का अन्यतम आधार भूत सिद्धान्त मानता है।"

अगले पचास वर्षों मे सविधान के उल्लघनो का सामना करने के लिए एक और सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया। वह सिद्धान्त यह था कि किसी भी राज्य को अधिकार है कि वह जिस सघीय कानून को असवैधानिक अथवा अस्वीकरणीय समझे उसे निषिद्ध घोषित कर दे। सन् १८२८ मे जान सी० कौल्हन ने साउथ

करोलीना राज्य के विधान मण्डल के लिए एक निबन्ध तैयार किया जो पीछे "साउथ करोलीना एक्सपोजिशन" अर्थात् 'साउथ करोलीना का विचार' कहलाया। उसमें उन्होंने प्रतिपादित किया था कि संवैधानिक दृष्टि से संघीय शासन राज्यों का एजण्ट या कारिन्दा मात्र है। उन्होंने दृढ़तापूर्वक कहा कि जो भी कोई राज्य कांग्रेस के कार्यों से अप्रसन्न हो वह किसी संघीय कानून को निषिद्ध ठहराकर उसका अमल अपने यहाँ रोक सकता है। तब वह कानून 'असंवैधानिक' हो जाता है, और उस राज्य को उसे मानने के लिए बाधित तभी किया जा सकता है जब राज्यों के तीन चौथाई बहुमत से संविधान में संशोधन कर दिया जाय।

कल्हौन के तर्क से उत्साहित होकर साउथ करोलीना राज्य के सिरफिरे लोगों ने एक संघीय तटकर कानून को निषिद्ध ठहराने का इरादा किया। राष्ट्रपति जैक्सन ने जवाब दिया कि संघ की रक्षा की ही जायगी, और यदि आवश्यकता हुई तो मैं कानून को सेना की सहायता से लागू करूँगा। उस प्रश्न पर समझौता हो गया और कांग्रेस ने कानून को नरम कर दिया।

बीस वर्ष पश्चात् विस्कोन्सिन के विधानमण्डल ने उस संघीय कानून को मानने से इनकार कर दिया जिसके अनुसार किसी भी उत्तरी राज्य को उसकी सीमा में कोई भगा हुआ दास पाया जाने पर उसे वापस भेजने के लिए बाधित किया जा सकता था। जो संघीय कानून किसी राज्य को अत्याचारपूर्ण प्रतीत हो उसे अवैध ठहराने की यह अपील ही गृह-युद्ध का कारण बन गई और सन् १८६१-६५ के गृह-युद्ध से यह निषेधाधिकार सदा के लिए समाप्त हो गया। परन्तु सुप्रीम-कोर्ट उसके पश्चात् भी कानूनों पर विचार चुपचाप इसी आधार पर करता रहा कि वे संविधान से संगत हैं या नहीं, यद्यपि उसने सन् १८०३ से १८५७ तक किसी संघीय कानून को असंवैधानिक घोषित नहीं किया। किंतु गृह-युद्ध के पश्चात् आज्ञा-परक कानूनों की मात्रा बढ़ गयी और न्यायालय अपने अधिकार का प्रयोग बार-बार करने लगे।

जनता ने क्रमशः इस तथ्य को मान लिया और इसके सामने सिर झुका दिया है कि जब न्यायालय किसी लोक प्रिय कानून पर प्रहार करता है तब

उसका अर्थ इतना ही बतलाना होता है कि जनता ने भ्रान्त मार्ग का अवलम्बन किया है। व्यवहार मे न्यायालय के कथन का अभिप्राय यह होता है—"तुमने सन् १७८७ मे कांग्रेस को आय-कर लगाने का अधिकार नही दिया था। यदि तुम अब (सन् १८९५ मे) आय-कर लगाना चाहते हो तो तुम वसा कांग्रेस से कहकर नहीं कर सकते। उसके स्थान पर, संविधान मे संशोधन के द्वारा, अपने आपसे कहो।" इस प्रकार लोग फिर पीछे लौटे और उन्होने आरम्भ से चलना शुरू किया। उन्होने आम चिन्तन किया कि क्या आय-करो की इतनी आवश्यकता है कि यदि संविधान को संशोधित करना पडे तो वह भी कर लिया जाय। सन् १९१३ मे जाकर उन्होने निर्णय किया और संविधान मे सोलहवं संशोधन द्वारा प्रत्यक्ष आय-कर लगाने की अनुमति दे दी गई। यह सत्य सुविदित है कि सुप्रीम कोर्ट के निर्णय को संविधान मे संशोधन करने की लम्बी और धैर्यपूर्ण विधि से ही बदला जा सकता है परन्तु जब लोग अधीर होते हैं तब वे इस सत्य के ज्ञान-मात्र से सन्तुष्ट नहो हो जाते।

सुप्रीम कोर्ट का संगठन ऐसे विधि-विशेषज्ञो से मिलकर होता है जो न्यायाधीश बनने से पहले दीर्घ-काल तक जीवन मे सफल रह कर अनुभवी बन चुके होते हैं। उनमें सभी निजी जीवन मे न्यायाधीश या वकील नही होते। सुप्रीम कोर्ट का कोई न्यायाधीश अपने पूर्व जीवन मे सेनेटर, अटर्नी-जनरल, कानून के स्कूल का अध्यापक अथवा न्यायालय के समान काम करने वाली किसी एजन्सी का प्रशासक आदि कुछ भी रह चुका होता है। उदाहरण के लिए मान लीजिए कि कोई न्यायाधीश पचास वर्ष की आयु मे नियुक्त किया गया। उसके बीस से चालीस वर्ष तक जीवित रहकर न्यायाधीश बने रहने की सम्भावना रहती है। उसके कुछ वृद्ध होने की सम्भावना तो है ही। इसलिए वह अब से पहली पीढी के राजनीतिक संसार के साथ निकट सम्पर्क मे भी अवश्य रहा होगा। न्यायालय अपने मतो मे प्राय परिवर्तन-विरोधी होते हैं और इसी कारण उन उदार विचार के लोगो को क्षुब्ध कर देन वाले होते हैं जो कि द्रुत गति से प्रगति करना चाहते है। सन् १९३७ में सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश असाधारण वृद्ध थे और पदारूढ पार्टी अति तीव्र

गति से आगे बढ़ रही थी। परिणाम यह हुआ कि राष्ट्रपति ने "न्यायालय को भर डालने की एक योजना" बनायी।

सन् १९३५ से सन् १९३७ तक "न्यू डील" (स्वर्गीय रूजवेल्ट की नयी आर्थिक नीति) को कार्यान्वित करने के लिए बनाये गये कई कानून सर्वोच्च न्यायालय के सामने गये और असंवैधानिक घोषित कर दिये गये। राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने कहा कि न्यायाधीश अत्यन्त वृद्ध हो गये हैं और कांग्रेस से प्रस्ताव किया कि कुछ नये न्यायाधीश नियुक्त करके न्यायाधीशों की संख्या नौ से बढ़ाकर पन्द्रह कर दी जाय। "न्यायालय को भर डालने" की यह योजना इतने अधिक लोगों को बुरी लगी कि कांग्रेस ने इसे अस्वीकृत कर दिया। परन्तु न्यायालय ने अपना मार्ग बदल लिया और राष्ट्रपति द्वारा आक्रमण का कोई अन्य उपाय किये जाने से पहले ही वह उसके मार्ग में से हट गया। सन् १९३७ के पश्चात् पुराने न्यायाधीशों के पद-त्याग और मृत्यु के कारण श्री रूजवेल्ट को आठ नये न्यायाधीश नियुक्त करने का अवसर मिल गया। न्यायालय ने भी डिमोक्रेटिक पार्टी के बीस-वर्षीय शासन के शेष भाग में शासन के कार्यक्रम के विरुद्ध प्राय: कोई आपत्ति नहीं उठायी।

संघीय पद्धति में नीचे के न्यायालयों का राजनीतिक महत्व कुछ कम है। उनका प्रधान काम ऐसे नित्य-प्रति के झगड़ों को सुलझाना है जिनमें कोई संवैधानिक प्रश्न नहीं उलझा रहता। सबसे नीचे जिला अदालतें होती हैं। लगभग दो सौ जिला जज संयुक्त राज्य अमेरिका भर में फैले हुए हैं। इन अदालतों में वे सभी दीवानी और फौजदारी मुकदमे जाते हैं जो संघीय कानूनों के अधिकार-क्षेत्र में आते हैं। संविधान के नियमानुसार २० डालर से कम मूल्य के दीवानी मामलों को छोड़कर शेष सब मुकदमों की सुनवाई उन्हें जूरी की सहायता से करनी पड़ती है।

जिन दीवानी मुकदमों की सुनवाई जिला-अदालतों में होती है उनमें वे मुकदमे भी शामिल हैं जिनमें कोई नागरिक "एम्प्लायर्स लाएबिलिटी ऐक्ट" अर्थात् मालिकों की देनदारी के कानून सरीखे संघीय कानूनों के अनुसार अपने अधिकारों का दावा करता है। "एम्प्लायर्स लाएबिलिटी ऐक्ट" के अनुसार अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार करने वाले किसी मालिक का कोई कर्मचारी यदि अपने काम के समय आहत हो जाय तो

वह मालिक से क्षति-पूर्ति की माग कर सक्ता है। जिला अदालतें समुद्र मे घन्ति हुए मामलो के मुक्दमे भी सुनती है, क्योकि संविधान ने जल सेना के कानूनो को भी सघोय शासन के नियन्त्रण मे रक्खा है। एक तीसरे प्रकार के मुक्दमे वे हैं जो विभिन्न राज्यो के नागरिको मे चलते हे। इनमे कोई भी व्यापारिक मुकदमा शामिल हो सक्ता हे क्योकि कार्पोरेशनो (व्यापारी सघटनो) को भी उन राज्यो का नागरिक समझा जाता है जिनसे उन्हे, 'चार्टर' अर्थात् अनुमति पत्र मिला हो, वे व्यापार भले हो अन्य राज्यो मे भी क्यो न करते हो, उन अन्य राज्यो मे उन्हे बाहर का समझा जायगा।

जिला अदालतो के फौजदारी मुकदमों मे अधिकतर अभियोग सघीय कानूनो का उल्लघन करने के होते हैं। इन कानूनो के उदाहरण हैं, ट्रस्ट (न्यास) विरोधी कानून, या युद्ध-काल में मूल्यो के नियन्त्रण का कानून, या चोरी से माल देश मे लाने या अपहरण-विरोधी कानून इत्यादि । करो के मुकदमो मे सरकार किसी नागरिक पर टैक्स की अदायगी मे धोखेबाजी करने का दावा कर सक्ती हे या इसके विपरीत कोई नागरिक सरकार पर अपने अधिकार से बाहर जाकर टैक्स मागने का दावा कर सक्ता है।

जिला अदालतो को प्राय सभी मामलो मे मुकदमा आरम्भ से सुनने का अधिकार होता है। अर्थात् ये अदालतें जूरी की सहायता से मुकदमे के तथ्यो का संग्रह भी करती हैं। मुकदमे के दोनो पक्ष उसके निर्णय के विरुद्ध अपील कर सकते हैं,—इस आधार पर भी कि अदालत ने मुकदमे की सुनवाई मे भूल की और इस आधार पर भी कि जो कानून लागू किया गया वह असवैधानिक था। ये अपीलें सघीय न्यायालयो के माध्यमिक स्तर के अर्थात् 'सर्किट कोर्टो' (दौरा अदालतो) मे सुनी जाती हैं।

अपीलो का न्यायालय मातहत अदालत द्वारा सग्रहीत तथ्यो को ठीक मानकर चलता है, और इसलिए वहा जूरी की आवश्यकता नही पडती। उसका काम केवल विवादास्पद कानूनी प्रश्नो पर निर्णय देने का है। साधारणतया अपील का अदालत

मे एक बेंच पर तीन जज एक साथ बैठकर सुनवाई करते हैं । इस अदालत का एक प्रधान काम सर्वोच्च न्यायालय को नित्य-प्रति के राजनीतिक-महत्त्व-हीन मुकदमे सुनने की परेशानी से बचाना भी है । जब अपील मे किसी कानून के असवैधानिक होने का दावा किया जाता है तब भी अपील का न्यायालय दोनो पक्षो की युक्तियां सुनकर विवादास्पद प्रश्नो को स्पष्ट कर सकता और प्रबल युक्तियो पर आधारित हो कि सर्वोच्च न्यायालय उस सम्बन्ध मे अधिक सुनवाई करने से इनकार कर दे। उस अवस्था मे समझा जाता है कि अपील के न्यायालय ने ही देश के सर्वोच्च कानून का स्पष्टीकरण कर दिया है,—कम से कम उस मुकदमे की परिस्थितियो के लिए ।

परन्तु यदि लगभग एक से दीखने वाले दो मुकदमो का फैसला अपीलो की अदालतें एक दूसरी से उलटा कर दें, या सर्वोच्च न्यायालय अपील की अदालत के फैसले को उलटना चाहे या उसकी व्याख्या अधिक विस्तार से करना चाहे, तो सर्वोच्च न्यायालय अपील सुनना स्वीकार कर लेता है । इसके अतिरिक्त, कुछ व्यापारिक कानूनो का—विशेषत ट्रस्ट-विरोधी मामलो और व्यापार-नियन्त्रण-सम्बन्धी कानूनो का—राजनीतिक महत्त्व इतना अधिक और विस्तार इतना उलझन भरा है कि कांग्रेस ने संघीय न्यायालयो मे उनकी विलम्बित प्रगति को तीव्र कर देने का निर्णय कर दिया है। इस प्रकार के मुकदमे तीन जिला जजो की मातहत अदालत मे आरम्भ होते हैं और तीनो जज तथ्यों को एकत्र करके अपना निर्णय सुना देते हैं। उनके निर्णय के विरुद्ध अपील, मध्यवर्ती अपील अदालतो मे गये बिना, सीधे सर्वोच्च न्यायालय मे की जा सकती है ।

इस त्रि-स्तरीय संघीय न्यायालय पद्धति के अतिरिक्त भी कुछ विशेष न्यायालय हैं । जैसे कि क्लेम या दावा का न्यायालय, टैक्स अर्थात् करो का न्यायालय, और कस्टम्स या तट-करो और पटण्टो की अपीलों का न्यायालय । ये विशेष न्यायालय ऐसे विषयो पर विचार करने के लिए बनाये गये हैं जिन्हें किसी साधारण जज के लिए तबतक समझना कठिन है जबतक कि वह एक ही समस्या का अध्ययन करने के लिए अपना सारा समय न लगा दे। इन विशेष अदालतो की स्थिति

विशुद्ध 'न्यायिक' न्यायालयो और प्रशासनिक एजन्सियो की सीमा-रेखा पर होती है। इन्हे न्याय के अधिकार भी होते है और इनके द्वारा सरकार कुछ विशिष्ट व्यापार व्यवसायो का नियन्त्रण भी करती है ।

यद्यपि सविधान के व्यापार-सम्बन्धी अनुच्छेद ने कांग्रेस को "विदेशो के साथ, राज्यो के मध्य मे और इण्डियन कबीलो के साथ व्यापार का नियन्त्रण करने" का अधिकार दिया है, परन्तु आज व्यापार को जो स्वरूप प्राप्त हो चुका है उसे सरकार के नियन्त्रण मे देना मूल संविधान के उद्देश्यो मे सम्मिलित नही था। पहले नियन्त्रण का मुख्य रूप तट-कर और प्रतिबन्ध का, विशेषत राज्यो के मध्य मे तट-करो और प्रतिबन्धो के निषेध का था। परन्तु ज्यो-ज्यो व्यापार अधिकाधिक उलझता गया त्यो-त्यो कांग्रेस को रेलो के भाडे, यात्रा की सुरक्षा, खाद्यो और औषधियो मे मिलावट, और रेडियो के मीटर सरीखी वस्तुओ का नियन्त्रण भी करना पड गया। इन पिछले नियन्त्रणो की एक विशेषता यह है कि कांग्रेस न तो प्रत्येक मामले के तथ्य ही जान सकती और न उनके लिए अलग-अलग कानून ही बना सकती है। फ्लोरिडा राज्य के सिल्वर-स्प्रिंग्स से न्यूयार्क के राज्य के सायराक्यूज तक टोकरो मे भरे हुए संतरो का रेल-भाडा कांग्रेस के एक पृथक् कानून का विषय नही बन सकता। फिर भी कांग्रेस चाहती है कि औचित्य के कुछ निश्चित सिद्धान्तो और विविध भाडा-दरो मे उचित सम्बन्धो का ध्यान रक्खा जाय। कांग्रेस एक कानून बना कर उसमें मोटे रूप से इन सिद्धान्तो का उल्लेख कर सकती है। उससे आगे तथ्यो का अध्ययन करके कानून मे उल्लिखित सिद्धान्तो के अनुसार निर्णय करने के लिए किसी की नियुक्ति करनी पडेगी। यही 'रेग्युलेटिंग' अर्थात् नियन्त्रण कर्ता एजन्सियाँ हैं।

मुख्य नियन्त्रण-कर्ता एजन्सियो मे उल्लेख योग्य ये हैं—'इण्टर-स्टेट-कामर्स-कमीशन' राज्यो के मध्य मे यातायात के दरो का निरीक्षण करता है, 'फेडरल-ट्रेड-कमीशन' या संघीय व्यापार आयोग ट्रस्ट-विरोधी कानूनो के उल्लंघनो और झूठे विज्ञापनो जैसी कुछ छलपूर्ण कार्रवाइयों पर दृष्टि रखता है; 'फेडरल कम्युनिकेशन्स कमीशन' अर्थात् संघीय संचार आयोग, और 'फेडरल पावर कमीशन' अर्थात् संघीय

शक्ति आयोग, और 'सिक्यूरिटीज एण्ड एक्सचेन्ज कमीशन' अर्थात् सरकारी कागजों तथा अन्य दरों का नियन्त्रण करनेवाला आयोग।

साधारणतया ये कमीशन तथ्यों की जाँच के पश्चात् सम्बद्ध व्यापारिक संस्थाओं को बतलाते हैं कि उन्हें अपने काम का मूल्य वसूल करना चाहिए अथवा उसे कानून का पालन करने के लिए अपनी अब तक की प्रणाली में क्या परिवर्तन कर लेना चाहिए। इन नियन्त्रण-कर्ता एजन्सियों को किसी से जुर्माना वसूल करने या किसी को जेल में रखने का अधिकार नहीं है। परन्तु अपनी आज्ञा का पालन करवाने के लिए उन्हें किसी भी व्यापारी को अदालत में ले जाकर उस पर कानून भंग करने का अभियोग लगाने का अधिकार है। सर्वोच्च न्यायालय के अतिरिक्त, अन्य किसी भी संघीय न्यायालय की अपेक्षा ये एजन्सियाँ कानून का निर्माण अधिक करती हैं।

न्यायालय यह मानना नहीं चाहते कि कानून का निर्माण किसी ऐसी प्रशासनिक एजन्सी द्वारा किया जा सकता है जो कि शासन के त्रि-शाखा ढाँचे में ठीक-ठीक नहीं बैठती। प्रशासनिक एजन्सियाँ शासनपालिका और न्यायपालिका दोनों के बीच की वस्तु हैं और उनका अधिक झुकाव विधि-निर्माण की ओर को है। यह राजनीति से भी प्रभावित होती हैं, क्योंकि कमीशनों की नियुक्ति राष्ट्रपति करता है और उनकी पूर्ण परीक्षा सेनेट करती है। जिन व्यापारिक संस्थाओं पर नियन्त्रण होने की सम्भावना होती है उनके द्वारा पार्टी के कोश में हाथ खोलकर चंदा दिया जाना कोई असाधारण बात नहीं है और सेनेट भी एकाधिक कमिश्नरों की नियुक्ति केवल इस कारण अस्वीकृत कर चुकी है कि उन्होंने जनहित का पक्ष लेकर किसी प्रभावशाली उद्योग का विरोध करने का साहस किया था। "पहरेदार पर पहरा कौन देगा" इस पुरानी प्रश्नात्मक कहावत का उत्तर न्यायालय की दृष्टि में उचित से अधिक राजनैतिक है।

परन्तु नियन्त्रण कर्ता एजन्सियों पर पहरा देने के सम्बन्ध में न्यायालय सर्वथा अधिकार शून्य भी नहीं हैं। वे एजन्सियों द्वारा एकत्र किये हुए तथ्यों पर उतना सन्देह नहीं करते जितना कि उनकी तथ्य एकत्र करने की और परिणाम निकालने की प्रणाली को सूक्ष्मता से जाँचते हैं। किसी हद तक वे इन एजन्सियों को पुलीस

की अपेक्षा अधिक अप्रिय उपायो का अवलम्बन करने देते हैं। सन् १९५० में सर्वोच्च न्यायालय ने निर्णय किया था कि 'फेडरल-ट्रेड-कमीशन' ने अर्थात् ट्रस्ट विरोधी कानूनों के उल्लंघन पर दृष्टि रखने वाले आयोग ने, यह देखने के लिए कि कानून का ठीक पालन हो रहा है या नही, मार्टन साल्ट कम्पनी के स्थान पर जाकर और उसकी बहियाँ आदि देखकर अनुचित कार्य कुछ नही किया। उस प्रकार तलाशी लेने की कारवाई यदि पुलिस या कोई अदालत करती तो उसे उचित न माना जाता। "उचित कानूनी कारवाई" शब्दो की परिभाषा, शासन के नियन्त्रण की विशेष आवश्यकताओ के अनुसार, धीरे-धीरे परिवर्तित होती जा रही है।

संघीय न्यायालयो के मुकदमो में प्रायः एक पक्ष सरकार का होता है। प्रथम एटर्नी-जनरल की नियुक्ति सन् १७८९ मे सर्वोच्च न्यायालय में सरकारी मुकदमो की पैरवी करने के लिए की गयी थी। आज के 'डिपार्टमेण्ट ऑव् जस्टिस' अर्थात् न्याय विभाग मे यह काम सालिसिटर-जनरल के सपुर्द है। यह डिपार्टमेण्ट या विभाग सरकार के वकील का काम करता है। यदि 'इण्टर्नल-रेवेन्यु-ब्यूरो' अर्थात्' आन्तरिक आय विभाग को निश्चय हो जाय कि अमुक व्यक्ति आय कर देने से बचता है तो वह उसका मामला मुकदमा दायर करने के लिए 'डिपार्टमेण्ट ऑव जस्टिस' को सौंप देता है। यदि सिनेट की किसी कमिटी के बुलाने पर कोई गवाह प्रश्नो का उत्तर देने के लिए नहीं आता, या कमिटी को विश्वास हो जाय कि वह झूठ बोल रहा है, तो इस 'डिपार्टमेण्ट' से कहा जाता है कि वह उसका मामला "ग्रैण्ड जूरी" (जो व्यक्ति यह जाच करते हैं कि किसी व्यक्ति पर मुकदमा चलाया जा सकता है या नही) के सपुर्द कर दे और देखे कि उसे अदालत की मानहानि करने या झूठी गवाही देने के अपराध मे दण्डित करवाया जा सकता है या नही।

"डिपार्टमेण्ट ऑव् जस्टिस" अर्थात् न्याय-विभाग मे "फेडरल ब्यूरो-ऑव्-इन्वेस्टिगेशन" या संघ का तफ्तीश करनेवाला भाग भी सम्मिलित है। यह संघीय गुप्तचर सेवा का सबसे महत्वपूर्ण अंग है। 'एफ० बी० आई०' अर्थात् संघ का तफ्तीश करनेवाला विभाग अपहरणकर्ताओ, बैंको के लुटेरे, और संघीय कानून के अन्य उल्लंघनकर्ताओ से निपटता है। यह अन्य गुप्तचरो के विरुद्ध

गुप्तचरों का काम भी चुस्ती से करता है। यह सरकारी कर्मचारियों की निष्ठा की भी जाँच करता है। शासन विभाग की अन्य गुप्त सेवाएं जाली सिक्के चलानेवालों, चोरी से माल लानेवाला, मादक द्रव्यों का व्यापार करनेवालों, आय कर देने से बचनेवाला, और राष्ट्रपति के प्राणों की घात में रहनेवालों की घात में रहती हैं। इन सब लोगों पर, पकड़े जाने पर, 'डिपार्टमेण्ट ऑव् जस्टिस' द्वारा या उसके निरीक्षण में संयुक्त राज्य अमरिका के स्थानीय अटर्नियों द्वारा संघीय न्यायालयों में मुकदमे चलाये जाते हैं।

'डिपार्टमेण्ट ऑव् जस्टिस' के ध्यान में कानून के उल्लंघन के जितने मामले आते हैं उन सब को दण्डित करवाने की आशा वह नहीं कर सकता, विशेषत उन संदिग्ध मामलों में जिनमें कि देर तक मुकदमा चलने के पश्चात् ही मालूम होता है कि कानून का उल्लंघन हुआ था या नहीं। उदाहरणार्थ, न्यास (ट्रस्ट) विरोधी नीति का पालन करते हुए अटर्नी-जनरल को यह भी देखना पड़ता है कि वह कानून का विकास जिस दिशा में करना चाहता है उसमें सहायता देनेवाले प्रश्न निर्णय के लिए उठने की सम्भावना किन मुकदमों में अधिक है। कानून का असन्दिग्ध उल्लंघन होने के मामले तो अपेक्षाकृत कम ही होते हैं। उनके सम्बन्ध में साधारणतया कानून-विशेषज्ञों में भी मतभेद रहता है।

इन कारणों से अटर्नी-जनरल को यह निश्चय करने की काफी स्वतन्त्रता रहती है कि वह किन कानूनों को लागू करे और किन कामों को कानून का उल्लंघन माने और किनको नहीं। वह अपने निश्चय राष्ट्रपति की नीति को दृष्टि में रखे बिना भी नहीं करता, और स्वभावत उन पर राजनीति का भी प्रबल प्रभाव पड़ता है।

उदाहरणार्थ, जब ट्रूमन-शासन के पश्चात् 'डिपार्टमेण्ट ऑव् जस्टिस' राष्ट्रपति आइजनहॉवर के हाथ में आया तब कई बड़े-बड़े ट्रस्ट-विरोधी मुकदमे न्यायालयों में जानेवाले थे। एक मुकदमा "यूनाइटेड स्टेट्स स्टील" नामक फर्म के विरुद्ध भी था। उसमें यह महत्वपूर्ण प्रश्न खड़ा होना था कि कच्चा माल उत्पन्न करने वाली कोई बड़ी कम्पनी अपनी किसी प्रकार की सहायक कम्पनियों का नियन्त्रण

कानून का उल्लंघन किये बिना कर सकती है। राष्ट्रपति आइजनहोवर इस निर्णय से बच नहीं सकते थे कि उनका अटर्नी-जनरल इस प्रश्न को न्यायालयों के सामने उपस्थित करे या नहीं।

संविधान की और कानूनों की व्याख्या अनेक राजनीतिक शक्तियों से भी प्रभावित होती रहती है। अटर्नी-जनरल से लेकर सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति तक उनमें सम्मिलित है। इस कारण अब कानून का प्रत्यक्ष रूप पत्थर के ऐसे मजबूत चबूतरे का सा नहीं रहा है कि कोई भी सरल या अनजान मनुष्य उस पर खड़ा होकर निश्चिन्त हो जाय। प्रत्युत सत्य यह है कि सन् १७८७ में संविधान की रचना करते हुए कानून को जितना निश्चित समझा गया था आज वह उससे कहीं कम निश्चित रह गया है। उन दिनों प्रचलित विश्वास यह था कि मनुष्य कृत कानूनों के मूल में एक "प्राकृतिक कानून" विद्यमान रहता है जो ईश्वर द्वारा आज्ञप्त है और जिसका आविष्कार करके विद्वान् न्यायाधीश उसकी घोषणा कर सकते हैं। ब्लैकस्टोन की प्रसिद्ध पुस्तक "कमेण्टरीज" अर्थात् 'कानून की व्याख्या' इसी सिद्धान्त पर आधारित थी, और गणतन्त्र के प्रारम्भिक दिनों में अमेरिकी वकीलों और न्यायाधीशों पर उसका बहुत प्रभाव पड़ा था।

परन्तु इस सिद्धान्त के विरुद्ध विद्रोह जेरेमी बेन्थम ने सन् १७७६ में ही आरम्भ कर दिया था; और वह आक्सफोर्ड में ब्लैकस्टोन का विद्यार्थी रह चुका था। लन्दन की गन्दी बस्तियों की ओर संकेत करके बेन्थम ने कहा था कि मुझे ईश्वर का कानून इंगलैण्ड के कानून को चलाता दिखाई नहीं देता। उनका कथन था कि गन्दी बस्तियों की सफाई जैसा उपयोगी काम करने के लिए, चाहे तो मनुष्य भी कानून बना सकते हैं। इसका नाम "युटिलिटेरियनिज्म" अथवा 'उपयोगितावाद' का सिद्धान्त रक्खा गया था। बाद की अमेरिकी विचार धारा में "प्रैगमैटिज्म" का सिद्धान्त इसी से निकला। "प्रैगमैटिज्म" का अभिप्राय यह है कि यदि किसी वस्तु से कोई काम निकल रहा है तो वह अवश्य ठीक होगी। इस परिवर्तन के कारण कानून के प्रति अमेरिकी जनता की राजनीतिक दृष्टि में क्रान्ति-सी हो

गयी, और समय बीतने के साथ-साथ कानूनी विशेषज्ञों और न्यायाधीशों का रुख भी बदल गया।

जबतक कल्पना यह थी कि कानून पहले से ईश्वर के मन में प्रतिष्ठित है और वह बाइबिल के तथा विद्वान कानून-विशेषज्ञों के चिन्तन के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं नहीं मिल सकता, तबतक लोगों का विश्वास था कि वह ऐसा दृढ पर्वत है कि उसी पर घने कुहासे में जाकर भी हजरत मूसा कठोर शिला-खण्डों को पा सकें। परन्तु अब, जब कानून को मनुष्य के हाथों में व्यवस्था, न्याय और समृद्धि लाने का एक साधन समझा जाने लगा है, तब परिस्थिति सर्वथा भिन्न हो गयी है। अब हमारी दृष्टि एक सरल मेघाच्छादित पर्वत के स्थान पर ऐसे विस्तृत भू-खण्ड पर गिरती रहती है जहाँ कि वाष्प-चालित शक्तिशाली कुदाल निरन्तर काम कर रहे हैं और यदि सबको नहीं तो कुछ पर्वतों को उलट-पलट रहे हैं। हमें समझना है कि कौन से पर्वत उलटे जाते हैं और कौन से नहीं। आज डेढ़-सौ वर्ष पूर्व के कानूनी पण्डितों की सरल, किन्तु बहुधा क्रूर, निश्चित धारणाओं का स्थान कहीं अधिक व्यावहारिक, परन्तु उलझन भरे, वे प्रयत्न लेते जा रहे हैं जो कि संसार को हम जैसा चाहेंगे वैसा बना देंगे। और स्वयंप्रभु जनता की आवश्यकता के अनुसार संसार का निर्माण करना अधिकतर राजनीति का विषय है।

सन् १६३७ में डिमोक्रेटों ने जो नया सर्वोच्च न्यायालय संगठित किया था वह आधुनिक "मानव-निर्मित" राज्य की समस्याओं में अपना पाव अभी तक उतनी दृढता से नहीं जमा सका है जितनी दृढता से पहले के न्यायालयों का विश्वास था कि उन्होंने कानून के पुराने सिद्धान्तों में जमा लिया था। क्योंकि यदि कानून का ही रूप निश्चित नहीं तो निर्णयों का कैसे रहेगा?

परन्तु यद्यपि अब हमारा विश्वास यह नहीं रहा कि सत्य और औचित्य, और न्याय और सद्भावना के सिद्धान्तों का ज्ञान, विद्वान् न्यायाधीश किसी विशिष्ट प्रेरणा से प्राप्त कर सकते हैं, तथापि इन सिद्धान्तों ने अपना कार्य करना बन्द

नहो किया है। लोगों ने अब भी निर्णय करने के लिए कुछ सिद्धान्त निर्धारित किये हुए हैं और न्यायाधीशो से भी, मनुष्य होने के कारण, उन्हो सिद्धान्तों की व्याख्या करने के लिए कहा जाता है। इसी कारण सर्वोच्च न्यायालय के प्रत्येक निर्णय के साथ कई पृथक् सम्मतियाँ प्रकट की हुई रहती है कि किन कारणों से कोई न्यायाधीश अपने किसी साथी न्यायाधीश से सहमत या असहमत रहा। परन्तु उस सत्य को खोजते रहने के प्रयत्नो का अन्त अब भी नहो हुआ है जिसे हम अपनी स्थिति का दृढ आधार बना सकें।

## अध्याय ८

# राज्य

राज्यो को स्वतन्त्र राष्ट्रो के सभी अधिकार और शक्तिया प्राप्त हैं। अपवाद ये हैं—

( १ ) वे अधिकार जो संघीय संविधान ने राज्यो के लिए निषिद्ध कर दिये हैं,

( २ ) वे अधिकार जो प्राप्त तो राज्यीय और संघीय दोनो शासनो को हैं, परन्तु जब राज्यो द्वारा उनका प्रयोग उनके संघीय प्रयोग के साथ टकराता हो, और

( ३ ) सघ से पृथक हो जाने अथवा त्याग-पत्र दे देने का अधिकार।

उदाहरणार्थ, संविधान ने राज्यो का किसी विदेशी शासन के साथ सन्धि की वार्ता करना निषिद्ध कर दिया है। कोई राज्य किसी दूसरे राज्य से सन्धि-वार्ता कर सकता है, परन्तु राज्यो के मध्य की सन्धि जो कि "अन्तरर्जियीय कम्पैक्ट" कहलाती है—कानून-सम्मत तभी होती है जब उस पर कांग्रेस की स्वीकृति की छाप लग जाय।

राज्यीय और संघीय, दोनो शासन अन्तर्राज्यीय व्यापार से सम्बद्ध व्यापारिक और श्रमिक प्रयाओ को नियन्त्रित कर सकते हैं। परन्तु इन दोनो के अधिकार-क्षेत्रो की सीमा-रेखा का निर्णय करने के लिए निरन्तर मुकदमेबाजी चलती रहती है।

अपने आन्तरिक मामलो मे राज्य स्वतन्त्र हैं, यहाँ तक कि राज्य के आय-कर और तलाक कानून सरीखे ऐसे मामलो मे भी जिनका प्रभाव प्रतिस्पर्धा के कारण अन्य राज्यो पर पड सकता है। कोई राज्य अपनी कारररवाइयो से अन्य राज्यो के

लिए परेशानी का कारण भी बन सकता है, और उसे संघीय संविधान मे संशोधन करके या उसकी नयी व्याख्या करके ही रोका जा सकता है।

कोई नया राज्य संघ मे सम्मिलित तभी हो सकता है जब कांग्रेस उसके प्रस्तावित संविधान को देखकर यह मान ले कि उससे "उसे गणतन्त्री पद्धति का शासन प्राप्त हो जायगा।" परन्तु एक बार संघ मे सम्मिलित हो जाने पर उसे भी स्वयंप्रभुता के वही सब अधिकार प्राप्त हो जाते हैं जो प्रारम्भिक तेरह राज्यो को प्राप्त थे। इसके पश्चात् कांग्रेस उस राज्य के संविधान को केवल संघीय संविधान मे संशोधन की परोक्ष विधि द्वारा परिवर्तित कर सकती है।

उदाहरणार्थ, मताधिकार किसको दिया जाय और किसको नही, यह निर्णय करने का अधिकार मूल संविधान मे राज्यो को सौंप दिया गया था। संविधान ने स्वीकार किया था कि प्रत्येक राज्य अपने निम्न सदन के सदस्यो का निर्वाचन करने के लिए जिनको मताधिकार दे देगा, उस राज्य में कांग्रेस सदस्यो के निर्वाचन मे भी मत वही दे सकेंगे। संघीय कांग्रेस को, राज्यो के संविधानों या कानूनो के अनुसार बनाये गये नियमो मे परिवर्तन करने का कोई अधिकार नही था। परन्तु वह संघीय संविधान मे ऐसा संशोधन प्रस्तुत कर सकती थी जिसके अनुसार तीन-चौथाई राज्य मिलकर अन्य राज्यो को विवश कर सकें।

स्त्रियो को मताधिकार देने और संयुक्त राज्य अमेरिका के सेनेटरो का निर्वाचन साधारण जनता के मतो द्वारा करने के लिए राज्यो को विवश इसी प्रकार के संशोधनो द्वारा किया गया था।

सन् १८६८ में उत्तरी राज्यो ने चौदहवें संशोधन द्वारा दक्षिणी राज्यो को नीग्रो लोगो को मताधिकार देने के लिए विवश करने का प्रयत्न किया था। परन्तु इस संशोधन को कठोरता से लागू अब तक नही किया जा सका, क्योकि कांग्रेस राजनीतिक दबाव के कारण इन राज्यो के प्रतिनिधियो की संख्या संशोधन के अनुसार घटा नही सकी। परन्तु सामाजिक तथा आर्थिक उन्नति के तथा सुप्रीम कोर्ट (सर्वोच्च न्यायालय) के ऐसे निर्णयो के कारण जिनका विरोध नही हुआ अथवा जिनका पालन टाला नही गया, धीरे-धीरे अधिकतर दक्षिणी राज्यो मे भी

नीग्रो लोग 'डिमोक्रेटिक प्राइमरियों' के निर्वाचन में मत देने लगे हैं। वास्तव में प्रश्न का कठिन अंश यही है। कोई कह सकता है कि संविधान में डिमोक्रेटिक पार्टी का जिक्र नहीं है और इसलिए वह प्राइवेट संस्था मात्र है, जिसे अपने सदस्य स्वयं बनाने का अधिकार है। फिर भी जिन्हें कानून द्वारा नियमित निर्वाचन में चुना जाना होता है, उनका वास्तविक चुनाव इन्हीं 'डिमोक्रेटिक प्राइमरियों' में किया जाता है। इस समस्या का क्रमिक हल कानूनी शक्तियों के व्यावहारिक क्षेत्र से बाहर की बात थी। इसलिए इसे लोकमत के इतने विकास की प्रतीक्षा करनी पड़ी कि दक्षिणवालों को भी यह हल राजनीतिक दृष्टि से स्वीकरणीय हो जाय।

स्थानीय शासनों को अनुमति-पत्र देने का एक मात्र अधिकार राज्यों को है, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार ब्रिटिश पार्लमेण्ट को अधिकार है कि वह चाहे तो लन्दन के स्थानीय शासनों का अनुमति दे दे, मिलाकर एक कर दे या समाप्त कर दे। राज्यों और न्यूयार्क या शिकागो सरीखे उन बड़े नगरों में प्रायः संघर्ष चलता रहता है जिनका बजट राज्य के बजट से भी बड़ा होता है। नगर अपनी शासन प्रणाली में परिवर्तन का या भूमि के नीचे स्थानीय यातायात की अपनी व्यवस्था करने का निर्णय अकेला स्वयं नहीं कर सकता। इस प्रकार के निर्णय वह विधान मण्डल की अनुमति से ही कर सकता है।

राज्यों के विधान मण्डलों की प्रवृत्ति निर्वाचन-क्षेत्रों का विभाजन इस प्रकार कर देने की रहती है कि विधान मण्डल में ग्राम-निवासियों के प्रतिनिधि नगर-निवासियों की अपेक्षा अधिक पहुंच जायं। इसके अतिरिक्त यह सम्भावना भी रहती है कि जो राज्य राजनीतिक दृष्टि से 'सन्दिग्ध' माने जाते हैं उनके नगर-शासन डिमोक्रेटिक और राज्य विधान मण्डल रिपब्लिकन हो जाय।

राज्य की पुलिस और 'मिलिशिया' ( अनियमित सेना ) राज्य के गवर्नर के नियन्त्रण में रहती है। इन्हें किसी अन्य राज्य के विरुद्ध प्रयुक्त नहीं किया जा सकता परन्तु आन्तरिक व्यवस्था की रक्षा के काम में लाया जा सकता है। 'मिलिशिया' का संघ को सेवा के लिए भी बुलाया जा सकता है, और इसके विपरीत यदि गवर्नर अपने बल से आन्तरिक उपद्रव का दमन न कर सके तो वह उसके लिए संघ

की सेना को भी बुला सकता है। गवर्नर का काम कुछ कानूनों का पालन करवाने का भी है, परन्तु सब को नहीं। सघीय शासन के साथ व्यवहार वही करता है। गवर्नरो के सम्मेलनो मे भी वही सम्मिलित होता है और वहा अपनी समान स्थिति के अन्य लोगो के साथ समस्याओ पर और राजनीति पर विचार करता है। अपराधियो को क्षमा करने का अधिकार भी गवर्नर का ही है। परन्तु कभी-कभी यह अधिकार "पेरोल या पार्डन बोर्ड" ( कैदियो को शर्त पर छोडने या क्षमा करने वाले बोर्ड ) द्वारा नियन्त्रित हो जाता है।

सयुक्त राज्य अमेरिका के राष्ट्रपति से राज्यो के गवर्नरो की एक भिन्नता यह है कि वे बहुधा ऐसे निम्न शासनाधिकारियो से घिरे रहते है जो कि जनता द्वारा निर्वाचित होते हैं और पदारूढ रहने के लिए गवर्नर पर निर्भर नहा करते परन्तु हो सकता है कि गवर्नर का लेफ्टनेण्ट गवर्नर ( उपराज्यपाल ) के साथ जो उसका ( गवर्नर का ) उत्तराधिकारी होता है, झगडा रहता हो। इस प्रकार के कारणो से राज्यो के शासन मे गतिरोध का हो जाना अनहोनी बात नहीं है।

कुछ राज्यो में शासन-प्रणाली की एक विशेषता "रि-काल" अर्थात् निर्वाचित पदाधिकारी का वापिस बुला लेने की है। जनता प्रार्थनापत्र देकर, गवर्नर या अन्य पदाधिकारियो को हटाने का मत प्रकट करने के लिए, विशेष निर्वाचन की माग कर सकती है। इस उपाय के द्वारा, कम से कम कहने को, मतदाताओं को ऐसा अवसर मिल सकता है कि वे अपने निर्वाचित पदाधिकारियो के गतिरोधकारी झगडे का फैसला कर दें ; परन्तु व्यवहार मे शायद इसका उपयोग राज्य-भवन मे लडाई हो जाने पर उसे शान्त करने के लिए चेतावनी देने से अधिक नही हो सका।

राष्ट्रपति और राज्यपाल मे एक और अन्तर यह है कि राज्यपाल चाहे तो अधिक ऊँचे पद पर जाने की इच्छा कर सकते है , और वे बहुधा वैसा करते भी हैं। यदि सयुक्त राज्य अमेरिका के किसी सेनेटर का देहान्त हो जाय तो उसके राज्य का गवर्नर (राज्यपाल) त्यागपत्र देकर लेफ्टिनेण्ट-गवर्नर (उपराज्यपाल) द्वारा अपने आपको सेनेट मे नियुक्त करवा सकता है। परन्तु साधारणतया गवर्नर लोग उस स्थान पर अपने किसी मित्र या शत्रु को नियुक्त कर देते है, और ये नियुक्तियां

सदा ही दल-रहित नही होती । बहुत कुछ इस बात पर निर्भर करता है कि अगले चुनाव मे सेनेट के लिए कौन खडा होगा, अर्थात् उस समय गवर्नर सेनेट मे जाना चाहेगा या पुन गवर्नर निर्वाचित होना चाहेगा । न्यू यार्क और ओहीयो सरीखे अति महत्वपूर्ण परन्तु 'सन्दिग्ध' राज्यो के गवर्नरो की प्रवृत्ति व्हाइट हाउस पर दृष्टि गडाये रखने की रहती है । वे राज्य-भवन और सयुक्त राज्य की सेनेट के बीच मे ऐसे जोड-तोड करते रहते हैं कि वे समय पर अपनी पार्टी के भावी "कन्वेन्शन" मे स्वय उम्मीदवार चुन लिये जायं।

राज्यो के विधान मण्डल अमेरिकी राजनीति के अनाथ हैं । न तो उनमे इतनी चमक-दमक है कि संयुक्त-राज्य कांग्रेस की भांति वे जनता का ध्यान आकृष्ट कर लें और न वे जनता के इतने निकट हैं कि स्थानीय सुधारो के आन्दोलनो को जन्म दे सकें, जैसा कि नगरो के शासन प्राय करते हैं ।

राज्यो के लोग अपने राज्यो के विधान मण्डलो को परम्परा से आधे समय की सभा समझते आये हैं । उनके सदस्य प्राय. प्रभावशाली नागरिक होते हैं, जो प्रति वर्ष या प्रति दूसरे वर्ष राज्य की समस्याएँ हल करने के निमित्त कुछ सप्ताह के लिए एकत्र हो जाते हैं, इस कारण उनका पारिश्रमिक भी पूरे समय के वेतन के स्थान पर नष्ट हुए समय की क्षति-पूर्ति मात्र समझा जाता है । इसलिए इसमे आश्चर्य की बात कुछ नही कि बहुत से विधान मण्डल-सदस्य अपने नगर मे निजी रोजगार या वकालत भी साथ-साथ करते रहते हैं । कभी-कभी वे जिन सार्वजनिक प्रश्नो पर विचार करते हैं उनके निर्णय पर उनके निजी काम का भी प्रभाव पड जाता है ।

उदाहरणार्थ, द्वितीय विश्व-युद्ध से पहले एक राज्य मे उसकी सेनेट के सदस्यो का वेतन ७०० डालर वार्षिक से भी कम था । उस राज्य मे उससे बाहर के एक कार्पोरेशन की बहुत सी खानें थी । बतलाते हैं कि उसका प्रतिनिधि अभिमान पूर्वक कहा करता था कि मेरी कम्पनी पर कोई भारी कर नहीं लग सकता, क्योकि राज्य की सेनेट के अधिकतर सदस्य अपने-अपने शहर मे मेरी कम्पनी के वकील हैं और हम उन्हे प्रतिवर्ष ५००० डालर फीस का देते हैं ।

कई राज्यो मे राज्य के एक या अधिक "बास" अर्थात् जनता और अधिकारियो के बीच दलाल होते हैं, जो अति प्रभावशाली व्यापारी लोगो के प्रतिनिधि होते हैं। कई रोजगारो के लिए राज्यो के कानूनो का बडा मूल्य होता है। उदाहरणार्थ, जो ठेकेदार जो सार्वजनिक निर्माण का कार्य करते हैं उनके लिए और जो जुआरी अपने अड्डों पर कानून का नियन्त्रण नही होने देना या उन्हे बन्द नही होने देना चाहते उनके लिए "बास" ऐसे मामलों को, विधान मण्डलो को काबू मे रखने के अपने ही ढग से, अपने ग्राहको के लिए सन्तोषजनक रूप मे सुलभा देता है। उसको शक्ति का आधार यह विश्वास होता है कि विधान मण्डल का जो सदस्य मेरी बात सुनने से इनकार करेगा उसे मैं चुनाव मे हरवा दूगा। और यह दम्भ निराधार नही है।

इसके अतिरिक्त, कुछ विधि निर्माता अपना खर्च "शेक-डाउन" अर्थात् हलचल मचा देने वाले बिल पेश करके चलाते हैं। उदाहरणार्थ, कोई सदस्य नाय्क घरो के लिए आग से बचने की बहुत ही खर्चीली व्यवस्था रखने के कानून का प्रस्ताव या क्रूर सूदखोरो पर नियन्त्रण रखन का बिल प्रस्तुत कर सकता है। शायद यह बिल सचमुच लाभदायक भी हो यदि उस सदस्य का इरादा वस्तुत इसे पास करवाने का हो। परन्तु घबराये हुए नाय्क-मालिको या सूदखोरो को सलाह पहुँचा दी जाती है कि तुम अमुक वकील को कर लो जिससे वह जाकर विधि निर्माता से बहस करके उसे समझा दे, और विधि-निर्माता को फीस के रूप मे 'घूस' मिल जाने पर बिल को 'मर' जाने दिया जाता है अर्थात् उसे आगे बढा कर स्वीकृत कराने की सब कार्रवाई की उपेक्षा कर दी जाती है।

राज्यो के शासन का नैतिक स्तर अपेक्षाकृत निम्न होने का कारण राजनीति मे मतदाताओ की रुचि का अभाव प्रतीत होता है। लोगो को प्राय पता नही होता, और वे जानने की परवाह भी नही करते कि राज्य क कानून की पेचीदगिया क्या हैं और उनका व्यापार-व्यवसाय से क्या सम्बन्ध है। वे ईमानदार व्यक्तियो को इतना पर्याप्त पारिश्रमिक देना नही चाहते कि वे कोई निजी रोजगार किये बिना राज्य की सेवा करते रह सक। वे राज्य की राजनीति पर इतना ध्यान नही देते कि ईमानदार व्यक्तियो को उनके मत "तेल से खूब चिकनी की हुई पार्टी-मशीन"

के मुकाबले भी एकत्र करने का अवसर मिल जाय। परन्तु बीच-बीच में कोई प्रवाद खड़ा होकर लोगों को सुधार की माग करने की लिए जाग्रत कर देता है।

राज्यों के विधान मण्डलों में जनता के अविश्वास के कारण सन् १६०० के आसपास, कोई बीस राज्यों ने अपने संविधान के अंग के रूप में एक सुधार को अपना लिया था। वह था "इनिशिएटिव" अर्थात् जनता द्वारा किसी कानून का प्रस्ताव किया जाना और "रेफरेण्डम" अर्थात् जनता द्वारा कानून का निषेध। लगभग दस प्रतिशत मतदाताओं के हस्ताक्षरों से युक्त प्रार्थनापत्र देकर जनता "इनिशिएटिव" की अर्थात् किसी कानून का प्रस्ताव करने की, अथवा "रेफरेण्डम" की अर्थात् विधान मण्डल के सामने उपस्थित किसी बिल पर विचार रोक देने की, कारखाई कर सकती है। ऐसा प्रार्थनापत्र आने पर विशेष निर्वाचन कराना पड़ता है और उसमें मतदाता विधान मण्डल की इच्छा के विरुद्ध भी किसी बिल को स्वीकृत या अस्वीकृत कर सकते हैं। परन्तु जनतन्त्र का यह प्रत्यक्ष रूप इतना झंझट-भरा है कि इसका उतना उपयोग नहीं हो सका जितना कि सन् १६०० में इसके आविष्कर्ताओं ने समझा था कि होगा। तथापि यदि विधान मण्डल कोई प्रवाद खड़ा कर दे और जनता जाग्रत हो जाय तो यह किवाड़ के पीछे रक्खी हुई लाठी का काम अवश्य दे देता है।

विधान मण्डलों पर अविश्वास का एक और परिणाम राज्यों की यह प्रवृत्ति है कि वे कानून को अपने संविधान का अंग बना देने का प्रयत्न करते हैं। इसका फल यह हुआ है कि कई राज्यों के संविधान इतने भारी-भरकम हो गये हैं कि उनकी शोभा राज्य के सर्वोच्च कानून सरीखी नहीं रही।

जनरुचि और प्रतिष्ठा के अभाव की बाधाओं के बावजूद, अमेरिकी जनता ने राज्यों के अधिकारों के प्रयोग के द्वारा जो सक्रिय राजनीतिक प्रगति कर ली है वह ध्यान देने योग्य है। जब जनता किसी विषय की ओर विशेषरूप से ध्यान देती है तब वह अपनी बात मनवा लेती है या जब कभी कोई योग्य गवर्नर जनता की माँगों की ओर ध्यान आकृष्ट करता है, तब भी काम बन जाता है।

राज्यों ने प्रगति की नई दिशाओं में मार्ग-दर्शक का काम किया है, जैसे कि

रेलवे-लाइनो, सार्वजनिक उपयोग के कार्यों और शराब के व्यवसाय को नियन्त्रित करने मे। स्त्रियो और बालको की रक्षा के लिए अमेरिका मे श्रम-कानून पहले-पहल उन्होने ही बनाये थे। उन्होने बडे नगरो को नगर-शासन की नई प्रणालियो का परीक्षण कर देखने का अधिकार दिया है। हाल के वर्षों मे राज्य विधान मण्डलो का ध्यान आत्म-सुधार की ओर गया है। उन्होने विधि-निर्माण अनुसन्धान कार्या, बिल-लेखक कार्यालया और विधि-सम्बन्धी समस्याओं का अध्ययन करने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय संघो का संगठन किया है।

वास्तव मे संघीय शासन के भी साधारण जनहित के बहुत से कानून राज्यो के कानूनों के आधार पर ही बनाये गये है, ठीक वैसे ही जैसे सविधान के व्यापार-सम्बन्धी अनुच्छेद का जन्म राज्यो के व्यापार को नियन्त्रित करने के नियमो की गडबड मे से हुआ था। उदाहरणार्थ, संघीय सामाजिक सुरक्षा कानून राज्यो के कानूनो का ही फल है। संघीय कानूनो का एक बडा प्रयोजन अमेरिकी व्यक्ति को कुछ ऐसे अधिकार देना था जो एक राज्य से दूसरे राज्य मे जाने पर भी सुरक्षित रहें, क्योंकि लाखों अमेरिकी लोग ऐसा करते ही रहते हैं। राज्य अब भी नये-नये कानूनो के परीक्षा-गृह बने हुए हैं। यदि ये परीक्षण सफल हो जाते हैं तो इनसे प्राप्त अनुभव के आधार पर लोग निश्चय करते हैं कि किसी कानून को जारी रक्खा जाय या नही और किसी कानून का सम्बन्ध किसी राज्य से है या संघ से।

राज्यों के न्यायालय भी ऐसी पद्धति पर स्थापित किये गये हैं जो संघीय न्यायालयो की पद्धति जैसी प्रतीत होती है। सबसे ऊपर सुप्रीम कोर्ट या सर्वोच्च न्यायालय होता है, जिसे राज्य के किसी कानून को सविधान विरोधी ठहरा देने का भी अधिकार होता है। परन्तु राज्यो के न्यायालय जनता के अधिक समीप रहते हैं और उनका वास्ता एक भिन्न प्रकार के कानून से पडता है। संघीय न्यायालयो का सम्बन्ध मुख्यतया संघीय संविधान से पडता है; और राज्यो के न्यायालय, संघीय शासन के सुपुर्द किये गये कानूनो को छोडकर शेष जितने भी कानून है उन सब पर आधारित होते हैं। राज्यो के कुछ कानून तो राज्यो के संविधानों मे और विधान मण्डलो द्वारा स्वीकृत कानूनो मे लिखे रहते हैं। परन्तु

उनका बहुत बड़ा भाग इंगलैण्ड का "कॉमन लॉ" अर्थात् वहाँ की परम्पराओं पर आधारित अलिखित कानून है, उसे ही अपना लिया गया और न्यायालयों के निर्णयों द्वारा अमेरिकी लोगों की आवश्यकता तथा नैतिक विचारों के अनुकूल बना लिया गया है। लूइजियाना राज्य में प्रचलित अधिकतर कानून फ्रेंच है, वह फ्रान्स से आया हुआ और "कोड नेपोलियन" से लिया हुआ है।

"कॉमन लॉ" पहले के निर्णयों से मिलकर बना है, उनमें ब्रिटिश न्यायालयों के निर्णय भी सम्मिलित हैं। वह सभी साधारण अपराधों और नागरिकों के आपसी झगड़ों पर लागू होता है। अपवाद वहाँ होता है जहाँ विधान मण्डल ने उसके स्थान पर अन्य कोई कानून बना दिया है। जिस "ड्यू प्रॉसेस" अर्थात् "उचित कानूनी कारवाई" की संविधान में सब अमेरिकी नागरिकों को गारण्टी दी गयी है, वह प्रायः वही है जिसे इंगलैण्ड में "कॉमन लॉ का उचित रीति से पालन" कहते हैं।

उदाहरणार्थ, सन् १८७६ में इलिनॉय राज्य के न्यायालयों ने गोदामों पर लागू होने वाले इलिनॉय के एक कानून को उचित बतलाया था। उसके विरुद्ध संयुक्त राज्य अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय में इस आधार पर अपील की गयी कि उसके अनुसार किसी भी सम्पत्ति पर "ड्यू प्रॉसेस" या 'कानून की उचित कारवाई' के बिना ही अधिकार किया जा सकता है। सर्वोच्च न्यायालय ने निर्णय दिया कि गोदामों का नियन्त्रण किया जा सकता है क्योंकि उनका सम्बन्ध सार्वजनिक लाभ-हानि से है। न्यायालय ने 'कानूनी कारवाई' की परिभाषा इंगलिश "कॉमन लॉ" के आधार पर ही की थी, क्योंकि 'वहीं से वे अधिकार आये जिनकी संविधान रक्षा करता है'। यद्यपि संघीय शासन का आधार उसका अपना संविधान है, परन्तु वह भी उन सब मामलों में "कॉमन लॉ" अर्थात् परम्परागत अलिखित कानून से ही नियन्त्रित होता है जिनमें उन्हें विधान मण्डल के कानून द्वारा या संविधान में संशोधन द्वारा परिवर्तित नहीं कर दिया गया।

राज्यों के न्यायालय संघीय न्यायालयों की अपेक्षा "इक्विटी" या 'उचित व्यवहार' के मुकदमों की सुनवाई अधिक करते हैं। "इक्विटी" या 'उचित व्यवहार'

उन कुछेक सिद्धान्तो का एक पृथक समुदाय है, जो केवल ऐसे दीवानी झगडो पर लागू होते हैं जैसे किसी जायदाद का उत्तराधिकारियो मे बंटवारा किस प्रकार किया जाय। "इक्विटी" या 'उचित व्यवहार' के आधार पर ही, जज किसी व्यक्ति को कोई काम करने से रोकने के लिए 'इंजक्शन' या हुक्म इमतनाई जारी करने या न करने का निर्णय करता है। वह काम कानून-सम्मत होना भी सम्भव है, परन्तु यदि उससे किसी अन्य व्यक्ति को बिना उचित कारण के हानि पहुचती हो तो 'इंजक्शन' जारी किया जा सकता है।

"इक्विटी" या 'उचित व्यवहार' का विकास इगलैण्ड मे हुआ था, क्योकि लोग "कॉमन लॉ" से सन्तुष्ट नही थे। वह इतना अधिक कठोर था कि उससे असाधारण परिस्थितियो मे न्याय नही हो सकता था। "इक्विटी" या 'उचित व्यवहार' को 'राजा के विवेक' का प्रतिनिधि समझा जाता था, क्योकि राजा अपने विशेषाधिकार से गहराई तक पहुचकर कानून के सगठन मे प्रत्यक्ष अन्याय का निवारण कर सकता था। राजा के विवेक का रक्षक 'चान्सलर' या मुख्य न्यायाधीश था, और 'चान्सरी कोर्ट' ने कुछ सिद्धान्तो के पृथक समुदाय का विकास किया था जिनमे कुछ नियम चर्च के कानून और रोमन कानून भी लिये गये थे।

चार्ल्स डिकन्स के पाठको को स्मरण होगा कि इगलैण्ड मे 'कोर्ट ऑव चान्सरी' अपनी ही विधियो में इतना उलझ गया था कि बडी-बडी जायदादो के उत्तराधिकारियो के झगडो का फैसला शीघ्र नही हो पाता था। सयुक्त राज्य अमेरिका मे "इक्विटी" या 'उचित व्यवहार' के परम्परागत कानूनो को विधान द्वारा सीमित और नियमित कर दिया गया है। कुछ राज्यो मे 'उचित व्यवहार' के मुकदमो की सुनवाई करने के लिए 'चान्सरी कोर्ट' पृथक् हैं परन्तु अधिकतर राज्यो के न्यायालय और सब के सभी न्यायालय कानून और उचित व्यवहार, दोनो के मुकदमो की सुनवाई करते हैं।

अधिकतर राज्यो मे निम्नतम न्यायालय मैजिस्ट्रेट की अदालत या पुलिस अदालत है। उसका जज या मैजिस्ट्रेट, जूरी की सहायता के बिना ही शराब पी कर पागल हो जाने के अपराधी को तीस दिन की जेल का या अत्यधिक तीव्र गति

से मोटर चलाने के अपराधी को जुरमाने का दण्ड दे सकता है। उसको यह अधिकार भी है कि खून करने के अभियुक्त का मुकदमा सुनकर निर्णय करे कि उसे ऊँची अदालत द्वारा सुनवाई के लिए रोका जाय या नहो।

मैजिस्ट्रेट से ऊपर नियमित सुनवाई की अदालतें होती हैं जो ऐसे अधिक महत्वपूर्ण मुकदमो की सुनवाई करती हैं जिनमे जूरी की सहायता की आवश्यकता होती है।

अदालतो की गन्दी राजनीति प्राय मैजिस्ट्रेट या पुलीस कोर्टों मे ही दिखलाई पड़ती है, क्योकि इन अदालतो के अधिकारियो को प्राय कानून का प्रशिक्षण नहा मिला होता है और उनकी नियुक्ति सन्दिग्ध राजनीतिक प्रभावो से हुई होती है। ऊपर की अदालतो मे भ्रष्टाचार कम होता है।

अधिकतर राज्यो में ऊपर की अदालतो के जजो का चुनाव एक नियत समय के लिए जनता करती है। वकील लोग जजो का निर्वाचित किया जाना पसन्द नही करते, क्योकि निर्वाचित जज बहुधा राजनीतिक हवा के रुख को देखकर चलते हैं। 'बार ऐसोसिएशन' (वकीलो के सघ) चुनाव से पूर्व उम्मीदवारो के नामाकन को प्रभावित करने का यत्न करते हैं, जिससे जज वही व्यक्ति चुने जाय जो उनको दृष्टि में अच्छे हो। मजदूरो और किसानो के संगठन निर्वाचन द्वारा जजो को नियुक्ति समर्थन करते हैं, क्योकि उनका ख्याल है कि यदि जजो की नियुक्ति गर्वनर या विधान मण्डल पर छोड दी जायगी तो वे बडे-बडे व्यापारियो के पक्षपातियो को जज बना देंगे। इस प्रकार राज्यो की ऊपरी अदालतें राज्य मे काम करती हुई राजनीतिक शक्तियो का लिहाज करने के लिए विवश रहती हैं, और अमेरिकी जनता के अधिकतर मुकदमे इन्हो अदालतो में होते हैं। ओर इसीलिए वे न्याय और ईमानदारी के उस दर्जे को प्रतिनिधि होती हैं जिसे मतदाता लोग चाहते हो या समर्थन करने के लिए तैयार हो।

राज्यो के शासन में कर्मचारियो की नियुक्तिया साधारणतया राजनीतिक पक्षपात से अधिक और योग्यता के आधार पर कम होती हैं। संघ के शासन मे

राजनीतिक पक्षपात इतना अधिक नहीं होता। राज्यो के विधान मण्डलो के समान, यहा सिविल सर्विसें भी जनता की उपेक्षा का शिकार बनी रहती हैं। परन्तु अब अनेक शक्तिया सुधार की दिशा मे बढ़ रही हैं।

ऐसी एक शक्ति 'टेक्नीकल' सेवाओ का बढ जाना है। उदाहरणार्थ, स्वास्थ्य-रक्षा और इंजिनीयरिंग की सेवाओ मे साधारण राजनीतिक दावपेंच लगाने वाला व्यक्ति यदि घुस भी जायगा तो शीघ्र ही वह पदारूढ पार्टी की सार्वजनिक आलोचना का शिकार बन जायगा। इन सेवाओ म नियुक्तिया योग्यता के आधार पर करनी पड़ती हैं और यह प्रथा अब फैलती जा रही है।

एक अन्य शक्ति सघीय सहायता की है। इस धन का स्थानीय उपयोग करने का भार राज्य के अधिकारियों पर रहता है और इसलिए इसके कारण पहले पहल तो रिश्वतखोरी और अव्यवस्था खूब होती है, परन्तु कुछ समय पश्चात इस व्यवहार के कारण जनता जाग्रत हो जाती है। वाशिंगटन मे भी पदारूढ़ पार्टी अनुभव करने लगती है कि उस राज्य की सहायता करने का यश नही मिल रहा है। फल यह होता है कि अगली बार सहायता देते समय यह शर्त साथ लग जाती है कि सघीय कोष से मिली हुई धन-राशि का व्यय करते समय राज्य नियुक्तिया योग्यता के आधार पर करें।

इन शक्तियो के द्वारा राज्यो के शासन मे योग्य और ईमानदार व्यक्तियो की नियुक्ति मे सहायता मिलने के कारण, राज्यो की राजधानिया मे नागरिकों के उन सगठनो का भी बल बढ जाता है जो शासन सुधार का आदोलन करते है।

अधिकतर राज्यो के शासनों को अपना व्यय अपनी आय के भीतर रखने म कठिनाई होती है। इसका कारण यह नही कि उनके बजट अन्य अमेरिकी सगठनो से बड़े होते हैं, अपितु यह है कि करो की वसूली मे उनकी स्थिति निबल है। किसी कृषि प्रधान राज्य का बजट दस से बीस करोड डालर तक का और न्यू यार्क सरीखे किसी राज्य का सौ करोड डालर तक का हो सकता है। ये बजट अमेरिका के मध्यम और बडे व्यापारिक कार्पोरेशनों से मिलते-जुलते हैं। न्यू यार्क राज्य का बजट न्यू यार्क नगर के बजट से छोटा होता है।

राज्य-सरकारों के कर लगान की मद जमीन जायदाद, चल सम्पत्तियां, रोजगार चलाने के लाइसेन्स, क्रय विक्रय, व्यापारिक या निजी आय, और पेट्रोल तथा सिगरेट पर उत्पादन-कर इत्यादि हैं। सम्पत्तियों पर कर सीमित ही रखना पड़ता है, क्योंकि वह स्थानीय स्वशासन-संस्थाओं की आय का एक बड़ा साधन है। इसके अतिरिक्त सम्पत्ति पर समस्त कर इतना ऊंचा नहीं होना चाहिए कि उसका स्वामी उसे छोड़ने के लिए तैयार हो जाय। आय-कर इस कारण सीमित हो जाता है कि संघीय शासन उसे भारी मात्रा में वसूल कर लेता है, विशेषतः ऊंची आय वालों से। जो सम्पन्न व्यक्ति अपनी आय का ६० या ७५ प्रतिशत संघीय शासन को दे देता है, वह अपनी शेष का उतना ही प्रतिशत राज्य-सरकार को नहीं दे सकता।

इसलिए राज्य-सरकारें आय-कर लगाते हुए ऊंची और नीची आयों में उतना अधिक अन्तर नहीं कर सकतीं जितना संघीय शासन कर देता है। सम्पत्ति-कर, बिक्री-कर और पेट्रोल तथा तम्बाकू पर उत्पादन-कर का प्रभाव चूंकि ऊंची आय वालों की अपेक्षा नीची आय वालों पर अधिक पड़ता है इसलिए राज्यों के करों की साधारण प्रतिक्रिया व्यापार में सुस्ती छा जाने की होती है। यदि कोई राज्य करों की दर ऊंचे उठाने का अधिक यत्न करे तो उसका फल यह होता है कि व्यापार का प्रवाह तुरन्त ही पड़ोस के उस राज्य की ओर को मुड़ जाता है जिसमें वस्तुएं सस्ती मिल सकती हैं।

आय की न्यूनता के कारण राज्य-सरकारें जिम्मेवारियां भी न्यून उठाती हैं और उनकी प्रवृत्ति अपना कुछ बोझ संघीय शासन पर डाल देने की हो जाती है। राज्य संघीय कोष से कई प्रकार की महत्वपूर्ण सहायता पाने की आशा करते हैं। सड़कों और स्कूलों की सहायता तो अमेरिकी परम्परा में पुरानी चली आती है। सन् १९३३ से, बेरोजगारी तथा अन्य अनेक प्रकार की कठिनाइयों में राज्यों को सहायता देने का उत्तरदायित्व संघ के सामाजिक-सुरक्षा विभाग पर जा पड़ा। कठिन समयों पर सार्वजनिक निर्माण कार्यों के लिए संघ की ओर से अधिकाधिक सहायता देने का सिद्धान्त अब प्रायः सर्वत्र मान लिया गया है।

राज्यो को संघीय सहायता देने का सिद्धान्त दो आर्थिक सत्यो पर आधारित है। प्रथम यह कि संघ की कर वसूल कर सकने की शक्ति राज्यो से अधिक है, क्योकि उसके कर से कोई व्यक्ति सयुक्त राज्य अमेरिका से बाहर जाकर ही बच सकता है और द्वितीय यह कि आर्थिक समानता समस्त देश के लिए ही लाभदायक है। कुछ राज्य अन्यो की अपेक्षा अधिक सम्पन्न हैं। साधारणतया, सम्पन्न राज्यो के लिए समर्थ लोग पूंजी लगाकर निर्धन राज्यो मे व्यापार करके वहा कि आय अपनी ओर खीच सकते हैं। यदि संघीय शासन सम्पन्न राज्यो के लोगो पर कर लगाकर उसकी वसूली से प्राप्त हुए धन का कुछ भाग निर्धन राज्यो को दे दें तो धन के आदान-प्रदान का प्रवाह रुकने नही पाता और समृद्धि का चक्र चलता रहता है। इस प्रकार समानता का तर्क राज्यो की स्वावलम्बिता के सरल तर्क पर विजयी हो जाता है।

इसी प्रकार राज्य-सरकारो का एक बडा उत्तरदायित्व यह है कि वे राज्य के धनी और निर्धन भागो मे असमानता के कुछ अंश को समान कर दें। साधारणतया, ग्राम भागो के साथ व्यापार करते हुए लाभ का बडा भाग नगरो में पहुँच जाता है। यदि उसमे हस्तक्षेप न किया जाय तो देहातो की जायदादें धीरे-धीरे नगरो के बैंकों, बीमा कम्पनियो, और अन्य पूंजी लगाने वालो के स्वामित्व मे आती जाती हैं, जैसा सन् १६३३ से पहले हुआ था। इसका परिणाम साधारण समृद्धि की दृष्टि से नहो होता। निजी व्यापार के असन्तुलित परिणामो को ठीक करने के लिए आवश्यक होता है कि राज्य निर्धन प्रदेशो की सहायता करें। उस सहायता का रूप साधारणतया राज्य के व्यय पर सडको और सार्वजनिक भवनो का निर्माण, और स्कूलों, पुस्तकालयों तथा अन्य स्थानीय कल्याण-कोषो को प्रत्यक्ष धन का दान होता है।

असमानता को मिटाने की आवश्यकता और कर लगाने मे संघ की ऊँची शक्ति के कारण राज्यो की आखें वाशिंगटन की ओर अधिकाधिक उठने लगी हैं। उनकी सहायता वहीं से प्राप्त होती है। परन्तु इस प्रवृत्ति से अमेरिकी जनता चिन्तित होती जा रही है। इस चित्र का दूसरा पहलू यह है कि संघीय शासन की केन्द्रीय नौकरशाही और उसके प्रदेशिक तथा स्थानीय दफ्तर तो बढते चले जा रहे हैं और

राज्यों का प्रभाव तथा उत्तरदायित्व घटते जा रहे हैं। दोनों राजनीतिक पार्टियों के नेता चाहते हैं कि संघीय सहायता में वृद्धि को सीमित करने का कोई उपाय निकाला जाय। गवर्नर स्टीवन्सन ने जो सन् १९५२ में राष्ट्रपति पद के चुनाव में खड़े हुए थे, इस बात पर विशेष बल दिया था कि उत्तरदायित्व वाशिंगटन (अर्थात् केन्द्रीय या संघीय सरकार की ओर) से राज्यों की ओर को और राज्यों की ओर से स्थानीय शासनों की ओर को यथाशक्ति अधिकाधिक विकेन्द्रित कर दिया जाय। सन् १९५३ के आरम्भ में राष्ट्रपति आइजनहावर ने आज्ञा दी थी संघीय और राज्यीय आमदनियों और जिम्मेवारियों के पारस्परिक सम्बन्धों का व्यापक अध्ययन किया जाय, जिससे राज्यों के राजनीतिक जीवन को अधिक स्वस्थ बनाया जा सके।

राज्यों के सम्मान और उत्तरदायित्व को ऊँचा उठाने के लिए अनेक बार अनेक उपाय सुझाये गये हैं। एक उपाय यह है कि संघीय शासन कुछ करों को न लगावे, जैसे पेट्रोल का टैक्स, क्योंकि राज्य अपनी सड़कों का व्यय चलाने के लिए इसी पर निर्भर करते हैं। एक सुझाव यह है कि जो राज्य कुछ विशिष्ट करों को लगाने में उपेक्षा करें उसके नागरिकों से उन करों को संघीय शासन वसूल कर ले; जो नागरिक अपने राज्य को वह कर दे रहे हों उनसे वह वसूल न किये जायें। उदाहरणार्थ, इस प्रकार का दबाव राज्यों को सब भी सामाजिक-सुरक्षा व्यवस्था के साथ सहयोग करने के लिए विवश करने को डाला गया था। आय-कर के सम्बन्ध में भी इस उपाय के अवलम्बन का सुझाव दिया गया है। यदि कोई भी राज्य प्रतिस्पर्धा के लिए व्यापारियों या अपने यहां आने वाले सम्पन्न लोगों के सामने आसान शर्तें पेश न करे तो राज्यों की आय बहुतेरी बढ़ सकती है।

केन्द्रीकरण की स्वाभाविक और प्रबल प्रवृत्ति को रोकने का प्रयत्न राजनीतिज्ञों से यथाशक्ति किया जायगा और शायद इसके लिए कृत्रिम साधन भी काम में लाये जायेंगे, क्योंकि अपने राज्यों के शासन की बहुधा उपेक्षा करते रहने पर भी अमेरिकी जनता का स्वभाव यही है कि जब उसके राज्य पर संकट आता दिखाई देता है तब वह उसकी सहायता करने में पीछे नहीं रहती।

## अध्याय ६

# स्थानीय शासन

संयुक्त राज्य अमेरिका में आधे से अधिक लोग नगरों में रहते हैं, और इनमें से लगभग एक सौ नगरों की आबादी एक लाख से अधिक है। शेष अमेरिकी लोगों के लिए स्थानीय शासन का काम मुख्यतया काउण्टियां (जिले) करती हैं। इनके अतिरिक्त स्कूलों, स्वास्थ्य की सेवाओं, और अन्य अनेक प्रयोजनों के लिए हजारों विशेष जिले भी हैं। इन जिलों की सीमाएं और काउण्टियों, नगरों तथा अन्य जिलों की सीमाएं एक दूसरे के ऊपर भी छा जाती हैं। इस कारण हो सकता है कि किसी नागरिक को शासन की संघ, राज्य, नगर, काउण्टी और जिला आदि आधा दर्जन इकाइयों के टैक्स देने पड़ते हों।

टॉमस जेफरसन नगरों से घृणा करते थे और उन्हें भ्रष्टाचार का नाबदान कहा करते थे। वस्तुतः उन्नीसवीं शताब्दी में संयुक्त राज्य अमेरिका के नगरों का राजनीतिक जीवन भ्रष्टाचार के लिए बदनाम था। इसका एक बड़ा कारण यह था कि यूरोप से और अमेरिकी देहातों से नये लोगों के जो झुंड के झुंड नगरों में आते थे वे सुगमता से वहाँ की राजनीतिक 'मशीनों' का शिकार बन जाते थे। सन् १६०० के पश्चात् नगरों के शासन की कुशलता और ईमानदारी में कुछ सुधार हुआ है। इस सुधार का एक कारण यह है कि हाल के वर्षों में रहन-सहन का दर्जा ऊंचा होता गया और नगरों के श्रमिकों की सामाजिक सुरक्षा उन्नत हो गयी है। इसलिए उस सहायता और सहानुभूति की आवश्यकता कुछ कम हो गयी है जिसे

राजनीतिक "बास" अर्थात् 'मालिक' आप से आप बाटते फिरा करते थे। सुधार का एक अन्य कारण यह भी है कि नगरो मे शासन की अधिक कुशलतापूर्ण पद्धति अपना ली गयी है।

नगरो को स्वयं तो स्वयप्रभुता के कोई अधिकार प्राप्त नही हैं, परन्तु नागरिक जैसा 'चार्टर' या अधिकार-पत्र चाहते हैं वैसा राज्य से प्राप्त करने के लिए वे कुछ प्रभाव अवश्य डाल सकते हैं। नगरो मे तीन प्रकार की शासन-प्रणालिया प्रचलित हैं। "मेयर और कौन्सिल" की मूल प्रणाली अब भी सर्वाधिक प्रचलित है। "कमीशन" की प्रणाली को पहले-पहल टेक्सास राज्य के गैल्वेस्टन नगर मे प्रसिद्धि प्राप्त हुई, जहा इसे सन् १९०१ में पानी की विनाशक बाढ़ के पश्चात् आयी आपत्ति का सामना करने के लिए अपनाया गया था। उसके पीछे लगभग पन्द्रह वर्ष तक यह मध्यम आबादी के अन्य नगरो मे भी फैलती चली गयी, परन्तु उसके पश्चात् इसके अनुयायी बनने बन्द हो गये। उसके पश्चात् लोकप्रियता तीसरी "कौन्सिल-मैनेजर" अथवा 'सिटी-मैनेजर' प्रणाली की बढ़ने लगी, और इस समय मध्यम श्रेणी के नौ सौ से अधिक नगरो मे इसी के अनुसार काम हो रहा है।

पुराने ढग के "मेयर और कौन्सिल" शासन मे कौन्सिल-मैन (सभासद) अथवा 'एल्डरमैन' (विशिष्ट सभासद) स्थानीय राजनीतिज्ञ हुआ करते थे, और नगर के कर्मचारी राजनीतिक सेवा का इनाम देने के लिए नियुक्त किये जाते थे। नगरो की भ्रष्टाचारी 'मशीनो' को शासन की यह प्रणाली निम्न कोटि की राजनीतिक कारग्वाइया करने के लिए खूब उपयुक्त लगती थी, और इस कारण वे शासन की कोई नयी प्रणाली अपनाने का प्राय विरोध करती थी। परन्तु "मेयर और कौन्सिल" पद्धति मे भी अब अनेक सुधार हो चुके हैं।

अधिकतर 'कौन्सिलें' अब दो के स्थान पर एक ही सदन वाली रह गयी हैं। इन अकेले सदनो की भी सदस्य-सख्या अब घट गयी है और ये सदस्य आम चुनाव द्वारा निर्वाचित होते हैं। ज्यो-ज्यो ऐसी सार्वजनिक सेवाओ का अधिकाधिक उत्तरदायित्व नगरो पर पडता जाता है जिनके लिए उच्च-प्रशिक्षित सेवको की आवश्यकता होती है त्यो-त्यो नगरो के शासनो का भी पुनर्गठन होता जाता है।

बहुत से नगरों ने मेयर के अधिकार बढा कर उसे शासन की व्यवस्था करने के लिए अधिक उत्तरदायित्व सौंप दिया है। इस प्रकार वे "सिटी-मैनेजर" पद्धति को न अपनाते हुए भी आचरण उसके समान ही करने लगे हैं।

नगर-शासन की "कमीशन" प्रणाली इसलिए चली थी कि उत्तरदायित्व ऐसे कुछेक लोगों के हाथ में रहे जो प्रभावशाली होने के कारण जनता का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किये रह सकें। कमीशन के सदस्य प्राय: पाच होते हैं। उनमें से एक चेयरमैन होता है। वह मेयर कहलाता है। नीतियों का निर्धारण तो सारा कमीशन करता है, परन्तु प्रत्येक सदस्य किसी विशेष विभाग का उत्तरदायित्व उठा लेता है। इस पद्धति की सबसे बड़ी त्रुटि यह है कि कमीशन यदि किसी उलझन में फँस जाय तो उसे सुलझाने का अधिकार किसी को नहीं रहता।

"कौन्सिल-मैनेजर" प्रणाली का परीक्षण पहले-पहल सन् १९०८ मे वर्जीनिया राज्य के स्टौण्टन नगर में किया गया था। इस प्रणाली में नगर के लिए नीतियों का निर्धारण और नियमों की रचना तो कौन्सिल करती है, परन्तु शासन एक मैनेजर के हाथ में रहता है। उसकी नियुक्ति कौन्सिल करती है। वह अन्य किसी नगर का निवासी भी हो सकता है। सफल मैनेजर ज्यों-ज्यों अपने कार्य में अधिक कुशलता प्राप्त करते जाते हैं, त्यों-त्यों वे अधिक अच्छी नौकरी पाने की आशा करने लगते हैं। नगर के अन्य कर्मचारियों की नियुक्ति उनकी योग्यता के आधार पर मैनेजर करता है और इस प्रकार उसे अपना काम भली प्रकार कर सकने के लिए पर्याप्त स्वतन्त्रता रहती है।

"मैनेजर प्रणाली" का आधार, निजी व्यापार के मूल सिद्धान्त के समान, यह है कि नगर की जनता जो कुछ चाहे वह उसे न्यूनतम मूल्य में उत्कृष्टतम मिलना चाहिए। लोगों को नगर के कार्पोरेशन का संचालन, किसी साधारण निजी कार्पोरेशन के समान, एक मैनेजर और एक बोर्ड ऑव् डाइरेक्टर्स की नियुक्ति के द्वारा करना उपयुक्त जंचता है। उसमे उनकी अपनी स्थिति शेयर होल्डरों सरीखी रहती है।

स्पष्ट है कि यदि लोग चाहें तो नगर का शासन, देश की अपेक्षा, बहुत कम राजनीति से चल सकता है। नगर में ऐसी समस्याएं कम होती हैं जो केवल

राजनीति के द्वारा सुलझ सकती हैं। उदाहरणार्थ, उसे बैंकिंग सम्बन्धी या कागजी मुद्रा के संकोच या विस्तार जैसी उन समस्याओं से कोई वास्ता नहीं होता जिनका निर्णय वाशिंगटन में करना पड़ता है। इसके विपरीत वे अल्पसंख्यक लोग "मैनेजर प्रणाली" की निन्दा करते हैं जो बहुमत द्वारा निर्वाचित और बहुसंख्यकों का प्रतिनिधित्व करने वाली कौन्सिल की अधीनता में अपने आपको अरक्षित समझते हैं। कुछ नगरों ने लोगों के राजनीतिक मतभेदों को स्वीकार करने की आवश्यकता का अनुभव करके उन्हें कौन्सिल में आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रदान कर दिया है। इस व्यवस्था के अनुसार यदि किसी अल्पसंख्यक वर्ग को चुनाव में दो तिहाई मत मिल जाय तो उसे कौन्सिल में भी दो तिहाई स्थान मिल जाते हैं। निर्वाचन की साधारण पद्धति में शायद उसे एक भी स्थान न मिल सकता। यदि आनुपातिक प्रतिनिधित्व को राष्ट्रीय निर्वाचनों में भी अपनाया जायगा तो उससे छोटी-छोटी ऐसी पार्टियों को बढ़ावा मिलेगा जो एक पार्टी में से फूटकर निकलती हैं। इस कारण इसे द्विदलीय पद्धति के लिए भय का कारण समझा जाता और इसका विरोध भी किया जाता है। इस आपत्ति के कारण आनुपातिक प्रतिनिधित्व का प्रयोग नगरों में भी कम ही हुआ है।

नगरों के शासन का काम स्वयं नगरों के विस्तार की अपेक्षा भी अधिक तीव्र गति से बढ़ा है। इसका कारण उन नयी-नयी सेवाओं का आविष्कार है जिनके बिना काम चलाने के लिए अब नागरिक तैयार नहीं होते। इसके अतिरिक्त अब नगरों का काम द्रुत परन्तु महंगी यातायात और स्वास्थ्य व्यवस्थाओं के बिना भी नहीं चल सकता। जॉर्ज वाशिंगटन के समय इनकी आवश्यकता नहीं थी। भवनों तथा सड़कों के निर्माण, आग बुझाने की व्यवस्था, स्कूलों और पुस्तकालयों और पुलीस के प्रबन्ध आदि व्यय नगर की आय बढ़ाने की सामर्थ्य की अपेक्षा कहीं अधिक होता जा रहा है।

आय के मुख्य स्रोत जमीन-जायदाद, बिक्री-कर और व्यापार पर सीधे कर हैं। परन्तु जमीन जायदाद और बिक्री के कर भी व्यापार पर निर्भर करते हैं। यदि

नगर अपने करो की नाव पर भारी बोझ डाल देगा तो व्यापार उन उपनगरो मे चला जायगा जो नगर के कर लगाने के अधिकार से परे होंगे ।

नगर जो आमदनी कर सकता है और जीवित रहने के लिए उसे जो कुछ करना पडता है, उन दोनो मे अन्तर रहने के कारण अधिकतर नगर सरकारी सहायता के भरोसे रहने लगे है । उनके राज्यो पर देहाती मतदाताओ का प्रभाव होता है और वे समान बटवारे मे अर्थात् नगरो से कर वसूल करके उसे देहातो मे फैलाने मे लगे रहते है, इस कारण नगर सघ की सहायता पर अधिक भरोसा करते है ।

सन् १९५३ मे न्यू यार्क मे, न्यू यार्क नगर के मेयर और राज्य के गवर्नर मे यह विवाद उठ खडा हुआ था कि नगर का राज्य से कितनी सहायता मिलनी चाहिए । । राज्य अपनी आय का ५५ प्रतिशत स्थानीय शासनो को सहायता देने पर व्यय कर रहा था । न्यू यार्क नगर का राज्य से जो सहायता मिल रही थी । वह उसके (नगर के) सारे बजट का १५ प्रतिशत बतलायी जाती थी । मेयर की शिकायत का आशय यह था कि राज्य के कानूनो मे बँटवारे के नियम ऐसे होते हैं कि उनके कारण छोटी इकाइयो की सहायता का भाग अनुचित रूप से अधिक मिल जाता है ।

संघीय सरकार से नगरो की अपील का आधार समानता का सिद्धात नही है, क्योकि अधिक धन तो बडे नगरो मे ही केन्द्रित रहता है। उसका आधार कर लगाने की सामर्थ्य का अन्तर है । नगर सम्पन्न पुरुषो या कार्पोरेशनो पर भारी कर नही लगा सकते, क्योकि वसा करने से उनके दफ्तर नगर छोड कर चले जायँगे । परन्तु सघीय सरकार उन पर भारी कर लगा सकती है और उससे मिले हुए धन का कुछ भाग नगरो को दे सकती है । वह करती भी यही है ।

इस सबका परिणाम यह हुआ है कि "ग्रेट डिप्रेशन" अर्थात् सन् १९३० के बाद की भारी मन्दी मे जनता को सहायता देने के भारी बोझ के कारण जबसे नगरो की कमर टूटी है तबसे नगर-शासनो मे यह प्रवृत्ति आ गयी है कि राज्यो को तो वे क्रूर सौतेली माता और सघीय शासन को उदार चाचा के समान मानने लगे हैं ।

नगरो की बहुत-सी सेवाओ के, विशेषत नयी और 'टक्नीकल' सेवाओ के तो ईमानदारी और कुशलता के दर्जे मे तो प्रशासनीय उन्नति हुई है, परन्तु अधिकतर

नगरो की पुलीस ने वैसी उन्नति नही की उसमें, योग्यता के आधार पर नियुक्तियो का आविष्कार होने से पहले की, राजनीतिक नियुक्तियो और राजनीति से प्रभावित होने की पुरानी ही परम्परा चली आ रही है। उसका सगठित अपराधियो के साथ सीधा सम्पर्क रहता है और वे अपने बचाव का उसे अच्छा मूल्य दे देते हैं। पुलीस कर्मचारियो को वेतन प्राय थोडा मिलता है और 'भले' लोग उन्हे सदेह तथा घृणा की दृष्टि से देखते हैं। सन् १६५० और सन् १६५१ मे सनेटर एस्टेस केफौवर की अध्यक्षता मे एक समिति ने अन्तर्राष्ट्रीय अपराधो की जॉच की थी और उसे इस बात के प्रमाण मिले थे कि नगरो की पुलिस को सगठित अपराधियो से नियमित रकमे मिलती हैं। आशा है कि ज्यो-ज्यो अपराधो की जाच की विधियो मे उन्नति के कारण अधिकाधिक उच्च प्रशिक्षित मनुष्यो की आवश्यकता पड़ती जायगी और ज्यो-ज्यो जनता पुलीस पर अधिक ध्यान देगी और उसकी कठिनाइयो को समझती जायगी त्यो-त्यो अन्य सार्वजनिक सेवाओ के समान पुलीस भी सुधर जायगी।

जो छ करोड अमेरिकी नगरो में नही रहते उनके लिए स्थानीय शासन का मुख्य रूप 'काउण्टियॉ' अर्थात् छोटे जिलो का शासन है। काउण्टी औपनिवेशिक काल से अभी तक प्राय अपरिवर्तित ही चली आ रही है। उसका शासन एक बोर्ड करता है। उसके सदस्य प्राय दस से भी कम होते हैं। बोर्ड का चेयरमैन ही बहुधा काउण्टी की अदालत का जज भी होता है। काउण्टी के दफ्तर में जमीन-जायदादो के कागजात, वसीयतनामो, विवाहो और अन्य ऐसे निजी दस्तावेजो को सुरक्षित रखा जाता है जिनकी कभी सार्वजनिक प्रयोग के लिए आवश्यकता पड सकती है। काउण्टी स्थानीय सडकें बनाती, राज्य और देश के निर्वाचनो का स्थानीय प्रबन्ध करती और जनगणना तथा सेना में भरती आदि के कामो में स्थानीय इकाई का काम देती है। शेरिफ (कानून का पालन कराने वाला अधिकारी,) कोरोनर ( मृत्यु के कारणो की जाच करने वाले ), अदालत, और जेल का प्रबन्ध भी काउण्टी ही करती है।

विभिन्न राज्यो मे काउण्टियो को विभिन्न प्रकार का कार्य करना पडता है।।

उनके अधिकारियो के नाम विभिन्न हैं और उनकी ईमानदारी या भ्रष्टाचार का दर्जा भी विभिन्न है। उनके शासन का जनता से निकटतम सम्पर्क और जड़ पुरानी परम्पराओ मे बहुत गहरी गयी हुई है। काउण्टियो के बहुत से काम लोग शौकिया करते हैं, और वह भी प्राय. बिना कुछ लिए अपना कुछ समय लगाकर। देहातो के लोग प्राय. परिवर्तन-विरोधी स्वभाव के होते हैं और अपने बाप-दादो से चले आये रीति-रिवाजो मे परिवर्तन शीघ्र नही करते। अकुशलता और भ्रष्टाचार भी लोगों की पुरानी आदतो का अंग हैं।

सडको और स्कूलो का भार अब धीरे-धीरे काउण्टियों पर से उठकर राज्यो और संघ के कोशो पर पड़ता जा रहा है। गाँव-दिहात मे हुए कत्लो की जाच के लिए भी अब राज्य के गुप्तचरो का उपयोग होने लगने की सम्भावना है। इस प्रकार केन्द्रीकरण की वृद्धि के साथ-साथ काउण्टियो के परम्परागत काम कम होते जा रहे हैं। साथ ही केन्द्रीकरण के कारण, काउण्टी के शासनो मे अनेक नये पदो की सृष्टि हो गई है। पहले इन पदो का काम शासन की निम्नतम इकाई स्थानीय डिस्ट्रिक्ट या जिले से चल जाया करता था।

अधिकतर स्थानीय डिस्ट्रिक्ट या जिले स्कूल चलाने के लिए बनाये जाते है। अन्य जिले कर-जिले या सडक जिले अथवा निर्वाचन-जिले आदि होते हैं। निर्वाचन-जिला निर्वाचन के दिन मतदान के केन्द्र की व्यवस्था करता है। अथवा जिला केवल उतना क्षेत्र हो सकता है जितना किसी 'जस्टिस ऑव दी पीस' या छोटे मजिस्ट्रेट के आधीन हो। जिलो का कोई संगठन यदि हो भी तो उसका रूप सरलतम रहने की सम्भावना होती है। पक्की सडकें बनाने पर ज्यो-ज्यो मोटरो का प्रयोग बढता जाने के कारण एक कमरे वाले ग्रामीण स्कूल केन्द्रीय स्कूलो मे मिलते जाते हैं और अन्य स्थानीय कामो का केन्द्र बनाता जाता है त्यों-त्यो स्थानीय डिस्ट्रिक्ट या जिले मिटकर 'प्रेत' या 'भूत' मात्र रहते जा रहे है।

न्यू इंगलैण्ड मे मूल स्थानीय इकाइयाँ 'टाउन' थे। न्यू इंगलैण्ड के टाउनो का क्षेत्र प्रायः तीस से साठ वर्गमील तक होता है। यह क्षेत्र लगभग इतना बड़ा होता है कि उसमे रहने वाला किसान अच्छे मौसम मे घोडा बग्घी गाड़ी द्वारा

कचहरी तक जाकर वापस लौट सके। शासन का प्राथमिक आधार 'टाउन' की सभा है। इसमें एकत्र होकर नागरिक 'टाउन' के मामलों का प्रबन्ध करने के लिए 'सिलेक्टमैना' ( निर्वाचित जनों ) का चुनाव करते, कर लगाने, और यह निर्णय करते हैं कि किन्सी स्ट्रीट को पक्का बनाया जाय या नहीं और पार्क के लिए देखें खरीदी जायं या नहीं। यह विशुद्ध जनतन्त्र तभी तक ठीक चलता है जब तक कि आबादी बढ़कर विकट रूप धारण नहीं कर लेती, और तब 'टाउन' राज्य से कह देता है कि उस पर 'सिटी' अर्थात् बड़े नगर की व्यवस्था लागू कर दी जाय।

टाउन और काउण्टी के बीच की एक वस्तु 'टाउनशिप' थे। वे प्रायः छः मील वर्ग होते थे और कुछ राज्यों में स्थापित किये गये थे परन्तु पक्की सड़कें बनने के पश्चात् यात्रा सुगम होती जाने के कारण ये काउण्टियों में मिलते जा रहे हैं।

जिन पुरानी बस्तियों, जिलों ग्रामों, और पड़ोसों में लोग पहले परस्पर मिलते-जुलते, क्रय विक्रय करते, या गिरजाघर जाने के लिए पैदल या घोड़े पर आया-जाया करते थे उन सब पर मोटर के चलने का प्रभाव उन्हें बखेर देने के रूप में बढ़ा है। बड़े शहरों में यातायात की आधुनिक सुविधाओं के कारण एक ही 'ब्लॉक' में रहने वालों में भी अपने काम-काज, मित्र, स्कूल, और चर्च एक दूसरे से बिल्कुल अलग रखने की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है। इस परिवर्तन के कारण वह सामाजिक और राजनीतिक जीवन खोखला हो गया है जिसे "ग्रासरूट्स" का नाम दिया जाता था। लोग अब भी राजनीति सीख सकते हैं और पार्टियों के संगठन में भाग ले सकते हैं, परन्तु पहले की अपेक्षा कुछ क्षेत्रों से आरम्भ करके और बहुत करके अपरिचितों के मध्य में बैठकर।

पड़ोसियों के साथ परिचय और निकटता के सम्बन्ध टूट जाने के कारण अपने पन की भावना नष्ट हो गयी है उसे पुनर्जीवित करने के लिए अमेरिकी लोग अपने रीति-रिवाजों और संगठनों को पुर्नव्यवस्थित करने का प्रयत्न अनेक प्रकार से कर रहे हैं। संयुक्त राज्य में अमेरिका की सरकार तक अपने कार्यों का यथाशक्ति विकेन्द्रित करने का प्रयत्न कर रही है। कृषि विभाग ने कृत्रिम रूप के पड़ोसी समुदाय तक संगठित करने का प्रयत्न किया है। वह कृषि प्रशिक्षण के किसी क्रम

का अध्ययन करने के लिए कुछ समूहो को एकत्र करता और उनमे खाने-पीने की वस्तुएं बाट कर उनके परिवारो को एक दूसरे से पडोसियों की भाति मिलने का अवसर देता है। एकीभूत सगठित ग्रामीण स्कूल, ग्रामो के बिजली सहकारी सगठन, और राज्य विश्वविद्यालय, ये सब नवीन परन्तु ऐसे विस्तृत पडोसो को पुनर्जीवित करने का यत्न कर रहे हैं जिनकी सीमा मोटर गाडी की पहुच के भीतर हो।

नयी संस्थाओ का संगठन कृत्रिम तो अवश्य है, परन्तु इतने मात्र से वे कुछ कम अमेरिकी नही हो जाती। अमेरिकियो को जब आवश्यकता हो तब नयी सस्थाए खडी करके प्रसन्नता होती है। यान्त्रिक प्रगति के कारण जीवन का जो केन्द्रीकरण होता जा रहा है, उसके प्रति अमेरिकियो का भाव भारी अविश्वास का है। वे विकेन्द्रीकरण के ओर "ग्रास रूट्स" को फिर से पुनर्जीवित या पुन. संघटित करने के उपायो की खोज मे रहते हैं, क्योकि उनकी सहज बुद्धि उन्हे बतलाती है कि राजनीतिक जीवन को प्राण "ग्रास रूटो" से ही मिलते हैं। अमेरिकी जीवन के बडे छोटे सभी शासनो की क्रमिक प्रगति, केन्द्रीकरण और विकेन्द्रीकरण की शक्तियो के दवाव से प्रभावित हो रही है।

अध्याय १०

# शासन और व्यापार

संयुक्त राज्य अमेरिका की अर्थ व्यवस्था भी, अन्य लोकतन्त्री देशो के समान, मिली-जुली है। स्कूलों की पुस्तकों मे जिस अर्थ-व्यवस्था का वर्णन "कैपिटलिस्ट" या पूंजीपतियों की अर्थ व्यवस्था के नाम से किया गया है, यहाँ उसके उदाहरण के रूप मे परस्पर प्रतिस्पर्धा पर आधारित स्वतन्त्र उद्योग भी हैं, जिनमे अधिकतर छोटे-छोटे व्यापारियो, कारखानो, किसानो, और स्वाधीन पेशा-वर लोगो की गणना होती है, और ऐसे बडे-बडे उद्योग भी हैं जो बाजार की कीमतो को अपने हाथ मे रख कर या अन्य प्रकार व्यापार का नियन्त्रण करते रहते हैं। इन्हे कभी-कभी "मोनोपोलिस्टिक कम्पिटीशन" अर्थात् एकाधिकारियो की प्रतियोगिता के नाम से भी पुकारा जाता है। यहाँ टेलीफोन और घरेलू बिजली की सर्विस, सरीखे प्राकृतिक "मोनोपली" (एकाधिकार) भी हैं। यहाँ ऐसे सहकारी उद्योग भी हैं, जिनका लाभ हिस्सेदारों के स्थान पर उनके ग्राहको म ही बटता है। यहाँ ऐसी लाभ न कमाने वाली सस्थाएँ भी हैं, जो नाना प्रकार की सेवाएं करती हैं और अशत या पूर्णत चदो पर चलती हैं। इनका उदाहरण, चर्च, प्राइवेट विश्वविद्यालय, सभा-समाज, क्लबें, परोपकारी सस्थाएँ और मजदूर यूनियन हैं। इनके अतिरिक्त यहाँ सरकारी स्कूलो और डाक-घरो जैसे सरकारी स्वामित्व में चलने वाले उद्योग भी हैं।

व्यापार के साथ शासन का सम्बध दुर्बोध है, सरल नही। इसका कारण विभिन्न प्रकार की अर्थ-व्यवस्थाएं हैं। उनमे से प्रत्येक की आवश्यकताएं और रूप पृथक्-पृथक्

हैं। सघीय, राज्यीय और स्थानोय शासनो की व्यवस्थाएँ भी इनमें सम्मिलित हैं। सरकारी सहायता की अधिकतर माग छोटे बडे व्यापारियो, वेकरो और किसानो आदि जनता के 'पूंजीपति' भागो की ओर से की जाया करती है ओर उनमें बहुधा परस्पर तीव्र विरोध होता है। परन्तु सरकारी सहायता बच्चों, कालिजो और सहकारी सस्थाओ को भी दी जाती है। उसका रूप प्राय करो से मुक्ति का होता है। सरकारी नियन्त्रणो का प्रभाव अन्य प्रकार के रोजगारो की अपेक्षा प्राकृतिक एकाधिकारो पर अधिक पडता है।

सविधान के अनुसार सघीय शासन सगठित करने का प्रथम उद्देश्य वही था जो कि युराप मे शुभ-योजना चालू करने का था—अर्थात् तट-करो की दोवारो द्वारा विभाजित अनेक छोटे बाजारो के स्थान पर एक बडा बाजार बनाकर व्यापार और व्यवसाय की सहायता करना। सघीय शासन ने इस उद्देश्य को राज्यो के मध्यवर्ती व्यापारिक प्रतिबन्धो को समाप्त करके सिद्ध किया था।

इसके पश्चात्, शासन ने, ऐलक्जण्डर हेमिल्टन के निरीक्षण मे, दृढ अर्थ-व्यवस्था स्थापित करने का प्रयत्न प्रारम्भ किया। उद्देश्य भी व्यापार की सहायता करना था। सघीय शासन ने प्राय निकम्मे 'वार-बाण्डो' (युद्ध के ऋण-पत्रो)—राज्यो के बाण्डो—की भी जिम्मेदारी अपने सिर ले ली। इनमे से अधिकतर को सट्टेबाजो ने प्रति डालर पीछे कुछेक सेण्टो मे हो खरीद रक्खा था। शासन ने जनता पर कर लगाये, अधिकतर आयात वस्तुओ पर तट-कर के रूप मे—और बाण्डो का कर्ज चुकता कर दिया। इन अदायगियो के द्वारा सयुक्त राज्य अमेरिका के प्रारम्भिक जीवन मे नये उद्योग खोलने के लिए पूंजी एकत्र होने मे सहायता मिली।

तट-करो से न केवल शासन की आय बढ़ गयी, उनका यह लाभ भी स्पष्ट शब्दो मे बतलाया जाने लगा कि इनके कारण विदेशी वस्तुएँ महगी हो जाती हैं और इस प्रकार अमेरिकी उद्योगो को विदेशी प्रतिस्पर्धा से सरक्षण मिल जाता है।

सघीय शासन शीघ्र ही निजी व्यवसायो को प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप मे सहायता भी देने लगा। शासन ने नहर और सडक बनाकर, और पीछे रेल बनाकर, भी

सहायता दी। शासन ने देश के पश्चिम भाग में जो भूमि खरीदी या जीती थी उनको उसने लोगों में बाट दिया या नाममात्र मूल्य पर बेच दिया। "प्रेयरीज" अर्थात् घास के मैदानों की नयी भूमि की और विस्कोन्सिन तथा मिनसोटा के नये जगलो की लकडी का, उनकी रक्षा या पुनरुत्पादन का कुछ भी विचार किये बिना, कई शताब्दियो तक दोहन किया जाता रहा। यहा तक कि बीसवी शताब्दी में आकर यह दशा हो गयी कि गेहूँ और शहतीर को बेचते हुए उनकी लागत का कोई विचार नही किया जाता था, खेतों और जगलो मे लगी हुई पूंजी को उत्पादक खा जाते थे और पैदावार को सरकारी सहायता मिल जाती थी। सघीय शासन आरम्भ के सौ या कुछ अधिक वर्षों तक पश्चिम में धन के नये स्रोत खोल-खोल कर निजी व्यापारियों को देता गया था कि वे उनसे मनमानी नकदी कमा लें।

पुलिस द्वारा व्यापार की रक्षा का विकास बहुत धीरे-धीरे हुआ। शुरू-शुरू मे व्यापार की चोरो से माल लाने, जाली सिक्के चालू करने और समुद्री डकैतियो आदि पुराने और सुपरिचित अपराधो से बचाव के अतिरिक्त, अन्य प्रकार की सघीय सरक्षा की आवश्यकता प्राय नहीं पडी। आगे चल कर नये-नये व्यवसायो का जन्म होने के कारण और व्यापार के दूर-दूर तक फैल जाने तथा उलझ जाने के कारण, बुराइया भी नयी-नयी होने लगी और उन्हे रोकने के लिए पुलिस की आवश्यकता पडने लगी।

सबसे बडी और महत्वपूर्ण बुराई, जिसके कारण उन्नीसवी शताब्दी के उत्तरार्ध मे लोगों की चिन्ता बढने लगी थी, एकाधिकार थी। सन् १८६१-१८६ के गृहयुद्ध के पश्चात् व्यापार इतना बढ गया कि जनता का ध्यान उसकी एकाधिकारी प्रवृत्तियो की ओर जाने लगा। अमेरिकी जनता अभी तक पश्चिम की ओर को अग्रसर होने की दशा मे ही थी और पश्चिमी राज्यो में प्रत्येक परिवार अपने दैनिक जीवन मे बहुत कुछ स्वाधीन था। परन्तु जब गेहूँ बेचकर आवश्यकता की अन्य वस्तुएँ खरीदने का समय आया तब अग्रणी किसानो ने अपने आपको एकाधिकारी खरीदारो, एकाधिकारी रेलवे कम्पनियो और एकाधिकारी विक्रेताओ के चंगुल में फसा पाया। वे विक्षुब्ध हो गये, और तभी से एकाधिकार के विरोध की विशिष्ट अमेरिकी भावना का सूत्रपात हुआ।

सन् १८९० के आरम्भ-काल में दक्षिण और पश्चिम के किसानों में बड़े व्यापारियों के अनधिकृत अधिकार का विरोध करने के लिए 'पापुलिस्ट" पार्टी का सगठन हुआ। इस पार्टी ने रेलों और टेलीग्राफ तथा टेलीफोन लाइनों के राष्ट्रीयकरण की माग की। "पापुलिस्टों" ने डाकघरों में सेविंग्स बैंक खोले जाने और क्रमिक दर पर अर्थात् ज्यादा आमदनी पर ज्यादा और थोड़ी आय पर थोड़ी आय-कर लगाने की भी आवाज उठायी। उन्होंने सुझाव दिया कि "ग्रीन बैंक" अर्थात् कागजी मुद्रा चलाकर और लोगों को निजी चाँदी के सिक्के ढालकर मुद्रा-बाजार में बैंकों का एकाधिकार समाप्त कर दिया जाय। इनमें पिछला सुझाव कागजी मुद्रा के समान ही मुद्रा स्फीति करने वाला था, क्योंकि इससे एक डालर से कम मूल्य की चाँदी का मूल्य उन पर सिक्कों की छाप लगने के पश्चात् एक डालर के समान हो जाता था। राष्ट्रपति के सन् १८९६ के चुनाव में विलियम जे० ब्रायन के नेतृत्व में डिमोक्रेटिक पार्टी ने चाँदी के सिक्के बनाने का आन्दोलन अपना लिया, और "पापुलिस्टों" ने भी उसका साथ दिया परन्तु ब्रायन चुनाव हार गये।

जनता में विक्षोभ "पापुलिस्ट" आन्दोलन के रूप में भड़क चुका था। उसके कारण सन् १८९० तक दोनों प्रमुख पार्टियों का ध्यान भी एकाधिकार के विरुद्ध राष्ट्रीय स्तर पर कुछ न कुछ कार्रवाई करने की ओर जा चुका था। इस कारण शॅरमन ऐण्टी-ट्रस्ट (ट्रस्ट-विरोधी) ऐक्ट बनाया गया। शॅरमन ऐक्ट के अनुसार अन्तर्राज्यीय अथवा वैदेशिक व्यापार की अवरोधक सब गुट-बन्दियों और षड्यन्त्रों को कानून विरुद्ध घोषित कर दिया गया।

शॅरमन ऐक्ट से पूर्व भी राज्यों ने परम्परागत कानून के जोर पर एकाधिकारों को रोकने के कुछ प्रयत्न किये थे। परन्तु ज्यों-ज्यों कार्पोरेशन बड़े होते गये और देश के एक छोर से दूसरे छोर तक फैलते गए त्यों त्यों राज्यों के प्रयत्न प्रभावहीन होते गये। शॅरमन ऐक्ट की रचना बहुत कुछ परम्परागत कानून सामान्य शब्दों में या संवैधानिक संशोधन के समान की गयी थी। इसका विशिष्ट प्रयोग पीछे न्यायालयों के निर्णयों और बीच-बीच में नये कानूनों द्वारा निर्धारित हुआ

इसलिए धीरे धीरे संयुक्त राज्य अमेरिका के ट्रस्ट विरोधी कानून को परम्परागत कानून का नवकोरा रूप प्राप्त हो गया और यह आवश्यक भी था, क्योंकि एकाधिकार की बुराई अनगिनत रूपों में फैलती जा रही थी।

ट्रस्ट विरोधी कानून को लागू करने के तमाम उतार-चढ़ावों और व्यापार के अवरोधक बड़े-बड़े प्रयत्नों का मिलकर यह परिणाम हुआ है कि संयुक्त राज्य अमेरिका स्थिरता पूर्वक युरोप की साधारण प्रथाओं से भिन्न मार्ग पर चलता रहा है। सभी अमेरिकी लोग, चाहे डिमोक्रेट हों, चाहे रिपब्लिकन, शरमन एक्ट का सम्मान करते और उसे अमेरिकी स्वतन्त्रता की एक आधार शिला मानते हैं। जिन्होंने इस कानून का उल्लंघन भी किया है उन्होंने वैसा इसके पवित्र सिद्धान्त के विरोध में नहीं, इसकी व्याख्या के रूप में किया है। जो कुछ धूर्तता हुई भी है, वह सब स्वतन्त्रता प्रतिस्पर्धा के सिद्धान्त का आदर करते हुए हो हुई है। यह सिद्धान्त अमेरिकी विचार-शैली का अविभाज्य अंग बन चुका है।

अमेरिका के व्यापारी-व्यवसायी लोगों के आचरण में कभी-कभी इस सिद्धान्त का उल्लंघन भले ही दिखाई दे जाय, परन्तु अमेरिकी विचार-शैली में निश्चित रूप से एक सिद्धान्त विद्यमान है, जो अधिकतर अन्य सब स्वतन्त्र देशों से उसकी भिन्नता को प्रकट कर देता है। अमेरिकी लोग बड़ी-बड़ी कम्पनियों की गुटबन्दी और एकाधिकार को नैतिक आदर्शों के विरुद्ध और आर्थिक उन्नति के लिए घातक मानते हैं। उनका विश्वास है कि ट्रस्ट विरोधी कानून कभी-कभी फटे चिथड़े और भद्दे रूप में भले ही दिखाई पड़ा हो, परन्तु यह स्वतन्त्र लोगों के लिए स्वतन्त्रता के झण्डे का काम देता रहा है और इस कारण अमेरिकी प्रगति का एक बड़ा कारण रहा है।

अमेरिकी लोग समझते हैं कि चूंकि युरोप की कोयला और इस्पात कम्पनियों के नये संगठन के अनुमति पत्र में एक प्रबल ट्रस्ट विरोधी कानून भी सम्मिलित है जो उद्योगों में टेक्नीकल कुशलता बढ़ाने के लिए प्रतिस्पर्धा को प्रोत्साहित करता रहेगा, इसलिए वह उचित दिशा में प्रगति का एक सन्तोषजनक उदाहरण है। अमेरिकी लोगों की परीक्षणों और भूलों के पश्चात् अनुभव हो चुका है कि "पूंजीपति"

प्रणाली ज्यो-ज्यों अधिकाधिक सम्पन्न और उत्पादक होती जाती है त्यो-त्यो उसे उन घातक रोगो से मुक्त रक्खा जा सकता है जिनकी कार्ल मार्क्स और उनके अनुयायियों ने कल्पना की थी, परन्तु ऐसा तभी हो सकता है जब शासन एकाधिकार के घास-पात की निराई निरन्तर करता रहे।

अन्य कुछ कम महत्व की पुलिस कार्रवाइया सघ और राज्यो के शासनो ने उपभोक्ताओ को ठगी से बचाने के प्रयोजन से की हैं। सादगी के दिनो मे जब किसान अपनी सब खरीद-फरोख्त चौराहो को दुकानो पर किया करते थे तब ईमानदारी के व्यवहार को ही सर्वोत्तम मार्ग माने जाने की सम्भावना रहती थी, क्योकि दुकानदारी नामवरी के जोर पर ही चलती थी। परन्तु ज्यो-ज्यो व्यापार का देश-भर में विस्तार होता गया और नये-नये अपरिचित सामान बिक्री के लिए बाजार मे आने लगे त्यो-त्यो ग्राहको को अधिकाधिक वस्तुएं अनपहचानी गहराई मे से मिलने लगी और सब प्रकार की ठगी मे अधिकाधिक लाभ होने लगा। इन अवस्थाओ के कारण ऐसे कानून बनाये गये जो शृगार की और भोजन की वस्तुओ मे भयानक विषो के प्रयोग का और विज्ञापनो मे छल-पूर्ण दावे करने का निषेध करते थे। कानून द्वारा यह आवश्यक कर दिया गया कि खाद्यो और औषधियो के डब्बे पर उनके भीतर की वस्तु का असली हाल और उनके बनाने मे प्रयुक्त पदार्थों का नाम लिखा जाय।

राजनीतिक दृष्टि से ठगी-विरोधी कानून एक उल्लेखनीय सफलता का सूचक है, क्योंकि ग्राहक कोई भी व्यक्ति हो सकता है, और उनका ऐसा कोई संगठन नही है जिसके द्वारा इस प्रकार के कानून बनवाने के लिए वे राजनीतिक दबाव डाल सकें। उत्पादको या निर्माताओ के सुसगठित होकर वाशिंगटन मे और राज्यो की राजधानियो मे सौदाबाजी करने के लिए एजन्सियाँ खोल लेने की सम्भावना अधिक है। यह भी सम्भव है कि किसी व्यवसाय के नेता मिल कर निश्चय करें कि ईमानदारी से बनाये हुए माल के संरक्षण के लिए बाजार को अनियन्त्रित रखने की अपेक्षा, मिलावटी माल को रोक देना अधिक अच्छा होगा, इस कारण वे इधर ध्यान दें और संरक्षक कानून बनवाने मे सहायता करें। परन्तु इस प्रकार के अधिकतर

कानून पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित लेखों के कारण जाग्रत जनता द्वारा दबाव डालने पर ही बने हैं, व्यवसायियों की ओर से तो उनका प्रबल विरोध ही हुआ है।

राष्ट्रपति फ्रैंकलिन रूजवेल्ट को अपने शासन के प्रारम्भिक काल में एक बड़ा संघर्ष "सिक्युरिटियों" (कम्पनियों के हिस्से आदि) के बाजार में ईमानदारी लाने के लिए करना पड़ा था। सन् १९३३ के 'सिक्युरिटीज ऐक्ट' और सन् १९३४ के 'सिक्युरिटीज एण्ड एक्सचेन्ज ऐक्ट' द्वारा स्टॉक अर्थात् कम्पनियों की पूंजी बेचने वाले कार्पोरेशनों को बाधित किया गया कि वे कम्पनी की अवस्था का सच्चा-सच्चा विवरण दें और झूठे दावे करने पर नुकसान के लिए जिम्मेवार उन्हीं को ठहराया गया। "न्यू डील" (रूजवेल्ट की आर्थिक-नीति का नाम) का एक अन्य काम, जिसका वित्तीय बाजार पर प्रभाव पड़ा, सन् १९३५ का 'होल्डिंग-कम्पनी-ऐक्ट' था। इस कानून का उद्देश्य सार्वजनिक उपयोगिता का काम करने वाले ऐसे बड़े-बड़े व्यवसायिक साम्राज्यों का बनना रोकना था जो कम्पनियों की तह पर तह चढ़ाते जाते थे, और उनमें से प्रत्येक कम्पनी अपने से निचली तह की कई-कई कम्पनियों के हिस्सा का नियन्त्रण करती थी। इन उलझे हुए व्यावसायिक साम्राज्यों के लिए लाभ को ऐसी जगह सरका देना बायें हाथ का खेल था जहाँ कम्पनियों की इस शृंखला पर नियन्त्रण करने वाले उसे आपस में खपा लें, और साधारण शेयर होल्डरों को अपने हिस्से का कुछ भी लाभ न मिले।

जो वित्तीय कम्पनियां झूठे विज्ञापन देकर, स्टॉक मार्केट में उतार-चढ़ाव करके और बे सिर-पैर की 'होल्डिंग-कम्पनियां' अर्थात् कई-कई कम्पनियों का नियन्त्रण करने वाली कम्पनियां बनाकर, जनता से अनुचित लाभ उठाया करती थीं उन्होंने इन नियन्त्रणकारी कानूनों का तीव्र विरोध किया। एक बार तो एल्मर-डेनिएलसन नामक एक चपरासी लड़के ने गवाही देते हुए बतलाया था कि मुझे "होल्डिंग-कम्पनी-ऐक्ट" का विरोध करने वाले तारों पर हस्ताक्षर इकट्ठे करने के लिए नौकर रक्खा गया था और मुझे प्रति तार तीन सेण्ट दिये जाते थे। इस प्रकार के संकेत मिले थे कि देश की कब्रें तक मानो बड़ी तादाद में वाशिंगटन को तार भेजने लगी थीं और वे तार सदा ही इस बिल के विरोध में होते थे। ऐसी-ऐसी बेईमानियों से

कानून के विरोध का होना प्रमाणित हो जाने पर वित्तीय कानूनों के पास होने मे बडी सहायता मिली। इसका व्यापक परिणाम यह हुआ कि वित्तीय बाजार की जोखिमे कम हो गयी और जनता का विश्वास बढ गया। परन्तु उस मन्दी का शिकार बने हुए लोगो के राजनीतिक दबाव के कारण ही ये कानून पास हो सके थे।

व्यापार-व्यवसाय के साथ शासन का एक और सम्बन्ध टेकनिकल सेवाएँ करने के रूप मे है। इनमे से अनेक सेवाओं को शासन बिना मूल्य करता है। कृषि अन्वेषण और प्रशिक्षण की सेवाएं उन सेवाओ मे प्रथम थी जो संघीय शासन ने आरम्भ की थी। संघीय शासन अब वैज्ञानिक खोज, संख्याओ और गणनाओ की सूचना, ऋतु की रिपोर्ट और बाजार दरो की सूचना देने की सेवा देश और विदेश मे बिना मूल्य करता है। संविधान के निर्देशानुसार, शासन, पेटेण्ट और कापीराइट की रक्षा का कार्य भी करता है।

राष्ट्रपति हर्बर्ट हूवर के समय, जिन कम्पनियो या कार्पोरेशनो के सिक्युरिटियो का मूल्य गिर जाने के कारण दिवालिया हो जाने का भय होता था उन्हें ऋण देने के लिए एक "रिकन्स्ट्रक्शन-फाइनैंस-कार्पोरेशन" की अर्थात् धन की सहायता देकर कम्पनियो को पुनर्जीवित करने वाले कार्पोरेशन की स्थापना की गयी थी। द्वितीय विश्व-युद्ध के समय इसका खूब विस्तार हो गया और इसकी अनेक शाखा-प्रशाखाएँ खुल गयी। "मेटल्स-रिजर्व-एजन्सी" ( धातुओं का संग्रह करने वाली एजन्सी ), "रबर-रिजर्व-एजन्सी" और "डिफेन्स-सप्लाइज-कार्पोरेशन" ( रक्षा की सामग्री देने वाले कार्पोरेशन ) आदि के रूप मे इसने अरबो डालर ऋण दिये और व्यय किये। इसके अतिरिक्त, सन् १९३४ मे स्थापित "एक्सपोर्ट-इम्पोर्ट-बैंक" विदेशी व्यापार को बढावा देने के लिए ऋण देता है। "फेडरल-हाउसिंग-ऐडमिनिस्ट्रेशन" अर्थात् संघीय-गृह-शासन ने ऋणदाताओ का बीमा करके और इस प्रकार उनकी जोखिम घटा कर मकानो के रेहन पर मिलने वाले ऋण की ब्याज-दर नीची कर दी है। ग्रामो मे बिजली के तार लगाने के लिए कम ब्याज पर ऋण देने के प्रयोजन से "रूरल-इलेक्ट्रिफिकेशन-ऐडमिनिस्ट्रेशन" अर्थात् ग्रामीण-बिजली-शासन की स्थापना की गयी।

संघीय शासन न केवल ससार का सब से बडा बैंकर ( महाजन ) है, वरन् वह सब से बडी बीमा कम्पनी भी है। वह न केवल बेरोजगारी का, बुढापे का, और युद्ध-निवृत्त सैनिकों का बीमा करता है, वरन् मकानो, छोटे रोजगारो और खेतियो के लिए निजी ऋण देकर उनसे सम्बद्ध अन्य भी कई प्रकार के बीमे करता है।

अमेरिका के राजनीतिक जीवन मे यह विवाद निरन्तर चलता रहता है कि सरकारी उद्योगो और निजी उद्योगो में ठीक ठीक विभाग-रेखा कहा खीची जाय। पन-बिजली की योजनाओं सरीखे जो काम निजी उद्योग से हो सकते हैं उन्हें सार्वजनिक उद्योग से करने का रिपब्लिकन लोग प्राय सदा विरोध करते हैं। डिमोक्रेटो ने, न्यू डील के मातहत टेनेसी और कोलम्बिया नदियो सरीखे सार्वजनिक बिजली घरो का परीक्षण मात्र करके देखा था। उसमें उनका उद्देश्य कुछ तो प्रत्यक्ष प्रतिस्पर्धा का था और कुछ निजी बिजली घरो के दर नियन्त्रित करने के लिए एक "नपना" कायम कर देने का था।

परन्तु डिमोक्रेटो और रिपब्लिकनो में से किसी का भी झुकाव 'सोशलिज्म' या समाजवाद को व्यावहारिक सिद्धान्त के रूप में अपनाने का नहीं है। दोनों में से कोई भी पार्टी किसी भी उद्योग का शासन द्वारा चलाया जाना तबतक पसन्द नहीं करती जबतक उसके लिए कोई प्रबल कारण न हो। साधारणतया सार्वजनिक और निजी उद्योगो मे से एक को अपनाने का निर्णय करने के प्रधान सिद्धान्त तीन होते हैं।

प्रथम यह कि जब जनता किसी काम को करवाना चाहे और उसके उपभोक्ताओं से उसका मूल्य वसूल करने का कोई सरल साधन न हो तब वह काम शासन के सुपुर्द कर देना चाहिए। बाढ को रोक-थाम और ऋतु सूचना देने के काम इसी प्रकार के हैं।

द्वितीय यह कि जिन कामो को शासन निजी उद्योग की अपेक्षा कम व्यय में कर सकता है, उन्हे शासन को ही करना चाहिए। सार्वजनिक स्कूलो का संचालन और बुढापे का बीमा उन कामो के उदाहरण हैं।

तृतीय यह कि डाक विभाग या टेलिफोन जैसे प्राकृतिक एकाधिकार के जो

काम निजी रूप से नयन्त्रित उद्योग मे जनता को संतुष्ट नही कर सकेंगे उन्हे शासन के स्वामित्व मे चलाने की माग स्वयमेव होने लगे। उदाहरणार्थ, डाक द्वारा पार्सल भेजने की पद्धति तभी आरम्भ की गयी थी जब कि एक्सप्रेस कम्पनियो से जनता असन्तुष्ट हो गयी थी। सयुक्त राज्य अमेरिका मे अधिकतर नगरो की पानी-वितरण की प्रणालियों को और बहुतेक के बिजली-वितरण प्रणालियो को भी म्युनिसिपल शासनो ने अपने हाथ मे ले लिया है। टेलिफोन कम्पनियाँ अपने काम की उत्तमता का विज्ञापन निरन्तर करती हैं, जिससे जनता को असन्तोष न हो और राष्ट्रीकरण का भय जाता रहे। अमेरिकी लोग पसन्द यह करते हैं कि रेल टेलीफोन, टेलिग्राफ, रेडियो और हवाई सर्विस आदि प्राकृतिक एकाधिकार या अर्ध-एकाधिकार के नियन्त्रण मे निजी सगठनो द्वारा किये जायें। परन्तु नियंत्रणकारी संस्थाओ द्वारा औद्धत्य के प्रदर्शन या भ्रष्टाचार को रोकने के रूप म सार्वजनिक स्वामित्व का भय सदा सामने रक्खा जाता है।

शासन और व्यापार मे अन्तर को प्रकट करने वाले ये सिद्धान्त, कार्य के इस अति उलझ भरे क्षेत्र मे अमेरिकी प्रवृत्ति का एक नमूना है। संघीय राज्यीय और स्थानीय शासनो के बजटो—इनमे रक्षा का कार्यक्रम भी सम्मिलित है—का अधिकतर भाग ऐसे व्यवहारो से मिलकर बनता है जिन का सम्बन्ध व्यापारिक जगत से होता है। इन करोडो छोटे बडे व्यवहारो मे अमेरिकी लोग सदा मध्य-वर्गीय, स्वतन्त्र उद्योग के, और साधारण बुद्धि के मार्ग पर चलने का प्रयत्न करते हैं। राजनीतिक विवाद इस प्रश्न पर कभी नही होता कि मध्य मार्ग त्यागकर हमे फासिस्ट या कम्यूनिस्ट प्रणाली अपना लेनी चाहिए या नहीं, अपितु यह निश्चय करने के लिए होता है कि मध्य का मार्ग कौन सा है।

## अध्याय ११

# व्यक्तियों के अधिकार

"स्वतन्त्रता की घोषणा" के शब्दों में "मनुष्य को उसके स्रष्टा ने कुछ अनपहरणीय अधिकारों से सम्पन्न किया है। उनमें जीवन, स्वतन्त्रता और सुख प्राप्ति का प्रयत्न भी है। इन अधिकारों को सुरक्षित करने के लिए ही मनुष्यों में शासन-तन्त्रों की स्थापना होती है।"

सन् १९४६ में राष्ट्रपति ट्रूमन द्वारा नियुक्त नागरिक अधिकार समिति ने ऊपर कहे गये इन अधिकारों को प्राप्त करने के लिए अधिक उत्तम साधनों की खोज करने के सिलसिले में ध्यान देने योग्य चार अधिकारों का उल्लेख किया था। वे चार वर्ग थे—

( १ ) शरीर को संकटों से बचाने और सुरक्षित रखने का अधिकार,

( २ ) नागरिकता के साधारण और विशेष अधिकार,

( ३ ) विचार-स्वतन्त्रता और प्रकाशन का अधिकार,

( ४ ) अवसर की समानता का अधिकार।

अधिकारों का विभाजन इस आधार पर भी किया जा सकता है कि वे नागरिक की रक्षा किससे करते हैं—शासन से, या अन्य नागरिकों से, या बेरोजगारी से लेकर चेचक की बीमारी तक की सामान्य आपत्तियों से ? यह वर्गीकरण राजनीति और शासन पर विचार की दृष्टि से बहुत उपयोगी है, क्योंकि मनुष्य के जीवन, स्वातन्त्र्य और सुख प्राप्ति के प्रयत्नों पर आक्रमण करने वाले तीन प्रकार

के शत्रुओं का सामना शासन विभिन्न प्रकारो से करता है, और राजनीतिक दृष्टि से उनके रूप भी विभिन्न हैं।

संविधान द्वारा संरक्षित अधिकारो का संघीय, राज्यीय और स्थानीय शासनो द्वारा उल्लघन होने पर उसका प्रतिकार न्यायालयो की सहायता से किया जाता है। न्यायालय कानून के विरुद्ध बन्द किये गये बन्दी को रिहा करने की आज्ञा दे सकते हैं; और व्यवहार मे शासन न्यायालय के विरुद्ध आचरण कभी नही करते।

कोई नागरिक किसी दूसरे नागरिक की हानि करके अधिकारो का जो उल्लंघन करता है वह परम्परागत कानून के विरुद्ध भी हो सकता है, अथवा विधिनिर्मानी संस्था के कानून द्वारा भी गैरकानूनी ठहराया जा सकता है। कई प्रकार के अशोभन व्यवहारो को धर्माचार्य, और अन्य नैतिक नेता तो निन्दा करते हैं, परन्तु उन्हे कानून विरुद्ध कभी नही माना गया। जाति या धर्म के आधार पर भेद-भाव करना इसी प्रकार का व्यवहार है। इस प्रश्न पर अब तक राजनीतिक विवाद ही चल रहा है कि क्या कुछ प्रकार के भेद-भाव को कानूनन दण्डनीय ठहराना चाहिए ?

समाज और राष्ट्र का सदस्य होने के नाते नागरिक को सामान्य शत्रुओं से कई प्रकार की रक्षा पाने का अधिकार है। विदेशी आक्रान्ता बम वर्षको से तो रक्षा पाने का अधिकार उसे है ही, महामारी, अग्नि और बाढ से भी रक्षा पाने का वह अधिकारी है। इंगलैण्ड के पुराने परम्परागत कानून के अनुसार, यदि वह भूखा मर रहा हो तो उसे सार्वजनिक दातव्य-संस्था से सहायता पाने का अधिकार भी है। रक्षा पाने के अधिकार की ठीक-ठीक सीमा का निश्चय अब तक 'कन्जर्वेटिवो' और 'लिबरलो' अर्थात् अनुदार और उदार पार्टियो मे विवाद का एक बडा विषय बना हुआ है। 'रिपब्लिकन' और 'डिमोक्रेटिक' दलो में, और उनके भीतरी उप-दलो मे भी, इस प्रश्न पर मतभेद है।

क्रान्ति के पश्चात् जब अमेरिकी लोग अपने नये स्वतन्त्र देश का प्रबन्ध करने लगे तब उन्हे मुख्य चिन्ता अपने नये शासको के अन्यायो और अत्याचारो से अपने अधिकारो की रक्षा करने की हुई। कई प्रकार के अधिकार प्रथा और परम्परागत

कानून द्वारा पर्याप्त-रूपेण रक्षित प्रतीत होते थे, और उस समय उसकी तत्काल रक्षा करना इतना आवश्यक नहीं जान पड़ता था जितना आगे चल कर जान पड़ने लगा।

अब तो अमेरिकी नागरिकों और शासन-अधिकारियों के बीच के प्रायः दैनिक व्यवहारों में से वैधानिक अधिकारों को स्वयं प्राप्त मान कर चला जाता है। परन्तु अब भी बहुत से मामले कानून की सीमा-रेखा पर पहुँचकर विवादास्पद बन जाते हैं और उनका निर्णय न्यायालयों को करना पड़ता है कि उनमें नागरिक का कोई अधिकार है या नहीं और है तो कितना।

उदाहरणार्थ, सन् १९५१ में सर्वोच्च न्यायालय ने निर्णय किया था कि "थर्ड डिग्री" अर्थात् अपराधों की जांच करते हुए बल का प्रयोग करने की, प्रथा संविधान के पांचवें और चौदहवें संशोधनों का उल्लंघन है। इन दोनों संशोधनों में कहा गया है कि शासन किसी भी व्यक्ति के जीवन, स्वातन्त्र्य या सम्पत्ति का अपहरण, कानून की उचित कार्रवाई के बिना, नहीं कर सकता। एक व्यक्ति पर अपराधी होने का सन्देह था। एक पुलीस अफसर ने उससे अपराध कबूलवाने के लिए उस पर बल का प्रयोग किया था। उस पुलीस अफसर को संघीय अपराध करने का दोषी माना गया। इस प्रकार एक पुराने अधिकार में उसकी एक नयी परिभाषा जुड़ गयी।

चौदहवें संशोधन में कहा गया है कि कोई राज्य किसी भी व्यक्ति को अन्य सब के समान कानूनों का संरक्षण देने से इनकार नहीं करेगा। एक आदमी को कत्ल करने के अपराध में दण्डित होने पर जेल में बन्द कर दिया गया, और जेलर ने जेल के नियमानुसार उसकी अपील के कागजों को राज्य के सर्वोच्च न्यायालय तक पहुँचने के लिए बाहर नहीं जाने दिया। संघीय सर्वोच्च न्यायालय ने निर्णय दिया कि राज्य ने इस आदमी को कानूनों का समान संरक्षण देने से इनकार किया, इसलिए वह या तो इसकी अपील की ठीक प्रकार सुनवाई करवाये और या इसे छोड़ दे।

चौथा संशोधन लोगो को अनुचित तलाशी और कब्जे के विरुद्ध गारंटी देता है। इसलिए न्यायालयो को बहुधा यह निर्णय करना पडता है कि क्या 'अनुचित' है और क्या नहीं। एक मामले मे पुलीस को सकारण सन्देह था कि एक मादक वस्तुओ को फेरी करने वाले ने कुछ नशीली चीजे अपने एक मित्र के घर मे छिपा दी है। वह तलाशी का वारण्ट लिये बिना उसके घर मे घुस गयी और चीजें बरामद कर ली। सर्वोच्च न्यायालय ने निर्णय दिया कि यह कार्रवाई सविधान का उल्लंघन है। सन्दिग्ध व्यक्ति कितना ही अपराधी क्यो न हो, कानून उसे पकडने के लिए पुलीस को कानून-विरोधी साधन काम मे लाने की अनुमति नही देता। ऐसा करने से निरपराधों के अधिकार भी संकटापन्न हो जायँगे।

न्यायालय द्वारा उचित सुनवाई के अधिकार की व्याख्या न्यायालयो को बार-बार करनी पडती है, जिससे नये-नये प्रकार के उल्लंघनों से बचा जा सके अथवा जो पुराने और अभ्यस्त उल्लंघन जनता के विवेक को अप्रिय लगने लगे हैं, उनको रोका जा सके।

फ्लारिडा राज्य मे दो नीग्रो आदमियों पर बलात्कार का अभियोग लगाया गया और उन्हे सजा हो गयी। उनके मुकदमे मे 'ग्रैण्ड जूरी' (अभियोग की जाच करने वाले जूरी) ओर 'ट्रायल जूरी' (मुकदमा सुनकर निर्णय देने वाले जूरी) दोनो के सब सदस्य केवल गोरे व्यक्ति थे। राज्य के न्यायालय ने तो उनकी सजा को बहाल रक्खा, परन्तु सर्वोच्च न्यायालय ने उसे उलट दिया, और कारण जूरी मे केवल गोरे लोगो का होना बतलाया। इस मुकदमे की एक और विशेषता यह थी कि यद्यपि इस्तगासे ने न्यायालय मे दोनो अभियुक्तो का कोई इकबाली बयान पेश नहीं किया था परन्तु समाचारपत्रो मे यह छप गया था कि उन्होंने अपना अपराध स्वीकार कर लिया है। सर्वोच्च न्यायालय के दो जजो ने अपने निर्णय मे लिखा कि समाचारपत्रो का यह हस्तक्षेप ही मुकदमे की सुनवाई को न्याय से असंगत बनाने के लिए पर्याप्त है।

जूरी के निर्णय से पूर्व, अपने अभियोग के विषय मे समाचारपत्रो को कुछ भी मत प्रकट न करने देने का अभियुक्त का यह अधिकार संयुक्त राज्य अमेरिका मे

अभी तक उतनी स्पष्टता से नहीं माना गया है जितनी स्पष्टता से यह ब्रिटेन में माना जा चुका है। फ्लारिडा के इस मुकदमे में इस अधिकार का अंकुर जम जाने के लक्षण दिखलाई पड़ते हैं।

पाचवें संशोधन के अनुसार कोई गवाह किसी ऐसे प्रश्न का उत्तर देने से इनकार कर सकता है जिससे स्वयं उसके किसी फौजदारी मुकदमे में फंस जाने का भय हो। परन्तु कम्यूनिस्ट पार्टी के प्रधान नेताओं को बल और शक्ति से शासन को उलट देने का षड्यन्त्र करने के अपराध में दण्डित किया जा चुका है, और १६४० के जिस स्मिथ ऐक्ट के अनुसार उन्हें दण्ड दिया गया था उसे असंवैधानिक ठहराने से सर्वोच्च न्यायालय भी इनकार कर चुका है। इसलिए अब यदि कांग्रेस की जांच-समिति किसी व्यक्ति से पूछकर उसके उसके कम्यूनिस्ट सम्बन्धों के विषय में प्रश्न करे तो वह इस आधार पर उत्तर देने से इनकार कर सकता है कि कम्यूनिस्ट कारखाईयां अपराध ठहरायी जा चुकी हैं और यदि मैंने उनके साथ अपना सम्बन्ध स्वीकार कर लिया तो मुझ पर भी अभियोग चलाया जा सकेगा। सर्वोच्च न्यायालय यह निर्णय भी दे चुका है कि कोई गवाह कोई ऐसी निर्दोष बात बतलाने से भी इनकार कर सकता है जो किन्हीं साक्षियों की शृंखला की कड़ी बनकर गवाह पर मुकदमा चलाने का कारण हो सकती हो।

पाचवें संशोधन का लाभ उठाकर कोई गवाह कम्यूनिस्ट षड्यन्त्र के अभियोग में फंसने से भले ही बच जाय, परन्तु वह उसका सहारा लेकर अपनी नौकरी जाने के खतरे से अपनी रक्षा नहीं कर सकता, क्योंकि उसका मालिक उसकी इस कारखाई का अर्थ यही लगायेगा कि इसने अपने को हानि पहुँच जाने के भय से सत्य को प्रकट नहीं किया।

प्रथम संशोधन ने धर्माचरण की स्वतन्त्रता की गारण्टी दी है। परन्तु उस की समय-समय पर पुनः व्याख्या किये जाने की आवश्यकता अभी तक बनी हुई है। बहुत से धर्म-प्रचारकों के सामने कानून की दृष्टि से सदिग्ध होते हैं। वे गलियों के चौराहों पर या सार्वजनिक पार्कों में भाषण करना चाहते हैं। परन्तु

सम्भव है कि वे ऐसे अजनबी लोग हों कि उनके भाषणों के कारण दंगा हो जाय। यह निर्णय नगर की पुलिस को करना पड़ता है कि किसी भाषण में कहाँ धार्मिक स्वतन्त्रता की समाप्ति होकर दंगों के लिए उकसाहट की शुरुआत हो गयी। धार्मिक स्वतन्त्रता की सीमा-रेखा के संदिग्ध मामलों की एक अन्य कठिनाई यह है कि ठगों और धूर्तों को भी किसी धर्म का नाम लेकर इस संशोधन की आड़ में छिप जाने का अवसर मिल सकता है।

समाचार पत्रों की स्वतन्त्रता संयुक्त राज्य अमेरिका में बहुत आगे बढ़ी हुई है; विशेषतः सार्वजनिक कर्मचारियों की उचित या अनुचित आलोचना करने में इस स्वतन्त्रता को लोकतन्त्र की मूल रक्षिका माना जाता है। परन्तु समाचार पत्रों को कानूनी स्वतन्त्रता के साथ ही इतनी आर्थिक स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं होती कि बहुत से लोग जैसा पत्र पढ़ना चाहते हैं वैसा ही वे छाप सकें। छपाई की कला का विकास कुछ इस प्रकार हुआ है कि बड़े पत्र विज्ञापन अपने छोटे प्रतिस्पर्धियों की अपेक्षा कम दरों पर ले सकते हैं। इसका फल यह होता है कि बहुत से स्थानों पर केवल एक पत्र जीवित रह सकता है और पाठकों को अपने स्थानीय पत्रों में उसके विरोधी विचार पढ़ने की स्वतन्त्रता नहीं रहती।

समाचार पत्रों की स्वतन्त्रता की इस व्यावहारिक समस्या को हल करने में राजनीतिक व्यवस्था अपने आपको प्रायः असमर्थ पाती है। हो सकता है कि कभी किसी पत्र को अपने प्रतिस्पर्धी पत्र से विज्ञापन छीन लेने के अपराध में ट्रस्ट-विरोधी कानूनों के अनुसार दण्डित करा दिया जाय, परन्तु अधिकतर एकाधिकार कानून-विरोधी कारस्वाईयों का परिणाम नहीं है। वे स्वतन्त्र प्रतिस्पर्धा का चरम फल हैं और छोटे पत्रों को सरकारी सहायता देने से बढ़ कर अनुचित और कुछ हो नहीं सकता। इस समस्या का हल यही दीखता है कि छपाई कि कला में कुछ ऐसा नया विकास हो जाय जो छोटे पत्रों के लिए लाभदायक हो।

समाचार पत्रों की स्वतन्त्रता की यह आर्थिक हानि इस बात का उदाहरण है कि किस प्रकार कोई संवैधानिक अधिकार किसी ऐसे आर्थिक या सामाजिक

अधिकार की सीमा मे प्रविष्ट हो सकता है जिसकी रक्षा करने मे शासन भी पूर्णतया समर्थ न हो। इस प्रकार के अन्य उदाहरण जाति या धर्म के आधार पर किये जाने वाले भेद भाव से सम्बद्ध समस्याओ मे मिल सकते हैं।

अमेरिका के लोग अनेक राष्ट्रो से आये हुए हैं। उत्तर-पश्चिमी युरोप से आये हुवे लोग परस्पर घुल मिलकर अमेरिकी आबादी का एक प्रभावशाली भाग बन गये है। देश की अधिकतर सम्पत्ति के स्वामी वही है, और अधिकतर राजनीतिक शक्ति भी उन्ही के हाथ मे है। अन्य लोग जब अपने धर्म या रीति रिवाजो, या सबसे बढकर अपने रग के कारण पहचान लिये जाते हैं कि वे ओरो से भिन्न हैं तब उसके साथ भेद-भाव का व्यवहार होने की बहुत सम्भावना रहती है। नीग्रो, चीनियो, जापानियो, मेक्सिकनो, अमेरिकी इण्डियनो, और रायोग्रेण्डे की घाटी के प्रथम निवासी स्पैनिशो की सन्तान हिस्पानो-अमेरिकनो आदि सबके साथ अनेक प्रकार के भेद-भाव का व्यवहार होने की सम्भावना रहती है। यही बात यहूदियो, कैथालिको, ओर 'जिहोवा के विटनेस' आदि छोटे-छोटे प्राटेस्टेण्ट सम्प्रदायो के विषय मे है। पूर्वी ओर दक्षिणी यूरोप के लोग जबतक बडी सख्या मे इकट्ठे रहते और अपनी भाषाए बोलते रहते हैं, तबतक प्राय उन सबके साथ विदेशियो का सा बरताव होने की सम्भावना बनी रहती ही है।

अल्पसंख्यको के साथ भेद का बरताव होने का एक बडा कारण बेरोजगारी का डर है। श्रमिक लोग जाति, धर्म या मूल राष्ट्रीयता आदि ऐसी किसी भी प्रत्यक्ष भिन्नता का बार-बार चर्चा करते रहते हैं जिसे काम पर उनका एकाधिकार हो जाने के बहाने के रूप मे पेश किया जा सके। सन् १६४० से आगे बहुत समय तक अधिक रोजगार मिलने की जो परिस्थितिया बनी रही उन्होंने इस पृथक्ता की भावना को मिटाने में बडी सहायता की थी। तब नीग्रो लोगों तक के विरुद्ध भावना कुछ मन्द पड गयी थी।

राष्ट्रपति ट्रूमन द्वारा नियुक्त नागरिक अधिकार समिति ने ऐसे अनेक प्रकार के अन्यायो की एक लम्बी सूची तैयार की थी, जिनका अल्पसख्यक नागरिको को शिकार होना पडता था। इन अन्यायो का पता लगाने और उन्हे दूर करने के

उपाय सुझाने के लिए ही यह समिति नियुक्त की गयी थी। परन्तु इसने इन बड़े-बड़े अन्यायों की पृष्ठभूमि का चित्रण करते हुए बतलाया था कि अमेरिकी जीवन में अल्पसंख्यकों तक के लिए स्वतन्त्रता की ओर अवसरों की प्रचुरता है, और हर दस-दस बरस पर नागरिक अधिकार अधिकाधिक सुरक्षित होते जा रहे हैं।

शरीर को संकटों से बचाने और सुरक्षित रखने के अधिकार की चर्चा करते हुए इस समिति ने बतलाया था कि इस शताब्दी के प्रथम दस वर्षों में जहाँ प्रति वर्ष प्राय डेढ़ सौ व्यक्ति उत्तेजित भीड़ की ज्यादतियों के कारण अपने प्राणों से हाथ धो बैठते थे, वहाँ सन् १६४० के पश्चात् यह संख्या प्रति वर्ष छ से भी कम रह गयी है। परन्तु हाल के वर्षों में जो थोड़े से आदमी इस प्रकार मारे गये उनसे कई गुणा अधिक की स्थानीय अधिकारियों ने भीड़ की ज्यादतियों से रक्षा की। नीग्रो लोगों का टस्केजी इन्स्टिट्यूट 'लिन्चिंग' का अर्थात् व्यक्तियों के भीड़ द्वारा मारे जाने का पूरा-पूरा लेखा रखता है। उसने बतलाया था कि सन् १६४६ से पहले के सात वर्षों में २२६ व्यक्तियों की 'लिन्चिंग' से रक्षा की गयी। इनमें २०० से ऊपर नीग्रो थे।

भीड़ की उग्रता में कमी का कारण यह है कि लोग शिक्षित और समृद्ध हुए हैं और साथ ही साथ शेरिफों ( कानून का पालन कराने वाले अधिकारियों ) तथा पुलिस के चरित्र में सुधार हुआ है। हाल के वर्षों में जिन 'शेरिफों' ने भीड़ का सामना किया उन्होंने देखा कि भीड़ उन्हें मारने को नहीं दौड़ पड़ती।

राष्ट्रपति ट्रूमन ने सिफारिश की थी कि कांग्रेस 'लिन्चिंग' को संघीय अपराध ठहरा दे, परन्तु सेनेट ने इस बिल का 'फिलिबस्टर' (निःसीम विवाद) द्वारा अंत कर दिया।

शरीर के बचाव और सुरक्षा के अधिकार का उल्लंघन पुलिस के पाशविक और अदालतों के पक्षपातपूर्ण व्यवहार से भी होता है। ये अपराध बहुधा संघीय संविधान का उल्लंघन करके किये जाते हैं और सर्वोच्च न्यायालय इनके विरुद्ध कारवाई कर सकता है। उसके ध्यान में 'पिओनेज' अर्थात् शर्तबन्द गुलामी के जो

मामले आवें उनमे भी वह कारवाई कर सकता है। 'पिओनेज' के अपराध का होना वही सम्भव है जहाँ लोग गरीब, दब्बू और अपने अधिकारो से बिलकुल अनजान हो। कोई बेअसूला आदमी किसी शिकार को पकड़कर उसे ऋण में फँसा देता है और उसे किसी प्रकार यह विश्वास करवा देता है कि जबतक ऋण नही अदा कर दिया जायगा तब तक उसे बेगार करनी पड़ेगी।

किसी के पूर्वज कोई भी क्यो न हों, जिस किसी का जन्म संयुक्त राज्य अमेरिका मे हो उसे कानूनन नागरिकता का अधिकार प्राप्त हो जाता है। परन्तु एशिया के बहुत से निवासियों को, उनका जन्म इस देश मे होने पर भी, अमेरिकी नागरिकता के अधिकार नही दिये गये थे। कैलिफोर्निया में और अन्य कई पश्चिमी राज्यो मे, जो विदेशी लोग नागरिक नहीं बन सकते थे, उन्हें खेतो का स्वामी नहीं बनने दिया गया, और कई मामले तो ऐसे भी हुए जिनमे नागरिक बनायी गयी उनकी सन्तान के खेतो से उन्हे निर्वाह तक नही लेने दिया गया। कानूनन सघीय सरकार को अधिकार है कि वह इस प्रकार के भेदपूर्ण व्यवहार को सन्धि करके या आगमन के नियमो मे परिवर्तन करके ठीक कर दे, परन्तु राजनीति मे ऐसी कारवाइयाँ करना शायद तब तक सम्भव नही होगा जब तक कि लोकमत अधिक सहिष्णु न हो जाय।

अब तक मताधिकार को नाना प्रकार की कानूनी चतुराइयो से सीमित किया जाता रहा है। परन्तु उनको एक-एक करके असवैधानिक घोषित कर दिया गया है। दक्षिण के कई भागो मे नीग्रो लोगो को भीड की ज्यादतियो के डर से मत नहीं देने दिया जाता, परन्तु सन् १९५२ के आकड़ो से ज्ञात होता है कि अधिकतर दक्षिणी बस्तियो मे नीग्रो मतदाताओं की संख्या बढ़ने से बढ गयी है।

सन् १९२१ मे ग्यारह दक्षिणी राज्य ऐसे थे जिनमे मत देने के लिए एक "पोल-टैक्स" अर्थात् मतदान-कर लिया जाता था। परन्तु दोनो जातियों के गरीब लोग इस कर से मुक्त थे। सन् १९४४ मे पता लगा कि जिन राज्यो मे 'पोल टैक्स' लगा हुआ था उनमे मत देने मे समर्थ लोगों मे से लगभग दस प्रतिशत ने ही मत दिया था। डेढ सौ वर्ष पूर्व तो मताधिकारी बनने के लिए साम्पत्तिक योग्यता की शर्त सर्वत्र ही लागू थी। सघीय कानून बनाकर 'पोल टैक्स' समाप्त करने के

प्रयत्नो का सेनेट मे 'फिलिबस्टर' द्वारा अर्थात् विवाद को अनन्त लम्बा खीचकर विरोध किया गया। परन्तु अब कई राज्यो ने यह टैक्स स्वय ही हटा दिया है।

नागरिकता का एक और विशेषाधिकार शस्त्र धारण कर सकने का है। यह अधिकार भयकर होते हुए भी अल्पसख्यको की नागरिक समानता के लोकतन्त्रीय लक्ष्य का सूचक है। पहले सेना मे नीग्रो और अन्य अल्पसख्यक लोगो को साधारणतया ऐसे काम दिये जाते थे जिनमे लडना नही पडता था, या उनकी टुकडिया अलग बना दी जाती थी। अफसरो के स्कूलो म तो नीग्रो लोगो को यदा-कदा ही भरती किया जाता था। हाल के वर्षो मे सभी सेनाओ को आज्ञा दी गई है कि वे जातीय भेद-भाव का यथासम्भव शीघ्र अन्त कर दें।

सन् १६४५ मे फ्रान्स के युद्ध मे जब गोरे सैनिको को अपनी टुकडियो मे नीग्रो लोगो को भी सम्मिलित करने की आज्ञा दी गयी तब उनमे से बहुतो को अच्छा नही लगा। परन्तु उनको लडता देखकर प्राय सभी गोरे सैनिक, दक्षिणी तक भी, उन्हे चाहने और उनका सम्मान करने लगे। सन् १६५३ मे रग के भेद-भाव के बिना नीग्रो लोगो को सैनिक टुकडियो मे शामिल कर लेने का परिणाम इतना सन्तोषजनक निकला कि यह अब अपने ही वेग से आगे बढ रहा है। अब सेनाओ मे रग के भेद की सर्वथा समाप्ति सम्भव हो गयी है।

कई परिस्थितियाँ ऐसी होती हैं जिनमे एक बार पृथक्ता का अन्त कर देने से रंग पक्षपात स्वयमेव शिथिल हो जाता है—उदाहरणार्थ, गोरे लोगो के नाटक घरो और जलपान गृहो मे नीग्रो लोगो का प्रवेश होने पर अब उनसे घृणा नही की जाती। अनुभव से यह भी देखा गया है कि कारखानो मे नीग्रो मजदूरो को गोरे मजदूरो के साथ काम पर लगाया जा सकता है। अब इसके कारण उतना झगडा नहा हाता जितना पहले हो जाया करता था।

यह देखकर कि एक बार पृथक्ता की समाप्ति कर देने पर रंग-पक्षपात आप ही दूर होने लगता है और उसके कारण मार-पीट नही होती, उन लोगो का उत्साह बढ गया है जो पृथक्ता के विरुद्ध कानून बनवाना चाहते हैं। उनका तर्क यह है कि बहुत-सी परिस्थितियो मे पृथक्ता की बाध्यतापूर्ण समाप्ति के सामने लाग सिर

भुका देंगे, परन्तु यदि हालात को यों ही चलने दिया गया तो वर्तमान रिवाजों का न जाने कब तक अन्त न होगा।

सन् १६४१ में राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने एक "फेयर-एम्प्लायमेण्ट-प्रेक्टिस-कमिटी" अर्थात नौकरी देने में पक्षपात न करने का रिवाज डालने वाली कमिटी नियुक्त की थी कि वह सरकारी नौकरियों और युद्ध का माल बनाने वाले कारखानों में समानता की प्रथा चालू करे। इस कमिटी ने देखा था कि उसके सामने जो मामले आते थे उनमें पांच में से चार का सम्बन्ध नीग्रो लोगों से होता था। उन्हें या तो नौकरी दी ही नहीं जाती थी और या गोरों की अपेक्षा कम वेतन लेने के लिए विवश किया जाता था। आठ प्रतिशत शिकायतों का सम्बन्ध धार्मिक पक्षपात से होता था। इनमें भी यहूदियों की शिकायतें सबसे अधिक होती थीं। सरकारी एजन्सियां, व्यापारिक संस्थाएं और मजदूर यूनियनें आदि सभी अल्पमतों के साथ असमान बर्ताव करने की अपराधी थीं। युद्ध-काल में जबतक राष्ट्रपति रूजवेल्ट की यह कमिटी काम करती रही तबतक नौकरियां देने में असमानता का बर्ताव खासा कम हो गया था। मजदूरों की कमी के कारण भी इसमें बहुतेरी कमी हो गयी थी।

कई राज्यों में भी "नौकरी देने में पक्षपात न करने के कानून बनाये" गये हैं। जिन राज्यों में इस प्रकार के कानून बन सकते हैं उनका लोकमत भी समानता का पक्षपाती है, और वहां कानून मालिकों से अल्पमतों को काम दिलवाने में सफल हो जाता है। परन्तु सभी राज्यों में असमानता दूर करने के लिए संघीय कानून बनवाने के प्रयत्नों को सेनेट में सफल नहीं होने दिया गया।

कई राज्यों में भी शिक्षण-संस्थाओं तथा सार्वजनिक नौकरियों में नीग्रो लोगों को गोरों से पृथक् ही रखने का नियम है। सन् १८६६ में सर्वोच्च न्यायालय ने निर्णय दिया था कि यदि राज्य नीग्रो लोगों के लिए "पृथक् परन्तु समान" सेवा का प्रबन्ध कर देते हैं तो उनके पृथक्ता-सम्बन्धी कानून का चौदहवें संशोधन से कोई विरोध नहीं है। जस्टिस हार्लेन ने उस समय भी अपना पृथक् निर्णय लिखकर इस निर्णय का विरोध किया था।

परन्तु सत्य यह है कि नीग्रो लोगो के लिए जिन सरकारी स्कूलो और अन्य सेवाओ का पृथक् प्रबन्ध किया जाता है, वे सामान और सेवा के अच्छेपन आदि की दृष्टि मे गोरो के स्कूलो आदि के समान कभी नही होते। इसके अतिरिक्त, जैसा कि जस्टिस हार्लेन ने कहा था, बलात् पृथक्ता के कारण, "हमारे बहुत-से साथी नागरिको पर, उनके कानून की दृष्टि से हमारे समान होते हुए भी, दासता और हीनता का कलक लग जाता है। 'समान' व्यवस्था के झिल्लीदार परदे से कोई भी धोखे मे नही आ सकता।"

सन् १८९६ का यह निर्णय कोई चालीस वर्ष तक कायम रहा। इसके बाद न्यायालय धीरे-धीरे इस सत्य की ओर संकेत करने लगा कि दोनो की सेवा मे समानता नही है और जबतक पृथक्ता विद्यमान है तबतक अधिकतर सेवाओं मे समानता लायी भी नही जा सकती। धीरे-धीरे कुछेक दक्षिणी कालिजो मे नीग्रो विद्यार्थी लिये जाने लगे। इसके कारण अनेक थे। न्यायालय की दृढ़ता का बढते जाना, केवल नीग्रो लोगो के लिए प्रथम श्रेणी की युनिवर्सिटियाँ खोलने मे व्यय का बहुत होना, और दक्षिण मे, विशेषत कालिजो के विद्यार्थियो मे सहिष्णुता के भावो का विकसित होते जाना भी इन कारणो मे सम्मिलित थे। इस परिवर्तन के पश्चात् दंगे, झगडे और अन्य अप्रिय प्रतिक्रियाएं न होने से आशा होती है कि यह धीरे-धीरे फैलता जायगा।

सरकारी क्षेत्र से सर्वथा पृथक, कई बडी-बडी पेशा-वर-बेसबाल 'टीमो' की कार्रवाइयो से भी सारी जाति की अवस्था सुधारने मे बडी सहायता मिली। है वे नीग्रो खिलाडियो को भी लेने लगी हैं। बेसबाल ऐसा खेल है कि करोडो अमेरिकी उसे राष्ट्रीय झण्डे या संविधान के समान पवित्र मानते हैं। उसका उनके दैनिक जीवन और रुचियों से बहुत घना सम्बन्ध है। किसी को दुनिया के खेलो की 'सीरीज' मे खेलने देना उसे पूरा-पूरा अमेरिकी नागरिक मान लेने की निशानी है। "ब्रुकलिन डोजर्स" नामक प्रसिद्ध टीम का एक खिलाडी नीग्रो होने के कारण कई टीमो ने विद्रोह करने की धमकी दी थी। इन टीमो को 'बेसबाल लीग' के अध्यक्ष ने जिन शब्दो में उत्तर दिया उनसे प्रकट हो गया कि अब खिलाडियो मे समानता का

सिद्धान्त स्वीकृत किया जा चुका है। लीग के अध्यक्ष ने कहा था—"यह संयुक्त राज्य अमरिका है। यहां खेलने का जितना अधिकार तुमको है, उतना ही दूसरों को भी है।"

किसी भी नागरिक को अधिकार है कि वह अपने मानव या अमानव शत्रुओं से रक्षा पाने का शासन से दावा कर सकता है। परन्तु यह अधिकार और समान व्यवहार का अधिकार कई बार एक दूसरे से टकराने लगते हैं। विशेषत जब जनता पर बेरोजगारी, अज्ञान, गरीबी, और रोग आक्रमण करते हैं, तब पदारूढ़ बहुमत की अपेक्षा अल्पमत की ही सदा अधिक हानि होती है। परन्तु रोग और मृत्यु से भय तो सभी लोगों को लगता है, और प्रबल बहुमत वालों को भी बेरोजगारी का या आमदनी के नुकसान का डर होता ही है। बहुत बड़ी संख्या में लोग केवल मजदूरी के लिए काम करते हैं, और यदि वे जीवन का एक उचित मान सुरक्षित रखना चाहें तो उन्हें मजदूरी तय करने के अपने बल के संरक्षण के लिए कानूनी सहायता की आवश्यकता पड़ती है।

यूरोप और अमेरिका में कई शताब्दियों से मजदूरों की अवस्था शासनों की चिन्ता का विषय रही है। मध्यकाल में प्रवृत्ति यह थी कि शासनों का झुकाव बहुधा विद्रोही और उपद्रवी मजदूरों के विरुद्ध उच्चवर्गों की ही रक्षा करने का रहता था। उन्नीसवीं शताब्दी में इस प्रकार के मालिक मजदूरों के झगड़ों में हस्तक्षेप का एक प्रचलित रूप यह था कि शासन मजदूर यूनियनों को दबा दिया करता था। तब वे परम्परागत कानून के अनुसार षडयन्त्रकारियों का गिरोह समझी जाती थीं। आज कानून का भारी झुकाव मालिकों की मनमानी कार्रवाइयों और अनेक प्रकार की सामान्य आपत्तियों से मजदूरों की रक्षा करने का ही गया है।

सन् १९३३ के "नेशनल इण्डस्ट्रियल रिकवरी ऐक्ट" (राष्ट्र के उद्योगों को सम्भालने के कानून) ने मजदूरों को संगठित हो सकने के अधिकार की गारण्टी दी थी, और मालिकों को मजबूर किया था कि वे मजदूर-यूनियनों को, मजदूरों की शर्तें तय करने वाले एजण्ट के रूप में' मान्यता प्रदान करें। वेगनर ऐक्ट और टैफ्ट-हार्टले ऐक्ट ने क्रमश मजदूरों और मालिकों के साथ अधिकारों को और भी

निश्चित कर दिया है। इनमें से प्रथम ऐक्ट का झुकाव मजदूरो की ओर की और द्वितीय का मालिको की ओर को है। इन सब कानूनो का सार्वजनिक प्रयोजन ऐसे नियम बना देना है कि उन्हे न्यायालयो द्वारा लागू करवाया जा सके और मालिको और मजदूरो के सम्बन्ध उचित तथा न्यायपूर्ण रहे।

जब "उचित" और "न्याय-पूर्ण" शब्दो की परिभाषा की जाने लगती है, तब यहा भी राजनीति का दखल हो जाता है। पहले अत्याचार मजदूरो को सहना पडा करता था। उन्हे संगठित होने का अधिकार प्राप्त करने के लिये लडाइया करनी पडती थी—उनमे कभी-कभी खून तक बह जाता था। उनके नेता लडने वाले अधिक और समझौता करने वाले कम होते थे। धीरे-धीरे कानून उनके पक्ष मे हो गया। जब यूनियनो ने दिखला दिया कि मजदूर दलित नही हैं, तब दलितो के प्रति जनता की जो सहज सहानुभूति थी वह धीरे-धीरे लुप्त हो गयी। सन् १९४७ में राजनीतिक ज्वार भाटा के कारण कांग्रेस पर रिपब्लिकन पार्टी का नियन्त्रण हो गया और उसने मालिको के अधिकारो की रक्षा के लिए टैफ्ट-हार्टले ऐक्ट पास कर दिया। इस समय मजदूर यूनियनो के प्रतिनिधियो मे भी, 'पूंजीपतियों' या रिपब्लिकन पार्टी के विरुद्ध जमकर संघर्ष करने के लिए पर्याप्त एकता नही है। सन् १९५२ के चुनाव मे उन्होंने ही अपने मतो से रिपब्लिकन पार्टी को पदारूढ होने मे सहायता की थी। इन सबका सारांश यह है कि इस समय मजदूरो के अधिकार इतने पर्याप्त रूप से सुरक्षित है कि वे अन्य अनेक प्रश्नो पर अपना मत स्वतन्त्रता पूर्वक दे रहे हैं।

संयुक्त राज्य अमेरिका बहुत समय तक राष्ट्रीय सामाजिक-सुरक्षा की प्रणाली अपनाने मे अधिकतर सभ्य संसार से पीछे था। बहुत से राज्यो मे किसी न किसी प्रकार के सामाजिक-सुरक्षा के कानून बहुत समय पहले बन चुके थे। सन् १९३५ मे एतद्विषयक राष्ट्रीय कानून बन जाने के पश्चात् बुढापे और परिवार मे बचे हुए लोगो (सर्वाइवर्स) का बीमा कुछ बढा दिया गया है और उसके लाभ मजदूरो के अधिक प्रकार के वर्गों के लिए प्राप्य कर दिये गये हैं। बेरोजगारो के बीमे और विकलांगो तथा अन्धो को और आश्रित बालको को सहायता आदि अन्य लाभो का भी

धीरे-धीरे संघीय शासन और राज्यो द्वारा अधिकाधिक विस्तार किया जा रहा है। अब इस तथ्य को अधिकाधिक अनुभव किया जाने लगा है कि समाजिक-सुरक्षा के कारण बीमारी या बुढ़ापे मे और भारी बेरोजगारी फैल जाने पर भी जनता की क्रय-शक्ति बनी रहने में सहायता मिलती है। व्यापारियों, व्यवसाइयो और श्रमिको सबको ही इन आर्थिक लाभो का अनुभव हो जाने के कारण सामाजिक-सुरक्षा की योजनाओ का समर्थन दोनो राजनीतिक पार्टिया व्यापक रूप मे करने लगी हैं।

अमेरिकी जनता अपने शासन से विविध स्तरो पर विविध प्रकार के जिन संरक्षणों की माग करती है उनके कारण जो राजनीतिक विवाद छिड़ जाते हैं, वे भी एक अलग नमूना हैं। 'कन्जर्वेटिव' या अपरिवर्तनवादी लोग कहते हैं कि सेवा का प्रत्येक नया सुझाव समाजवादी है, इससे कर-दाता के धन का अपव्यय होगा, और जनता जो कुछ चाहती है, उस सबकी पूर्ति निजी उद्योग से हो सकती है। इसके विपरीत, 'लिबरल' अर्थात् उदार विचारो के नवीन लोग कहते हैं कि जिस वस्तु की आवश्यकता है उसकी पूर्ति निजी उद्योगो से न तो हो रही है और न कई कारणों से हो सकेगी और जिस सेवा का सुझाव दिया गया है, उसके करने मे कई प्रकार के अपव्यय का अन्त हो कर वस्तुतः कर-दाता के धन की बचत ही होगी।

नि:सन्देह प्रत्येक सुझाव की यथार्थता भिन्न-भिन्न होती है और उसका निर्णय तत्काल तो राजनीतिक तर्कों से हो जाता है, परन्तु पीछे यदि नयी परिस्थितियो के कारण पहले निर्णय पर सन्देह हो जाय तो उस पर पुनर्विचार कर लिया जाता है। सब मिलाकर प्रवृत्ति की दिशा यह है कि जिन आपत्तियो से जनता की रक्षा, उसकी सम्मति में, शासन की शक्ति से की जा सके, उन में शासन की सेवाओं का अधिकाधिक उपयोग किया जाय।

संयुक्त राष्ट्र संघ का सदस्य बनते समय अमेरिकी जनता ने उसके सदस्यों का एक कर्तव्य यह भी समझा था कि मनुष्य-मात्र के अधिकारो और स्वतन्त्रताओ की रक्षा करने मे संयुक्त राष्ट्रो की सहायता की जाय। संघ के एक विशेष कमीशन ने "मानव अधिकारों का एक घोषणा पत्र" तैयार किया था और संयुक्त राष्ट्रों की असेम्बली (महासभा) ने, सोवियट यूनियन तथा उसके पिछलग्गुओं के विरोध के

बावजूद, उसे स्वीकार कर लिया था। उक्त कमीशन की अध्यक्षा तथा इसमें अमेरिका की प्रतिनिधि श्रीमती ऐलिनर डी० रूजवेल्ट थीं।

"मानव अधिकारों का घोषणापत्र" अमेरिकी संविधान के 'बिल-ऑव राइट्स' (अधिकार-सूची) के सदृश आगे है। इसका प्रधान कारण यह है कि हिटलर और सोवियत यूनियन ने कई प्रकार के घोर अत्याचार को जन्म दे दिया है। उदाहरणार्थ, 'जेनोसाइड' या जातिनाश अर्थात् किसी जाति, कबीले या धार्मिक गण को नष्ट कर देने के लिए सरकार की ओर से कार्रवाई का किया जाना एक जघन्य अपराध था उसे तत्कालीन अधिकारियों ने बीसवीं शताब्दी में पुनरुज्जीवित कर दिया। इसलिए इस पर संयुक्त राष्ट्र संघ में विशेष ध्यान दिया गया।

"मानव अधिकारों का घोषणापत्र" तैयार करने के अतिरिक्त, उक्त कमीशन से एक संधि के रूप में एक प्रतिज्ञापत्र को तैयार करने के लिए भी कहा गया था, जो प्रत्येक सदस्य-राष्ट्र की स्वीकृति के लिए दिया जाने वाला था। मूल प्रस्ताव में सभी प्रकार के अधिकार सम्मिलित किये जाने वाले थे, केवल अन्याय और अत्याचार से रक्षा पाने के नहीं, अपितु बेरोजगारी जैसी बुराइयों से रक्षा पाने के भी। अमेरिका चाहता था कि प्रतिज्ञापत्र दो किये जायें। प्रथम प्रतिज्ञापत्र में तो हमारे 'बिल-ऑव-राइट्स' सरीखी ऐसी जिम्मेदारियाँ रक्खी जायें, जिनका पालन किसी न्यायालय द्वारा करवाया जा सके। द्वितीय में ऐसी जिम्मेदारियाँ हों, जिन्हें पूरा करने के लिए शासन, गरीबी और बेकारी जैसी बुराइयों से संघर्ष करने की प्रतिज्ञा करें, परन्तु जिनका निश्चित कोई एक प्रतिकार नहीं हो सकता। इस दूसरे प्रकार के "अधिकार" की रक्षा न्यायालय की शरण लेकर नहीं, प्रत्युत राजनीतिक कार्रवाई द्वारा ही की जा सकती है; अर्थात् यह देखकर कि पदारूढ़ पार्टी ने निजी और सार्वजनिक जिम्मेदारियों में उचित सन्तुलन का विचार रखते हुए आमदनियों के जनता के निर्णयानुसार उसे दण्ड या बढ़ावा देकर जनता की रक्षा करने में सफलता प्राप्त की या नहीं।

इनमें से कोई भी प्रतिज्ञापत्र स्वीकृति के लिए संयुक्त राज्य अमेरिका की सीनेट के सामने आने की सम्भावना नहीं है। इसका प्रधान कारण यह है कि अमेरिकी

कानून में सम्मिलित सब अधिकारों को संयुक्त राष्ट्र संघ के अन्य सदस्य-राष्ट्र प्रतिज्ञापत्र में सम्मिलित करने के लिए सहमत नहीं हुए हैं। यद्यपि कानून के जानकारों का प्रबल मत यह है कि अमरीकी संविधान ने अमरीकी नागरिकों को जिन अधिकारों की गारण्टी दे दी है उन्हें किसी भी संधि द्वारा कम नहीं किया जा सकता, परन्तु इस मत को सब लोग नहीं मानते। सेनेट अपने ऊपर यह जोखिम लेने के लिए तैयार नहीं जान पड़ता।

अब संयुक्त राष्ट्र संघ में संयुक्त राज्य अमरीका की स्थिति यह है कि हम तो सब राष्ट्रों में व्यक्तियों के अधिकारों की कानूनी रक्षा का विकास और विस्तार करने के पक्ष में हैं, परन्तु हमें कहीं भी पूर्णता तक पहुँचने की आशा नहीं है। हमारे अपने देश में, अपने कानूनों और रीति रिवाजों में, हमें अनेक त्रुटियाँ दिखाई देती हैं, और उन्हें हम स्वीकार भी करते हैं, परन्तु साथ ही हम अधिक न्याय और समानता की दिशा में प्रगति भी कर रहे हैं। हम वैयक्तिक अधिकारों को जितना-जितना समझते जाते हैं उतना-उतना हमारी राजनीतिक प्रणालियाँ उनके सिद्धान्त निश्चित करती जाती हैं। इससे अधिक अच्छे मार्ग का ज्ञान हमें नहीं है।

## अध्याय १२

# शासन का अमेरिकी दर्शन

संविधान के अनुसार संयुक्त राज्य अमेरिका प्रत्येक राज्य को "शासन के गणतन्त्री रूप" की गारण्टी देता है। परन्तु संविधान के इस अनुच्छेद का हवाला देने की आवश्यकता कभी नही पडी, क्योकि इस देश मे राजनीतिक विवादो का विषय प्राय शासन का रूप नही, अपितु यह रहा है कि शासन किस प्रकार का काम अधिक भलीभाति कर सकता है। चरमपन्थी लोग शायद आशा तो यह करते थे कि वे इस देश मे भी तानाशाही कायम कर सकेंगे, परन्तु स्थानीय सस्थाओ मे भी शायद ही कभी वे सत्ता प्राप्त कर सके हो। सन् १८७४ में रोड् आइलैण्ड मे विद्रोह हो गया था, और राष्ट्रपति ने उस पक्ष की सहायता की थी जिसे वह न्यायपूर्ण समझता था। सन् १८७४ मे स्त्रियो को मताधिकार देने के पक्षपातियो ने यह सिद्ध करने का असफल प्रयत्न किया था कि संविधान के अनुसार जिस राज्य का शासन स्त्रियो को मताधिकार देने से इनकार करे वह "गणतन्त्रीय नही है"। साधारणतया न्यायालय इस प्रश्न का निर्णय करने से इनकार करते रहे हैं कि शासन का कौन-सा रूप गणतन्त्रीय है, वे इस प्रश्न को "राजनीतिक" बतलाते रहे हैं।

इसका परिणाम यह हुआ है कि इस प्रकार के प्रश्नो का निर्णय कि सन् १९३० मे आरम्भ ल्युइजियाना मे ह्यू लाग ने अपने नियन्त्रण मे जैसा शासन स्थापित कर लिया था वह तानाशाही था या नही और यह कि शेष सयुक्त राज्य अमेरिका को इसमे हस्तक्षेप करना चाहिये या नही, राजनीतिक विवाद के द्वारा अमेरिकी जनता

हो करती है, न्यायालय नहीं । यदि शेष संयुक्त राज्य अमेरिका कभी यह निर्णय कर दें कि अमुक राज्य को अपने हाथ में ले लेना चाहिए, तो उस स्थिति को शासन के गणतन्त्रीय रूप का भंग हो जाना कहा जा सकेगा, परन्तु सर्वोच्च न्यायालय कुछ आपत्ति नहीं करेगा।

परन्तु साधारणतया शासन के जिन रूपों को अमेरिकी जनता "गणतन्त्रीय" मानती है उनकी सदा रक्षा की जाती है, उनकी भावना का भ्रष्टाचारी राजनीतिज्ञों ने भले ही उल्लंघन क्या न कर दिया हो। प्रत्येक राज्य किसी ऐसे संविधान द्वारा प्रदत्त अधिकार के बल पर कार्य करता है जिसमें संशोधन जनता हिंसामय क्रान्ति के बिना ही कर सकती है। इस शासन में कानूनों की रचना जनता के प्रति उत्तरदायी प्रतिनिधि ही करते हैं। व्यक्तियों के जिन अधिकारों को जनता कानून के द्वारा रक्षणीय मानती है उन सब के रूप की रक्षा की जाती है, व्यवहार में कानून का पालन भले ही भ्रष्टाचारपूर्ण क्यों न हो गया हो। शासन के अत्याचारों से बचने के लिए नागरिक न्यायालयों में अपील कर सकते हैं। अमेरिकी जनता जिसे गणतन्त्रीय शासन का रूप कहती है, उसकी यह सब विशेषताएं हैं। सम्भव है कि उनका पालन सदा लिखित शब्द के अनुसार न किया जाता हो, परन्तु सत्ता तो मानी ही जाती है।

बीसवीं शताब्दी में हिटलर और सोवियट यूनियन को देख लेने के पश्चात्, लोग शासन के उन रूपों तक को अत्यन्त मूल्यवान मानने लगे हैं जिनका स्वतन्त्र लोग आदर करते हैं। सम्भव है कि सोवियट यूनियन सरीखे राष्ट्र में भी संविधान उन सब अधिकारों की गारण्टी करता हो जिन्हें अमेरिकी अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए आवश्यक मानते हैं, परन्तु यदि व्यवहार में शासन सूत्रों का संचालन करने वालों को चुनौती देने के लिए जनता के पास राजनीतिक विरोध संगठित करने के कोई भी साधन न हों तो वह गारण्टी व्यर्थ है। कानून के जिन सब रूपों से मिलकर "शासन के गणतन्त्रीय रूप" का निर्माण होता है उनका भ्रष्टाचारी होना भी सम्भव है, परन्तु यदि जनता को राजनीतिक संगठन करने का अधिकार हो तो वह इच्छा होने पर भ्रष्टाचार का अन्त कर सकती है और अपनी

परम्परागत स्वतन्त्रता को पुन प्राप्त कर सकती है। यदि किसी स्वतन्त्र देश मे कानून कहता हो कि जब मतदाता मत दे रहा हो तब उसे न तो कोई देख सकता है और न डरा धमका सकता है, और उस कानून के रूप का सब लोग आदर करते हैं, तो जनता अपने विधान मण्डल और राष्ट्रपति का निर्वाचन करके उनके द्वारा उन अधिकारो की रक्षा करवा सकती है जिन्हे कि वह आवश्यक समझती है।

जब जनता को शासन का ऐसा रूप प्राप्त हो जाता है जिसमे वह सर्व-प्रभुत्व-सम्पन्नता से आचरण कर सके तब मार्ग का निश्चय उनके परस्पर विरोधी स्वार्थों और उसके दर्शन अर्थात् निर्णय करने के सिद्धान्तों के अनुसार होता रहता है। अमेरिकी जनता का राजनीतिक दर्शन दुर्बोध तो है ही, कई दृष्टियो से परस्पर-विरोधी भी है।

शासन के अमेरिकी सिद्धान्त ब्रिटिश और अमेरिकी जनता के उन सघर्षों के लम्बे इतिहास से प्रभावित हैं जो उन्होने शासन के अत्याचारो के विरुद्ध किये थे। इनमे प्रथम उल्लेखनीय सघर्ष, जो इतिहास की एक विशेष घटना बन चुका है सन् १२१५ मे "बैरनो" अर्थात् अग्रेज ठिकानेदारो ने शाह जान के विरुद्ध किया था, उसके परिणाम स्वरूप प्रसिद्ध "मैग्ना चार्टा" अर्थात् उस समय के ठिकानो के नियमो की लिखित गारण्टी का 'बडा कागज' (अधिकार पत्र) दिया गया था। "मैग्ना चार्टा" का सम्बन्ध निम्न जनता की अपेक्षा 'बैरनो' के साथ ही अधिक था। परन्तु जनता ने शाह के विरुद्ध 'बैरनो' का साथ दिया था, क्योकि उन्होने कहा था कि जनता मे व्याप्त कष्टो का कारण शाह की फजूल खर्चिया और जनता की रक्षा करने मे भ्रष्टाचारी अधिकारियो की लापरवाही है।

शासन की निम्न और उच्च शक्तिया मे इसी प्रकार के सम्बन्धो का उदाहरण अमेरिकी क्रान्ति के समय पुन दिखाई पडा था। तब अधिकतर जनता ने शाह के शासन के विरुद्ध औपनिवेशिक शासनो का साथ दिया था। एक बार पुन लोगो ने अनुभव किया था कि हमारे कष्टो का कारण शाह द्वारा कानून का दुरुपयोग है

जब औपनिवेशिक विधान मण्डलों और उनके उत्तराधिकारी राज्य शासनों को उन्होंने अपने अधिकारों का रक्षक और समर्थक समझा था।

"मैग्ना कार्टा" से लेकर श्रमिकों को सम्मिलित समझौता करने के अधिकार की गारण्टी देने वाले संघीय कानून तक, अमेरिकी परम्परा के मूल में स्वतन्त्रता और समानता के जितने भी विचार निहित हैं उनका विकास, न्यून या अधिक अधिकारों के सम्पन्न लोगों ने ही किया था, गरीबों की बस्तियों में से उठे हुए क्रान्तिकारियों ने नहीं। इतिहास के प्रारम्भिक काल में इंगलैण्ड की साधारण जनता कभी-कभी अपने से "ऊपर वालों" के विरुद्ध भी विद्रोह कर देती थी, जैसा उसने सन् १३८१ में 'वैट टाइलर का विद्रोह' नाम से किया था। परन्तु बुद्धिमान और संयमी नेता के अभाव में वह अभीष्ट सुधार प्राप्त करने में सफल नहीं हो सकी थी। जनतन्त्रीय समाज की ओर अधिकाधिक प्रगति का नियम प्रायः यही रहा है कि शक्तिसम्पन्न और प्रभावशाली लोग अपने से अधिक शक्तिसम्पन्न लोगों का और शासकों का विरोध करते रहे। इस इतिहास के फल स्वरूप अमेरिकी सिद्धान्तों का रूप अत्यन्त मध्य-वर्गीय है। उदाहरणार्थ, अमेरिका के संगठित श्रमिक शायद ही कभी ऐसा कोई काम-काज करते हों जिससे यह प्रकट हो कि वे अपने आपको "प्रालेटेरियट" अर्थात् निरा मजदूर समझते हैं। वे अपने यूनियन का साथ देते हैं, परन्तु कम्यूनिस्ट तानाशाही की स्थापना का साधन बनकर नहीं। वे यूनियनों का उपयोग मध्य-वर्गीय दर्जे के रहन सहन का अपना अधिकार सुरक्षित करने तथा उसे विस्तृत करने के लिए और अमेरिकी समाज में मध्य-वर्गीयों का जैसा आदर होता है वैसा ही अपने लिए भी प्राप्त करने के लिए करते हैं।

इसलिए अमेरिकी परम्परा, संगठित और सम्मानित स्वार्थों में संघर्षों की एक लम्बी श्रृंखला के रूप में चली आ रही है। अमरिकी क्रान्ति इन संघर्षों का ही एक नमूना था। उसमें शाह का साथ वे बड़े-बड़े व्यापारी और इंगलैण्ड के कारखाना-मालिक दे रहे थे, जो व्यापार में अमेरिकियों के मुकाबले से बचना नहीं चाहते थे। उनका स्वार्थ, शाह और पार्लमेण्ट द्वारा प्रदत्त कानूनी अधिकार के आधीन पहले से संगठित थे। उनके विपरीत, अमेरिका के पक्ष में अमेरिकी व्यापारी, तम्बाकू

लेनेवाले किसान, भूमिपति, और अन्य ऐसे मजदूर और किसान थे जिनको समझा-बुझाकर यह विश्वास करवा दिया गया था कि व्यापार पर लगायी गयी ब्रिटिश पाबन्दियों से और टैक्सों से नुकसान होगा। अमेरिकी लोग अपने राज्यों के तथा कुछ शिथिल रूप में महाद्वीप की कांग्रेस के नेतृत्व में संगठित थे। जो प्रभावशाली अमेरिकी लोग शाह का साथ दे रहे थे वे बाद को बाहर निकाल दिये गये। जो नये राष्ट्र की स्थापना करने और उसके इतिहास की रचना करने के लिए पीछे रह गये उनका दृढ़ विश्वास था कि केन्द्रीय शासन के अत्याचारी हो जाने की सम्भावना रहती है, और उसके विपरीत स्थानीय शासन केन्द्रीय शासन का विरोध करने के लिए एक अच्छा और संगठित साधन होता है। इस मामले में वे अपने उन पूर्वजों से मिलते-जुलते थे जिन्होंने कि शाह जॉन के विरुद्ध 'बैरनों' का साथ दिया था।

केन्द्रीय शासन से यह भय और उसकी नापसन्दी ही टामस जेफरसन के अनुयायियों का प्रथम सिद्धान्त था। जेफ़रसनी जनतन्त्र का आदर्श-वाक्य था—"वही शासन सर्वोत्तम है जो न्यूनतम शासन करता है।"

दूसरी ओर, केन्द्रीय शासन कभी-कभी जनता के अधिकारों को पद-दलित भले ही करने लगे और स्थानीय शासन को उसका विरोध भले ही करना पड़े, परन्तु जनता की कुछ आवश्यकतायें ऐसी होती हैं जो केन्द्रीय शासन द्वारा ही पूरी हो सकती हैं। क्रान्ति के तुरन्त बाद ही देश में ऐसी परिस्थिति उत्पन्न हो गयी थी जिसमें केन्द्रीय शासन के विरोध की भावना गौण पड़ गयी थी। व्यापारियों, महाजनों और सार्वजनिक कार्यकर्त्ताओं को प्रत्यक्ष दिखलाई पड़ने लगा था कि व्यापार का ह्रास हो रहा है और देश की रक्षा-व्यवस्था निर्बल पड़ती जा रही है। इन लोगों का नेता ऐलेक्जण्डर हैमिल्टन था। हैमिल्टनी अथवा संघ पक्षपाती लोग यद्यपि इंगलैण्ड के केन्द्रीय शासन के कट्टर विरोधी थे, पर वे व्यावहारिक कारणों से विवश होकर संयुक्त राज्य अमेरिका में दृढ़ केन्द्रीय शासन की स्थापना का समर्थन करने लगे थे। जब राज्यों द्वारा इस पर स्वीकृति की छाप लगाने का अवसर आया तब जेफ़रसन तक ने अनिच्छापूर्वक संविधान के विचार का साथ दिया था।

आज तक भी अमेरिकी लोग, जब जो राजनीतिक प्रयोजन जिसके मन मे हो उसके लिए लाभदायक या हानिकारक होने के अनुसार, हेमिल्टन और जेफर्सन के सिद्धान्तो के मध्य मे कभी इधर को तो कभी उधर को उछलते-कूदते रहते हैं।

इस परिवर्तन का अत्यन्त आकर्षक और मनोरंजक उदाहरण डिमोक्रेटिक पार्टी की सन् १६३३ से सन् १६५३ तक की नीतिया हैं। श्री रूजवेल्ट और श्री ट्रूमन, दोनो ने, इस काल में संघीय शासन के अधिकार और कार्य बहुत बढा दिये। यह नीति विशुद्ध हमिल्टनी है, यद्यपि डिमोक्रेटिक पार्टी जेफरसन की उत्तराधिकारी है और अब तक उसके ही बहुत-से विचारो की दुहाई देती है। उत्तराधिकारी के इस विचित्र प्रकार परिवर्तित होने का कारण यह है कि अब तक शासनाधिकार दूसरे के हाथ में था। सन् १६३३ मे लोग, सन् १७८६-१७८७ के कठिन समय की भांति, बडे पैमाने पर भारी मन्दी का शिकार हो रहे थे। जिस प्रकार सन् १७८७ मे हेमिल्टन ने सोचा था उसी प्रकार अब डिमोक्रेटो ने सोचा की जनता की आवश्यकता पूरी करने का सर्वोत्तम उपाय संघीय अधिकार का प्रयोग है। इसलिए सिद्धान्तो को वस्तुस्थिति के अनुसार तोड-मोड लेना पडा।

शासन के विषय में हेमिल्टनी और जेफरसनी दृष्टिकोणो के अतिरिक्त, अमेरिकी राजनीतिक दर्शन, शासन के प्रयोजन और प्रकार के सम्बन्ध मे अधिक सूक्ष्म कल्पनाओ से भी प्रभावित हुआ है। प्रस्तुत विचार के लिए ऐसी चार प्रमुख कल्पनाओं की चर्चा की जा सकती है। इनमें से दो 'अनार्किज्म' और 'सोशलिज्म' तो चरम कल्पनाएं हैं, और शेष दो की विचारधारा उनकी मध्य-वर्ती है। 'अनार्किज्म' का अभिप्राय है किसी भी शासन का न होना अर्थात् अराजकता और 'सोशलिज्म' का आदर्श है सब कुछ शासन के ही सुपुर्द कर देना अर्थात समाजवाद। अमेरिकी लोगो के प्राय. सभी राजनीतिक और आर्थिक विचारो पर मध्य-वर्ती विचार-धाराओ का ही प्रभाव पडा है, चरम कल्पनाओ का नहीं। मध्यवर्ती विचारधाराओ में से एक का नाम है 'इण्डिविजुअलिज्म' (व्यक्तिवाद),

अर्थात् व्यक्तियों के अधिकारों को प्रधानता देना । दूसरी विचारधारा का अमेरिकी भाषा में निश्चित नाम तो कुछ नहीं है, परन्तु उसका सार यह है कि देश की समृद्धि में शासन को सहायता करनी चाहिये । इसे "इण्टरवेन्शनिज्म" अथवा हस्तक्षेप का नाम दिया जा सकता है ।

'अनार्किज्म' (अराजकतावाद) और 'सोशलिज्म' (समाजवाद) का अमेरिकी राजनीति पर प्रायः कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा । अराजकतावाद एक चरम कल्पना है कि शासन सदा अत्याचारी ही होता है, और इस कारण उसका अन्त कर देना चाहिए । दूसरी चरम कल्पना 'सोशलिज्म' ( समाजवाद ) में यह दावा किया जाता है कि व्यापार और व्यवसाय पर निजी स्वामित्व के कारण ही जनता का पीड़न होता है, और जो व्यापार और व्यवसाय कुछ भी श्रमिक रखने के लायक बढ़े हों उन पर राज्य का स्वामित्व हो जाना चाहिए । इन दोनों कल्पनाओं से अमेरिकी जनता प्रभावित नहीं हुई । अपनी मध्य-वर्गीय प्रवृत्तियों के कारण अधिकतर अमेरिकी लोग चरम और अतिसरल कल्पनाओं से आकृष्ट नहीं हुए हैं । शायद हेमिल्टन और जेफरसन के मध्य में झूलते रहने के लम्बे इतिहास ने भी औसत अमेरिकियों को किन्हीं काल्पनिक युक्तिवादों के मध्य के समीप सर्वाधिक सुरक्षा का अनुभव करने का अभ्यासी बना दिया है । कम से कम, शासन के उचित उपयोग की चर्चा छिड़ने पर राजनीतिक विवाद में जिन दो कल्पनाओं का बार-बार जिक्र होता है वे 'इण्डिविजुअलिज्म' ( व्यक्तिवाद ) और 'इण्टरवेन्शनिज्म' ( शासन का हस्तक्षेपवाद ) ही हैं । इनमें से प्रथम तो जेफरसनी विचारों से मिलती-जुलती है और द्वितीय का आविर्भाव अमेरिकी राजनीति में पहले-पहल हेमिल्टन के कारण हुआ था ।

'इण्डिविजुअलिज्म' ( व्यक्तिवाद ) कल्पना के अनुसार, शासन का एक मात्र उचित उपयोग आन्तरिक व्यवस्था की रक्षा और बाह्य आक्रमणों से राष्ट्र की रक्षा करना है । इस कल्पना को "लैसे-फेर"—"लोगों को अपनी व्यवस्था आप करने दो"—भी कहा जाता है । इसका आधार यह विश्वास है कि अपराधियों के अतिरिक्त अन्य लोगों को यदि अपने स्वार्थों की चिन्ता आप करने के लिए स्वतन्त्र छोड़ दिया जायगा तो वे अपनी समस्याओं का हल स्वयमेव यथासम्भव उत्तम

उपाय से कर लेंगे। उनकी निर्णायक बुद्धि जैसा कहेगी उसके अनुसार वे परस्पर सहयोग या प्रतिस्पर्धा या अपने विरोधियों का विरोध करने लगेंगे। इसके समर्थकों का दावा है कि मानवता के मामलों को कोई "अदृश्य हाथ" स्वयमेव उनके तर्कसंगत मार्ग की ओर ले जाता और सुविधाओं और बाधाओं का उचित विभाजन कर देता है। जो कुछेक उदाहरण आकस्मिक कष्ट या कठनाइयों के रह जाते हैं उनका प्रतिकार निजी परोपकारियों द्वारा किया जा सकता है।

'इण्डिविजुअलिज्म' ( व्यक्तिवाद ) की कल्पना के अनुसार यदि किसी काम में कुछ गडबड हो जाय, जैसे किसी वस्तो के निर्वाह का एक मात्र साधन कोई मिल दिवालिया हो जाय, तो वह भी आर्थिक नियम के प्रयोग का ही उदाहरण है। यदि देश मे मन्दी आ जाय तो वह भी आर्थिक नियम के पालन का फल है। प्राकृतिक नियमो में हस्तक्षेप करने के प्रयत्न को भयावह और नासमझी का काम माना जाता है। वे डरते हैं कि प्रकृति के नियमो में हस्तक्षेप करने से हालात और भी बिगड जायंगी। सन् १६२६ में जो भारी मन्दी शुरू हुई थी उसके समय राजनीतिक विवादो मे ये सब युक्तियाँ पेश की गयी थीं।

इसकी विरोधी कल्पना का निश्चित नाम कुछ नही है। इसका कारण शायद यह है कि उसे सदा अपनी सफाई देते रहना पडता है। अमेरिकियो का स्वभाव हो ऐसा बन चुका है कि वे शासन से सहायता स्वीकार करते हुए लज्जा का अनुभव करते हैं। वे सुगमता से यह भी नही मानते कि ऐसे कोई सिद्धान्त हैं जिनसे इस प्रकार की सहायता का समर्थन किया जा सके। इसलिए जब कभी अमेरिकी लोग किसी ऐसे काम की सोचते हैं जिसे उनकी समझ के अनुसार शासन को करना चाहिए तब उनका प्राय यह विश्वास होता है कि "कुछ न कुछ नियम अवश्य होगा।" परन्तु इस विश्वास के बावजूद जब वे किसी अन्य की सहायता करने के लिए कर देने की बात मन मे लाते हैं तब वे अनुभव करने लगते हैं कि ऐसे कामो से अमेरिकी परम्परा बिगड जायगी।

'इण्टरवेन्शनिज्म' ( शासन का हस्तक्षेपवाद ) की कल्पना का सार यह है कि कुछ आवश्यकताएं ऐसी हैं जो पुलीस और सेना के वश की नही हैं और उन्हें

केवल शासन पूरा कर सकता है। सविधान लिखा ही न जाता यदि व्यापारी लोग निराशा के मारे यह अनुभव न करते कि विनाशक व्यापारिक प्रतिबन्धो तथा मुद्रा के मूल्य मे भयकर उतार-चढाव से बचने के लिए व्यापार को पूर्णतया नियन्त्रित किया जाना आवश्यक है। सविधान की रचना विशेषत इसी प्रयोजन से की गयी थी कि व्यापार, मुद्रा, डाक-व्यवस्था ओर 'पेटेण्टों' के कार्यालय नियन्त्रण करने और "सर्वसाधारण के हित" की अन्य व्यवस्थाएँ करने के लिए केन्द्रीय शासन को अधिक अधिकार दिये जा सकें।

इसी प्रकार 'फेडरलिस्टो' अर्थात् सघ-पक्षपातियो के इतिहास का आरम्भ ही ऐसी पार्टी के रूप मे हुआ जो कि शासन को पुलीस और विदेशी शत्रुओ से रक्षा के कामो से कुछ अधिक काम सौंपना चाहती थी—और आज की 'रिपब्लिकन' पार्टी के पूर्वज 'फेडरलिस्ट' ही थे। वे चाहते थे कि समृद्धि और उन्नति के लिए जो कुछ भी करना आवश्यक है उसकी सीमाओ मे रहते हुए शासन व्यापार को भी सहायता करे।

जिन सिद्धान्तो के कारण 'फेडरलिस्टो' ने सविधान का समर्थन किया था उन्ही के कारण उनके उत्तराधिकारियो ने उद्योग-व्यवसायो को प्रोत्साहन देने के लिए सरक्षक तट-करो का समर्थन किया। देश के इतिहास के आरम्भिक समय मे सघीय शासन के अधिकतर जनहितकारी कार्यो से, श्रमिको और किसानो की अपेक्षा व्यापारियो का प्रत्यक्ष लाभ अधिक हुआ था, इस कारण जेफरसन के अनुयायी शासन के कार्यो का विस्तार करने के विरोधी थे, वे "इण्डिविजुअलिज्म" ( व्यक्तिवाद ) कल्पना के ही पक्षपाती बने रहे। सन् १८२८ मे ऐण्ड्रू जैक्सन पश्चिमी सीमान्त की जनता का प्रतिनिधि बनकर 'ह्वाइट हाउस' मे पहुचा और उसने 'नेशनल बैंक' ( सरकारी बैंक ) का विरोध किया, क्योकि उसके कामो से सीमान्त के छोटे किसानो और व्यापारियो की अपेक्षा बडे नगरो के व्यापारियो को अधिक लाभ पहुच रहा था।

अत यह समझने के लिए कि कभी कोई पार्टी 'इण्डिविजुअलिज्म' की पक्षपाती और कभी कोई शासन की सेवाओ का विस्तार करने की पक्षपाती क्यो

बन जाती है, यह जान रखना चाहिए कि ऐसे परिदर्शन यह देखकर ही किये जाते हैं कि रोटी चुपड़ी हुई किधर से है। परन्तु जो कोई जो कुछ चाहता है उसे शासन में वही दिलवा कर दोनो पार्टियाँ समझौता क्यो नहीं कर लेती ? किसी हद तक व ऐसा करती भी हैं। प्रत्येक कांग्रेस सदस्य चाहता है कि शासन उनके जिले मे डाक-घर खुलवा दे या नदी का बांध बनवा दें, और यदि अन्य कांग्रेस-सदस्य उनके यहाँ के सार्वजनिक कार्यों के पक्ष मे मत दे दें तो वह उनके पक्ष में दे देता है। परन्तु सघीय शासन के काम का विस्तार करने के लिए इस प्रकार की सौदेबाजी की एक हद है। इसका एक अन्य कारण यह है कि जनता ऊँचे करो को पसन्द नही करती। एक अन्य कारण यह है कि बहुत सी सार्वजनिक सेवाओ के कारण किसी न किसी प्रकार का नियन्त्रण अथवा बड़े-बड़े निजी कार-बारो मे हस्तक्षेप होता है। उदाहरणार्थ, ट्रस्ट-विरोधी कानून लागू करने से साधारण व्यापारियो को भले ही लाभ हो, परन्तु कुछ कार्पोरेशनो को—प्राय अधिक प्रभावशालियो और शक्तिशालियो को—तो हानि ही होती है। स्वभावत जिनको हानि होती है वे "इण्डिविजुअलिज्म" की वकालत और सघीय कार्यों के विस्तार का विरोध करने लगते हैं।

यद्यपि पार्टियो की ओर से जो युक्तियां दी जाती हैं उनका आधार प्राय विशेष स्वार्थ होते हैं, परन्तु वे सर्वथा तर्क हीन या अर्थ हीन भी नही होती। अमेरिकी लोगो ने अनुभव से देखा है कि 'अनार्किज्म' ( अराजकतावाद ) और 'सोशलिज्म' ( समाजवाद ) की चरम कल्पनाओं के मध्य की द्विपक्षीय राजनीतिक कल्पना पर चलने से अधिक प्रगति तो होती ही है, अनेक सम्भावित आपत्तियो से रक्षा भी हो जाती है। वे सरकारी सहायता के लाभों और निजी प्रगति को दबाने की हानियो पर निरन्तर विवाद करके मध्य-मार्ग का अवलम्बन किये रहते हैं। तर्क की दृष्टि से ये दोनो ही युक्तियां अंशत. ठीक हैं, और जब मतदाता दोनो को तोलकर तुला को सीधा कर देते हैं तब उन्हें शासन की वही प्रणाली मिल जाती है जो कि अमेरिकी जनता को पसन्द है।

उत्तराधिकार का स्वरूप विकृत हो जाने के कारण जिस प्रकार 'फेडरलिस्टो'

( संघ-पक्षपातियो ) के उत्तराधिकारी "इण्डिविजुअलिज्म" के पक्षपाती बन गये और टामस जेफ़रसन के अनुगामी शासन के कार्यो के विस्तार का समर्थन करने लगे, वह प्रधानतया विज्ञान और उसके आविष्कारों का परिणाम था।

सन् १८०० मे अमेरिकी जनता मे बहु सख्या किसानो की थी, और शासन उनकी सेवा बहुत कम कर सकता था। शासन ने पश्चिमी प्रदेश खरीद कर या जीतकर उसमे उन्हे स्वतन्त्र छोड दिया था। उसने केवल इण्डियन कबीलो से उनकी रक्षा करने का काम अपने जिम्मे रक्खा था। इससे आगे सीमान्त मे अग्रणियो को अपना मार्ग स्वय निकालना पडा। जब वे स्वतन्त्र बस्तियों मे अपना संगठन करने लगे तब उनके शासक वे स्वाभाविक नेता बने जिनका निर्वाचन उन्होंने स्वयं किया था। वे अपने घोडो के चोरो को फांसी भी स्वय ही लगाते थे। इस प्रकार अपने शासन का निर्माण स्वय करना सामाजिक सगठन का, आदि काल के कबीलो की अपेक्षा भी, अच्छा उदाहरण था। अग्रणी लोग पहले से जानते थे कि शासन का अमेरिकी रूप क्या होगा, और जब कभी उन्हे आवश्यकता होती थी, वे सभा बुला कर उसमे इतिकर्तव्यता का निर्णय कर लेते थे।

इस प्रकार के अनुभवो से न केवल पश्चिम के अग्रणियो का, अपितु साधारणतया सारी ही अमेरिकी जनता का विश्वास ऐसा बन गया कि यदि शासन की आवश्यकता हो हो तो व्यवहार की अधिकतर समस्याए छोटे-छोटे स्थानीय शासनो से सुलझ सकती है।

इसके पश्चात् धीरे धीरे विज्ञान का प्रभाव बढने लगा। विशाल महाद्वीप के आर-पार चलने वाली रेलें बढती-बढती प्रशान्त महासागर तट तक पहुंच गयी। कैलिफोर्निया के लोग भाडो की अधिकता और अपने विरुद्ध अनुचित पक्षपात की शिकायत करने लगे। रेलें इतनी प्रभावशाली थी कि उनका नियन्त्रण किसी एक राज्य-शासन के वश की बात नही रहा। मिट्टी का तेल निकल आया और लोग मोमबत्तियां तथा ह्वेल का तेल जलाना छोड कर "पहाडी तेल" के लैम्प जलाने लगे। मिट्टी के तेल का व्यापार शीघ्र ही शीघ्र एकाधिकारी व्यापार में परिणत हो

गया और लोग इस परिणाम से प्रसन्न नहीं हुए। जनता रेलों का नियन्त्रण और एकाधिकार पूर्ण व्यापारों का दमन संघ द्वारा किया जाने की माग करने लगी।

बीसवीं शताब्दी में नवीन विकास और भी शीघ्र-शीघ्र होने लगे। उनमें से बहुयों के कारण इतने बडे-बडे व्यवसाय खडे हो गये कि वे राज्यों की सीमाएं लाघ कर फैल गये और उन्हें राज्यों की अपेक्षा बडी शक्ति से नियन्त्रित करना पड गया। संयुक्त राज्य अमेरिका में रेडियो लाभ पर न चल सकता यदि कोई अधिकारी उसकी सीमाएँ नियन्त्रित न कर देता। हवाई यातायात के सुरक्षा नियमों का पालन करवाने और जिन मार्गों पर एकाधिकार की आवश्यकता हो उनका लाइसन्स देने के लिए भी संघीय अधिकारी की आवश्यकता है। प्रत्येक ऐसा नया आविष्कार होने पर जिसके प्रयोग में सघीय प्रबन्ध के हस्तक्षेप की या सहायता की आवश्यकता हो, वाशिंगटन के पहले से बहुसंख्यक सरकारी विभागों में एक और विभाग की वृद्धि हो जाती है। मोटर-गाडी का मालिक प्रायः कोई व्यक्ति होता है और वही उसे चलाता भी है, परन्तु उसके लिए इतनी दूर-दूर तक फैली हुई सडकों की आवश्यकता पडती है कि उनकी सन्तोषजनक व्यवस्था, बिना संघ की सहायता के, केवल राज्य नहीं कर सकते।

प्राकृतिक विज्ञानों ने अनेक ऐसी जनोपयोगी सेवाओं का आविष्कार किया है जो लाभदायक केवल तभी हो सकती हैं जबकि सघीय शासन उन्हें जनता के लिए अति स्वल्प मूल्य में या बिना मूल्य सुलभ कर दे। ऐसी प्रथम सेवा वैज्ञानिक कृषि का विकास थी। उसे संघीय कृषि-विभाग ने राज्यों की सहायता से छोटी-छोटी पुस्तिकाओं और जिला-एजन्सियों द्वारा जनता के लिए सुलभ बना दिया। वैज्ञानिक कृषि का ज्ञान फैल जाने का लाभ यह हुआ कि खेतों में लगी हुई आबादी का बहुत बडा भाग अन्य कार्यों के लिए मुक्त हो गया और वह संयुक्त-राज्य अमेरिका में औद्योगिक उत्पादन का उच्च स्तर तक पहुँचा देने का कारण बना। जो कुछेक लाख किसान अब खेती कर रहे हैं वे पहले किसी भी समय की अपेक्षा अधिक फसलें पैदा करते हैं, यहा तक कि उनकी पैदावार के लिए बाजार तलाश करना भी एक समस्या बन गया है, और उसे हल करने का भार संघीय शासन के सिर पड गया है।

सार्वजनिक स्वास्थ्य के क्षेत्र मे नये आविष्कारो के कारण लोगो की औसत आयु बहुत बढ गयी है, और उसमे न केवल निजी डाक्टरो पर नये कर्त्तव्यो का बोझ पड गया है, स्थानीय शासनो पर भी शुद्ध पानी और स्वास्थ्य, सफाई आदि की व्यवस्था करने का भार आ पडा है। उनके कारण ऐसे अनेक नये अवसर भी उपलब्ध हो गये हैं कि उनका लाभ राष्ट्र-व्यापी पैमाने पर ही उठाया जा सकता है। सयुक्त राज्यो की सार्वजनिक स्वास्थ्य सेवा का सगठन इसी उद्देश्य से किया गया है। चिकित्सा विज्ञान का और खेती से उठ कर लोगो के नगरो मे जा बसने का, एक और परिणाम यह हुआ है कि बुढापे म पेशन की व्यवस्था न केवल अधिक परिमाण मे करनी पड गयी है, अपितु यह भी ध्यान रखना पडा है कि नागरिक को उसका लाभ एक राज्य स दूसरे राज्य मे चले जाने पर भी मिलता रहे।

कुछेक अन्य सेवाओं का, जैसे कि ऋतु विभाग, नापतोल आदि के स्टैण्डर्डों (मान) के ब्यूरो, जन गणना और अनेक सख्या विभागो का, केवल नाम निर्दिष्ट कर देना पर्याप्त होगा। ये विभाग खेती की ओर कारखानो की पैदावार आदि का तखमीना देते रहते हैं। इन सेवाओ की आवश्यकता इस कारण है कि वैज्ञानिक और टेक्निकल कुशलताओ का उपयोग करने मे ये अमेरिकी जनता के लिए सहायक रहे। कुछ निजी सगठन और स्थानीय तथा राज्यीय शासन भी, इस प्रकार की कुछ सेवाए करते हैं परन्तु कुछ सेवाए केवल सघीय शासन सुलभ मूल्य पर कर सकता है।

अन्त मे, अत्यन्त ध्यान आकर्षित करने वाला सघीय शासन का जो विस्तार हुआ वह सन् १९३२ मे श्री फ्रैंकलिन रूजवेल्ट के राष्ट्रपति निर्वाचित हो जाने पर भारी मन्दी के कारण हुआ। जनता मन्दी के मारे तग आ चुकी थी। वह "विश्वास" उत्पन्न करने के लिए "लेसे-फेर" के अर्थात् लोगो को अपना काम आप करने देने के प्राकृतिक उपाय को भी परख कर देख चुकी थी। निजी परोपकार और स्थानीय तथा राजकीय सहायताओं द्वारा भी बेरोजगारी कम करने का प्रयत्न करके देखा जा चुका था। अन्त मे उसने सघीय शासन से सहायता लेने

का निश्चय किया । श्री रूजवेल्ट ने कई-एक प्रयत्न केवल परीक्षण के रूप में किये थे, परन्तु जब उनके द्वारा धीरे-धीरे समृद्धि वापस आने लगी तब उनमें से अधिकतर को जनता भी पसन्द करने लगी । सन् १९२६ के 'एम्प्लायमेण्ट ऐक्ट' में शासन द्वारा जनता की सेवा करने का जो सिद्धान्त अपनाया गया था उस पर भी जनता ने अपनी स्वीकृति की छाप लगा दी । उस ऐक्ट में कांग्रेस ने माना था कि मन्दी को रोकने के लिए "सब सम्भव साधना का प्रयोग" करना शासन का ही उत्तरदायित्व है ।

परन्तु इस मानने मात्र से इस विवाद का अन्त नही हो जाता । अमेरिकी जनता अब भी निजी उद्योग-व्यवसाय को और स्वतन्त्र प्रतिस्पर्धा को ही पसन्द करती है । पहले जो सेवाए शासन द्वारा की जाने या न की जाने के औचित्य पर विवाद हुआ करता था उनमें से बहुतो को अब दोनो पार्टियो ने शासन के सुपुर्द करना स्वीकार कर लिया है, परन्तु जनता अब भी उन उद्योगो का शासन द्वारा सचालित होना पसन्द नही करती जिनको उसके द्वारा चलाने की आवश्यकता नही है अथवा जो निजी प्रयत्न से भी चल सकते हैं । सन् १९५२ मे जनरल आइजनहोवर को जनता ने मितव्ययिता के "प्लैटफार्म" पर चुना था । अर्थात् जनता ने उन्हे शासन की छानबीन करने, आवश्यक व्यय छाँट देने, और जिन सेवाओ को वह मितव्ययिता के कुल्हाडे से बचाना आवश्यक नही समझती थी उनका अन्त कर देने का निर्देश दिया था ।

जब एलेक्जण्डर हेमिल्टन ने सघीय शासन का विचार करने का आन्दोलन किया था तब जिन लोगो को उससे प्रत्यक्ष लाभ पहुचा था वे व्यापारी थे । इस कारण व हेमिल्टन के पक्षपाती बन गये थे । परन्तु उसके डेढ-सौ वर्ष पश्चात् जब श्री फ्रैंकलीन डी० रूजवेल्ट ने शासन का विस्तार किया तब प्रत्यक्ष लाभ बेरोजगारो को पहुँचा और इसलिए श्री रूजवेल्ट का समर्थन न करने वाले वही थे । अन्त मे लाभ व्यापारियो को भी हुआ, परन्तु उनको कर देना पडता था, और करो का बिल देखते ही जो दु ख होता है, वह उस सुख से कहीं अधिक होता है जो अगले वर्ष आय बढ जाने पर मिलता है । वे यह भी देख चुके थे कि सर्वजनोपयोगी

सेवाएं अनिवार्य रूप से शासन के नियन्त्रण मे जायेंगी ही, परन्तु सघ के नियन्त्रणो की अपेक्षा राज्यो के नियन्त्रण से भुगतना आसान था, इस कारण सार्वजनिक उपयोग की सेवाओ के स्वामियों ने सघीय शासन का विरोध और राज्यो के अधिकारो का समर्थन किया। इस प्रकार विज्ञान और आविष्कारो के कारण परिवर्तित परिस्थितियो ने डिमोक्रेटो को हेमिल्टनो और रिपब्लिकनो को जेफरसनो बना दिया।

परन्तु अपने हृदय में प्राय सब अमेरिकी अपना एक-एक पाव दोनो ओर रखना पसन्द करते हैं। इस सघीय शासन के विस्तार की आवश्यकता अनिच्छा से ही स्वीकार करते हैं। सिद्धान्त हम यही पसन्द करेंगे कि सघीय शासन का काम राज्यो को, और यथा सम्भव स्थानीय शासनो को, सौंप दिया जाय। प्रत्युत इससे भी आगे बढकर यदि सम्भव हो तो तीनो का काम निजी उद्योगो के सपुर्द कर दिया जाय। सन् १९५२ मे जनरल आइजनहोवर और गवर्नर स्टीवन्सन के आन्दोलन भाषणो से बार-बार यही प्रतिध्वनि निकलती थी कि सघीय शासन का विस्तार घटा दिया जाय।

जहा तक शासन के विकेन्द्रीकरण और संकोच की दिशा मे प्रगति की आशा का प्रश्न है, अमेरिकी लागो का उस सम्बन्ध मे कोई स्थिर सिद्धान्त नही है। साधारणतया उनकी कार्य-दिशा यह रहती है कि वे पहले तो "मितव्ययिता" की माग करते है, परन्तु पीछे अपने कारबार के लिए वे शासन की जिन सेवाओ को आवश्यक समझते हैं, उनका समर्थन करने लगते हैं। साथ ही विकेन्द्रीकरण का सिद्धान्त जड पकड चुका है और सम्भव है कि समय पाकर वह अधिक लोकप्रिय हो जाय। श्री फ्रेडरिक डिलनो, जो कि राष्ट्रपति रूजवेल्ट के आधीन "नेशनल-रिसोर्सेज-बोर्ड ( राष्ट्रीय साधनो के बोर्ड ) के चेयरमेन थे, इस सिद्धान्त को विश्योज्ना कहा करते थे। इसका सर्वोत्तम उदाहरण शायद 'टेनेसी-वेली-अथारिटी" है।

'टेनेसी-वेली-अथारिटी' अर्थात् टेनेसी घाटी की प्रबन्ध कर्त्ता संस्था का आरम्भ से ही सबसे बड़ा गुण यह था कि उसने अपने जिम्मे केवल नदी के

नियन्त्रण, सस्ती बिजली पहुँचाने और कुछ ऐसे अनुसन्धान का काम लिया था जो और कोई उठाने को तैयार नहो था। आगे चलकर वह ऐसे अवसरो को बतलाने और सूचनाओ को भी देने लगी जिनके सहारे टेनेसी घाटी के राज्य, काउण्टिया और नगर, और व्यापारी तथा किसान, स्वयमेव अपनी योजनाएँ बना सकते थे। 'वि-योजना' का अर्थ है कि संघीय निर्माण, नियन्त्रण, सहायता अथवा वैज्ञानिक अनुसन्धान का कार्य इस प्रकार किया जाय कि सघ के हाथो में यथाशक्ति कम काम रहे। 'वि-योजना' का कोई भी कार्य भली-भाति करने का लक्ष्य यह होता है कि ऐसी परिस्थितिया उत्पन्न कर दी जाय कि उनमे केन्द्रीय अधिकारियो को स्थानीय तथा अन्य विस्तार की बातो की चिन्ता करने की आवश्यकता न रहे।

विकेन्द्रीकरण का यह सिद्धान्त एक अन्य विचार से भी प्रकट होता है, जो द्वितीय विश्व-युद्ध के पश्चात् प्रचलित हो गया है। वह विचार यह है कि संघीय शासन का काम ऐसा "मौसम" उत्पन्न कर देता है कि उसमे रोजगार की तरक्की होती रहे। इसका अर्थ अपरिष्कृत अथवा कच्ची "इण्डिविजुअलिज्म" की ओर लौट जाना नहा है। इसमें यह मान लिया गया है कि पहियो को चलता रखने के लिए सब उपाय करने के जिम्मेवारी शासन की ही है। परन्तु इसका यह मतलब भी नही कि शासन प्रत्येक पहिये के पास एक-एक सरकारी कर्मचारी तैनात कर दे कि जब वह धीमा पडने लगे तब वह उसे धक्का लगाकर तेज कर दे। अच्छा उपाय यह है कि ऐसे कुछ विशेषज्ञ रख लिए जाय जो व्यापारिक ऋतु के प्रतिकूल परिवर्तनो को पहचान सकें और शासन की विविध शक्तियो को अर्थ-व्यवस्था सुधारने की दिशा मे प्रवृत्त कर दें।

द्वितीय विश्व-युद्ध के पश्चात् राजनीतिक अर्थ-शास्त्र के विद्यार्थियो का काम प्राय यही रह गया है कि वे शासन की शक्तियो को अमेरिकी पद्धति 'वि-योजना' मे लगाते रहे, उसमे आवश्यकतानुसार सुधार करते रहे और अमेरिकी जनता की सृजनात्मक योग्यता का अधिकाधिक उपयोग करते रहे। आशा है कि जब इस

प्रकार संघीय अधिकारों के प्रयोग की विधियां निकल आयेंगी और उनकी अनुकूल तथा प्रतिकूल परिस्थितियों में परीक्षा हो चुकेगी तब अमेरिकी जनता एक बार फिर अपने शासन के सिद्धान्तों को अमेरिकी जीवन की वास्तविकताओं के अनुसार ढाल लेगी ।

अध्याय १३

# परराष्ट्र सम्बन्ध

अमेरिकी विदेश-नीति की बहुत-सी विशेषताए ऐतिहासिक अनुभवो का परिणाम है । ये अनुभव ससार के अन्य अधिकतर लोगो के ऐतिहासिक अनुभवो से कुछ भिन्न प्रकार के हैं।

प्रथम तथ्य यह है कि अमेरिकी इण्डियनो के अतिरिक्त सयुक्त राज्य अमेरिका के सब लोग बाहर से "आगत जातियो" के हैं। वे या उनके पूर्वज उत्तरी अमेरिका मे गत चार शताब्दियो मे आये थे और वे इस बात को पूर्णतया विस्मृत नहीं कर सकते कि हम कौन हैं और यहा कहा से आये हैं। उनकी विशाल बहुसख्या यूरोप से आयी थी और अन्तर्राष्ट्रीय तनाव के समय वे अब भी इस "पुराने देश" से प्रेम और घृणा करते हैं जिससे वे नाता तोड चुके हैं।

जिन शक्तियो ने यूरोपियनो को समुद्र पार करने के लिए विवश किया उनमे राजनीतिक अत्याचार से भय और घृणा का प्रबल मिश्रण, निराशापूर्ण दरिद्रता, और वे धार्मिक अत्याचार भी थे जिन्हे इन आगन्तुको का अपने गृह-देश में सहना पडा था । उनके हृदय एक ओर स्वदेशानुराग और दूसरी ओर क्रोध के कारण विदीर्ण हो चुके थे। अमेरिकी क्रान्ति के आदि से लेकर सन् १८१२ के युद्ध के अन्त तक इंगलैण्ड के साथ उन्ह जो दीर्घ और दारुण सघर्ष करने पडे थे उनकी स्मृतियो से उनकी क्रोध की भावना उद्दीप्त थी। इस प्रकार अमेरिका के इतिहास की सब परम्पराओ में एक भावना यह भी रही है कि "हम यूरोप से निकलकर आये थे, अब हम वहा वापस फिर नहीं घसीटे जायगे ।"

परन्तु साथ ही एक अंग्रेजी कहावत के अनुसार "खून पानी से गाढा होता है" अर्थात्, रक्त-सम्बन्ध या आपत्य-प्रेम अत्यन्त दृढ होता है। अमेरिकी लोगों के अधिकतर कानून, रीति-रिवाज, प्रथाएं, और आचार-विचार के आदर्श आदि पश्चिमी सभ्यता के ही अंग हैं। युरोप न केवल उस सभ्यता की मातृभूमि है, उसके अनुयायियों का लगभग आधा भाग बसता भी वहीं है। जब कभी युरोप के विनाश का भय होता है तभी अमेरिकी लोग चौकन्ने हो जाते है कि यह खतरे का घण्टा हमारे लिए भी है। जब कभी युरोप मे सकट आता है तब अमेरिका मे भी इन परस्पर-विरोधी शक्तियो के कारण भारी राजनैतिक सघर्ष उत्पन्न हुए बिना नही रहता। बीसवी शताब्दी में भी ऐसा होता रहा है। ये सघर्ष इस कारण और भी अधिक तीव्र हो जाते हैं और उलझ जाते हैं कि लगभग आधे अमेरिकी लोग जिन ब्रिटिश परम्पराओ के अनुगामी हैं उनका बहुधा अन्य युरोपियन परम्पराओ से, विशेषतः आयरिश और जर्मन परम्पराओ से, विरोध रहता है। पूर्वजो की ये भावनाएं अमेरिकी जीवन के 'गलते हुए घडो' मे पिघलकर अभी तक घुली नही।

अमेरिकी प्रवृत्तियो पर दूसरा सर्वाधिक प्रबल और निश्चित प्रभाव उस भौगोलिक पृथकता का पड़ा है, जिसके कारण कुछ ही समय पूर्व तक अमेरिका की रक्षा होती रही थी। एक फ्रेंच राजदूत श्री ज्यूले जस्सरेन्द ने एक बार कहा था कि यह देश ऐसा भाग्यशाली है कि उत्तर और दक्षिण मे तो इसकी सीमाओं पर निर्बल पड़ोसी बसते हैं और पूर्व और पश्चिम में मछलियां।

परन्तु सन् १९४२ मे हैट्टरस अन्तरीप के सामने शान्त मछलियो के बीच मे जर्मन पनडुब्बियो को तैरता देखकर सब धक् से रह गये थे और बाद को यह जानकर और भी बड़ा धक्का लगा कि डिटरौयट और शिकागो नगरो पर उत्तर के साइबेरिया से आकर वायुयान बम बरसा सकते है। यह भी शताब्दियो से जमी हुई सुरक्षा की भावना और आकस्मिक आक्रमण की सम्भावना मे, एक संघर्ष ही है। युरोप की पीढियो पुरानी जिन आशंकाओ और विपत्तियो से, हम समझते थे, हम बच आये हैं, वे अकस्मात् ही आकर अमेरिकी दरवाजो को खटखटाने लगे हैं।

न केवल अमेरिकी लोगों का पालन-पोषण युरोप की सामरिक अभ्यास करती हुई सेनाओं से निश्चिन्ततामय दूरी पर हुआ था, उन्होंने गणतन्त्र के आरम्भिक वर्षों में, युरोपियन शक्तियों के, विशेषतः फ्रान्स, ब्रिटेन और स्पेन के, निरन्तर पारस्परिक झगड़ों का लाभ भी उठाया था। उदाहरणार्थ, नेपोलियन ने ल्युजियाना प्रदेश को लेकर पहले संयुक्त राज्य अमेरिका के पश्चिम में एक खतरनाक पड़ोसी बसाने का निश्चय कर लिया था। परन्तु पीछे उसे अमेरिकियों के हाथ बेच डाला, क्योंकि उसे अपनी सब शक्ति अंग्रेजों के साथ युद्ध करने में लगानी थी। हमारे आरम्भिक इतिहास के काल में चूंकि बालक और निर्बल अमेरिका युरोपियन युद्धों के कारण बाह्य हस्तक्षेपों से बचा रहा, इसलिए अमेरिकियों के मन में यह विश्वास ही बैठ गया कि संयुक्त राज्य अमेरिका को युरोप के युद्धों में किसी प्रकार का भय नहीं, प्रत्युत कुछ लाभ ही है। बीसवीं शताब्दी में जब संयुक्त राज्य अमेरिका को दो विश्व युद्धों का सामना करना पड़ा तब उसे यह पुराना विश्वास छोड़ देना पड़ा।

तीन सौ वर्ष तक एक ऐसे विशाल महाद्वीप में निवास का अमेरिकी विचार-धारा पर गहरा प्रभाव पड़ा है, जिसमें नयी बस्तियों के लिए खुला स्थान था। जब पहले पहल युरोपियन यहां आकर उतरे तब उत्तरी अमेरिका प्राय खाली ही था। क्रान्ति के पश्चात् निवासार्थियों का प्रवाह अप्लेशियन पर्वतों को पार करके पश्चिम की ओर को उमड़ पड़ा। उनके सामने दो हजार मील से अधिक विस्तृत देश खुला पड़ा था। सीमान्त के दीर्घ अनुभवों ने विचारों का और भौतिक प्रगति के सम्बन्ध में आशामय भावनाओं का ऐसा अभ्यास करवा दिया है कि उसकी आज की शताब्दी की यथार्थताओं के साथ सदा संगति नहीं बैठ पाती।

एक अन्य प्रभाव समुद्र मार्ग से व्यापार का दीर्घ इतिहास रहा है। पूर्वी तट के साथ बसती हुई अंग्रेज बस्तियां तैयार माल के लिए तो गृह-देश पर निर्भर रहती थी, और बदले में तम्बाकू, फर की खालें, लकड़ी और अन्न, समुद्र पार भेज कर बेच देती थी। विभिन्न बस्तियों के मध्य में भी कई पीढ़ियों तक, समुद्र के मार्ग ही यातायात के, यदि एक मात्र नहीं तो, मुख्य साधन थे। इसलिए संयुक्त राज्य

अमेरिका के पुरातनतम और समृद्धतम भाग का स्वभाव समुद्र मे घूमने-फिरने का था और उसने लोगो के राजनीतिक विचारो को भी प्रभावित किया। यहाँ तक कि मध्य पश्चिम की ओर को फैलकर बसे हुए अग्रणी लोग भी बडे तथा दुर्गम पर्वतो के विस्तार के कारण तटवर्ती नगरो के व्यापार का अन्य सरल मार्ग न पाकर अपना अन्न मिसोसिपी नदी द्वारा ले जाकर न्यू ऑर्लियन्स के मार्ग से युरोप के साथ व्यापार करने लगे।

उन्नीसवी शताब्दी मे भीतर देश के विकास के लिए पूंजी की बडे परिमाण मे आवश्यकता पडने लगी। इसका अधिकतर भाग ब्रिटिश और डच पूंजीपतियो ने दिया। अमेरिकी लोग विदेशी ऋणो के ओर अपने वैदेशिक व्यापार पर उन ऋणो के प्रभाव के अभ्यासी हो गये। विदेशियो को इस देश मे लगाई हुई पूंजी पर जो ब्याज मिलता था उससे ही वे अमेरिकी पशु और गेहू खरीद लेते थे। उन्हे अपने बिल चुकाने के लिए अपना तैयार माल इस देश मे बडी मात्रा मे नही बेचना पडता था। इस कारण अमेरिकी व्यापारियो-व्यवसायियो को अपना माल विदेशी बाजारो में बेचने का और विदेशी माल को तट-कर की दीवारें खडी करके अमेरिकी बाजार मे न आने देने का अभ्यास पड गया। विदेशो के साथ व्यापार का सन्तुलन नही होता था, इस कारण उन्हे कोई हानि होती दिखाई नही देती थी। यह अभ्यास कई पीढियो तक पडता चला जाने के कारण अमेरिकी लोग बीसवी शताब्दी की सर्वथा भिन्न परिस्थितियो को समझने की तैयारी भली-भाँति नही कर सके।

अन्त मे, अमेरिकी लोगो की प्रवृत्तियो को उनकी लोकतान्त्रिक प्रथाओ और जीवन शैलियो के प्रकाश मे समझ लेना चाहिए। अमेरिकी राजनीतिक व्यवहार मे अन्य दोष चाहे जितने हो, खुले और स्वतन्त्र विवाद का अभाव उन दोषो मे नही है।

अमेरिका की स्थापना होने के पश्चात् जिस किसी भी विदेशी को कभी यहा आने का अवसर हुआ होगा, उसने यहा परस्पर विरोधी मतो का बडी मात्रा मे सुना होगा। समाचारपत्र जो चाहते हैं सो लिखते हैं, और कांग्रेस के सदस्य उन नीतियो का नि संकोच प्रतिवाद कर देते है जिन्हे कि 'स्टेट डिपार्टमेण्ट' (परराष्ट्र-

विभाग) अति सावधानता-पूर्ण विचार के पश्चात् घोषित करता है। ऐसा लगता है कि मित्रों या शत्रुओं के साथ बहुत नाजुक बातचीत भी किसी छोटे तम्बू में की जा रही हो और उसे भी हल्ला-गुल्ला मचाती हुई भीड़ ने घेर रक्खा हो। हो सकता है कि कोई व्यक्ति रेडियो पर भाषण करते हुए अपने श्रोताओं को समझाये तो यह कि देशभक्त नागरिकों को अपने देश के भेद शत्रु पर प्रकट नहीं करने चाहिए और इस बात का उदाहरण देने के लिए कि देशभक्त लोग कैसे-कैसे भेद प्रकट कर देते हैं, स्वयं किसी बहुत खतरनाक सैनिक भेद को प्रकट कर बैठे।

इस प्रकार की अनुशासनहीनता के कारण हो सकता है कि कुछ लोगों को लगता हो कि सोवियट यूनियन सरीखी अपने भेदों को गुप्त रखने वाली और एक-वर्गाधिकारी शक्ति के साथ मुकाबला पड़ने पर संयुक्त राज्य अमेरिका भारी घाटे में रहेगा। ऊटपटांग बातचीत करने का स्वभाव इस देश में इतनी गहरी जड़ पकड़ चुका है कि उसे नियन्त्रण में रखने के लिए कुछ नहीं किया जा सकता। कुछ अमेरिकी लोग यह सोच कर आत्मसन्तोष कर लेते हैं कि वाद-विवाद जितना ही उच्छृङ्खल क्यों न हो उसमें, सोवियटों (रूसियों) के ऊपर छाई हुई तीखी और कटु रहस्यमयता की अपेक्षा तो कुछ नैतिक लाभ है ही।

इससे अन्य स्वतन्त्र लोगों को यह विश्वास दिलवाने में भी सहायता मिल सकती है कि अमेरिकी लोग स्थिर और भरोसे योग्य भले ही न हों, वे संसार की स्वतन्त्रता नष्ट करने के लिए कोई गुप्त षड्यन्त्र नहीं रच रहे हैं।

सन् १८१२ के युद्ध के पश्चात् कोई सौ वर्ष तक अमेरिकी लोगों का ध्यान मुख्यतया अपने देश के आन्तरिक विकास पर केन्द्रित रहा। "स्टेट डिपार्टमेण्ट" (परराष्ट्र-विभाग) अति उपेक्षित था और जो परराष्ट्र नीति थोड़ी बहुत थी भी उस पर भी कांग्रेस छाई रहती थी। युरोपियन देशों की तुलना में, जो कि सदा कूटनीति में गहरे डूबे रहते थे, संयुक्त राज्य अमेरिका की कूटनीति विभाग अपने नौसिखियेपन और भद्देपन के लिए बदनाम था। केवल सम्पन्न लोग राजदूत बनने का व्यय उठा सकते थे, और उनमें से बहुतों में कूटनीतिज्ञता की योग्यता इसके अतिरिक्त कुछ नहीं होती थी कि उन्होंने चुनाव में जीती हुई पार्टी को दान

उदारतापूर्वक दिया जाता था। परन्तु संकटो के समय बेंजामिन फ्रैंकलिन के काल से लेकर आज तक संयुक्त राज्य अमेरिका को राजदूतो और परराष्ट्रमन्त्रियो का काम करने के लिए कुछ अतियोग्य व्यक्तियो की सेवा प्राप्त करने मे सफलता मिलती रहती है।

किसी भी देश के लोग अपने शासन के परराष्ट्र कार्यालय पर स्वभावत सन्देह करते हैं, क्योकि उसमे अधिकतर आदमी ऐसे होते हैं जिनका विदेशियो के साथ मेल-जोल होता है। अमेरिका का स्टेट डिपार्टमेण्ट (परराष्ट्र विभाग) भी इसका अपवाद नही है। इसका काम ही ऐसा है कि लोकमत की दृष्टि मे उसे घाटा उठाना पडता है। यदि इसे किसी विदेशी शासन के साथ बातचीत करके, जो जनता चाहती है वह प्राप्त करने मे सफलता न हो, तो अपने देश के लोग उन राजनीतिक शक्तियों को तो समझते नही जो अपना असर डाल रही होती हैं, और यह सन्देह करने लगते हैं किसी ने संयुक्त राज्य अमेरिका के साथ धोखा कर दिया—और इस सन्देह मात्र के आधार पर राजनीतिक आलोचनाएँ होने लगती हैं। यदि स्टेट डिपार्टमेण्ट (परराष्ट्र विभाग) परिस्थिति-वश ऐसी नीति अपना ले जो सर्वसाधारण के शताब्दी भर पहले के विश्वासो के विरुद्ध हो तो ऐसे चिन्ताग्रस्त लोग हैं जो सदियो से प्रचलित सिद्धान्त का उल्लंघन होते देख कर क्षुब्ध होकर चिन्ता प्रकट करने लगेंगे। इस प्रकार स्टेट डिपार्टमेण्ट (परराष्ट्र विभाग) अनायास ही सबकी आलोचना का शिकार बन जाता है।

पहले विदेशी शासनो के साथ सम्पर्क रखने का काम केवल स्टेट डिपार्टमेण्ट का समझा जाता था। सन् १६०० के पश्चात् वह पुराना नमूना बिल्कुल बदल गया और अब तो वह निरन्तर अधिकाधिक उलझन-भरा बनता जा रहा है। अब विदेशो के साथ व्यापार, मित्रता, आक्रान्ताओ के आक्रमणो का निरोध और राष्ट्रीय संस्थाओ की सदस्यता आदि अनेक कामो मे विदेशी शासनो के साथ सम्पर्क करना पडता है। आज संयुक्त राज्य अमेरिका से शासन की प्राय प्रत्येक एजन्सी का सम्बन्ध अमेरिकी जीवन के किसी ऐसे पहलू से है कि उसका प्रभाव देश के परराष्ट्र सम्बन्धो पर पड सकता है। बहुत-सी एजन्सियां तो सीधा विदेशियों या विदेशी शासनो के

साथ ही व्यवहार करती हैं। इसके अतिरिक्त, इस देश के स्थानीय स्वार्थ भी ससार व्यापी महत्त्व की विदेश-नीतियों का बहुधा विरोध करने लगते हैं। उदाहरणार्थ, 'विदेशों की सहायता नहीं, उनके साथ व्यापार' की नीति के समर्थक राष्ट्रपति ट्रूमन भी थे और आइजनहोवर भी हैं। दोनों ने इसे अमेरिका की सुरक्षा के लिए महत्वपूर्ण माना है। परन्तु व्यापारियों, किसानों और श्रमिकों के बहुत से प्रतिनिधि इसकी निन्दा करते हैं। वे सब अपने-अपने रोजगार के सरक्षण के लिए किसी न किसी प्रकार का तट-कर लगवाना चाहते हैं परन्तु उससे विदेशों के साथ शर्तें तय करने की अमेरिका की शक्ति बहुत निर्बल हो सकती है।

स्टेट डिपार्टमेण्ट अर्थात् परराष्ट्र-विभाग अपनी परराष्ट्र-नीति को प्रभावशाली बनाने के लिए चाहे भी तो इन सब पृथक्-पृथक् और बहुधा परस्पर-विरोधी विभागों, एजन्सियों और कांग्रेस की समितियों को एक ही दिशा में नहीं चला सकता। केवल राष्ट्रपति में इतनी सामर्थ्य है कि वह सब शासकीय एजन्सियों के सूत्र अपने हाथ में रखकर कृषि-विभाग और प्रतिरक्षा-विभाग सरीखे विभिन्न सगठनों का एक ही लक्ष्य की पूर्ति में प्रवृत्त कर सके। अब ह्वाइट हाउस (अमेरिकी शासन-कार्यालय) में ऐसे कर्मचारी रखे भी जाने लगे हैं जो एकमात्र राष्ट्रपति के नियन्त्रण में रहते हैं और जिनके द्वारा वह सब विभागों की जानकारी प्राप्त कर सकता है। परन्तु पहले की सब न्यूनताएं दूर होकर पूर्णता प्राप्ति की आशा शीघ्र ही पूरी नहीं हो सकती।

स्थानीय स्वार्थ जब परराष्ट्र-नीति में हस्तक्षेप करने लगें तब कांग्रेस या उनके प्रभाव से स्वतन्त्रता रखने की आशा भी राष्ट्रपति ही पूरी कर सकता है, क्योंकि राष्ट्रपति जनता से सीधी बात कर सकता है। स्टेट डिपार्टमेण्ट भी यदि विदेशी समस्याओं का विस्तृत विवरण राष्ट्रपति को देता रहे तो उसकी बहुतेरी सहायता हो सकती है, परन्तु इसके लिए परराष्ट्र विभाग के पास अच्छे और चतुर सूचना अधिकारियों का रहना आवश्यक है। सभी बड़े राष्ट्रपति सदा जनता के समर्थन पर निर्भर करते आये हैं।

अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में सफलता का थोड़ा-बहुत दारोमदार इस बात पर होता है कि कांग्रेस में दोनों पार्टियां शासन का समर्थन कितना करती हैं। कांग्रेस में कुछ सदस्य ऐसे रहते हैं जिन्हें अपने राजनीतिक लाभ के लिए अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में शासन की स्थिति को खोखला करते हुए सकोच नहीं होता, परन्तु दोनों पार्टियों का बहुमत शत्रुओं के विरुद्ध राष्ट्र का ही पक्ष लेता है। पद ग्रहण करते समय सब सदस्य प्रतिज्ञा भी इस आशय की करते हैं। देश के सीमान्तर दोनों पार्टियों का परस्पर विरोध शान्त हो जाने की इच्छा नेता ही पूरी कर सकते हैं, परन्तु उनका प्रभाव और संगठन अभी इतने दृढ़ नहीं हुए हैं कि वे सदा सफल हो जायें। उन्नीसवीं कांग्रेस से मार्शल योजना का स्वीकृत करवाने में नेताओं को सफलता हुई थी, और उसका श्रेय सेनेटर वेण्डनबर्ग का प्रतिभा को दिया जाता है। द्वितीय विदेश नीति की सफलता साधारणतया इस आशा पर निर्भर करती है कि कांग्रेस के नेता निःस्वार्थ रहेंगे, सौभाग्यवश उनकी एकता भंग नहीं होगी, और राष्ट्रपति कुशलता से विरोधी नेताओं के साथ भी निभा लेंगे।

'हूवर-विलसन-फाउन्डेशन' की एक समिति ने सिफारिश की है कि संविधान में संशोधन करके कांग्रेस-सदस्यों का कार्यकाल चार वर्ष कर देना चाहिए। समिति ने बतलाया है कि जब कांग्रेस के साथ-साथ राष्ट्रपति का भी चुनाव नहीं होता तब मत कम पड़ते हैं और स्वस्थ परराष्ट्र-नीति के विरोधी विशिष्ट स्वार्थों को ऐसे कांग्रेस सदस्य चुनने में सफलता हो जाती है, जो कि शायद राष्ट्रपति के निर्वाचन के समय मतदाताओं के सजग रहने के कारण न चुने जाते। इस समिति ने यह सिफारिश भी की है कि राष्ट्रपति कांग्रेस को अपनी परराष्ट्र-नीति के भावी लक्ष्यों से पूर्णतया परिचित रखा करें, जिससे संकीर्ण स्वार्थों की तथा अल्पकालीन स्वार्थसिद्धि की नीति और प्रस्ताव का विरोध अधिक अच्छी प्रकार हो सके।

ऐसी किसी विदेश-नीति के तय होने में जिसका उग्र विरोध न हो, बड़ी कठिनाइयां दो हैं। एक तो बार-बार दुविधाओं का खड़ा हो जाना और दूसरी

वर्तमान शताब्दी की परिवर्तित परिस्थितियों के कारण कुछेक अत्यन्त बद्धमूल और चिरसमादृत अमेरिकी धारणाओं के विपरीत कार्य करने की आवश्यकता।

सोवियट यूनियन (रूस) सरीखे धूर्त और साधन-सम्पन्न शत्रु के साथ भुगतते समय दुविधाओं का खड़ा होना अवश्यम्भावी है। शत्रु विशेष प्रयत्न करके ऐसी परिस्थितियां उत्पन्न कर देता है जिनमें अमेरिका को दो में से एक बुराई अपनानी पड़ जाय। उदाहरणार्थ, कोरिया का प्रकरण ऐसी दुविधाओं से भरा पड़ा था। जो भी मार्ग चुना जाता उसे बुरा कहकर उसकी निन्दा की जा सकती थी। सम्भव है कि वैसा करने की प्रेरणा विश्वासघातियों द्वारा दी जाती हो। ऐसी निन्दाओं को कोई भी परराष्ट्र-नीति अपनाने के मूल्य का भाग मानना चाहिए।

बीसवीं शताब्दी में संयुक्त राज्य अमेरिका के परराष्ट्र सम्बन्धों के कारण अपने ही देश में बार-बार भारी राजनीतिक तनाव उत्पन्न हो गया, क्योंकि उनसे पुरानी बद्धमूल नीतियां उलट गयीं। उदाहरणार्थ, एक शताब्दी से संयुक्त राज्य अमरिका की नीति उलझन-भरी मित्रताओं में न पड़ने की थी। वाशिंगटन तक का श्रद्धास्पद नाम इस नीति के साथ जुड़ा हुआ था। अब उस पर नयी दृष्टि से विचार करना पड़ गया।

राष्ट्रपति वाशिंगटन ने सन् १७९३ में, फ्रान्स की सहायता और मित्रता से देश की स्वतन्त्रता प्राप्त करने के कुछ ही वर्ष पश्चात्, फ्रान्स और इंग्लैण्ड के झगड़ों में तटस्थ रहने की नीति अपनायी थी। वाशिंगटन का लक्ष्य यह था कि शिशु संयुक्त राज्य को बलवान होने के लिए कुछ समय मिल जाय। उन्होंने केवल फ्रान्स के प्रति कृतज्ञता का निर्वाह करने के लिए संयुक्त-राज्य को यूरोप के दासता की कुश्ती में उलझाने से इनकार कर दिया। अपनी विदाई के भाषण में उन्होंने अमेरिकी लोगों से कहा था कि "विदेशी लोगों के साथ व्यवहार करने का बड़ा नियम यह है कि उनके साथ व्यापारिक सम्बन्ध तो बढ़ाओ, परन्तु राजनीतिक सम्बन्ध उनके साथ यथाशक्ति कम रक्खो।" वह ऐसे समय की प्रतीक्षा कर रहे थे "जब हम विदेशों के भड़काने पर भौतिक हानि की उपेक्षा कर उनका विरोध कर सकेंगे........., जब परस्पर लड़ते हुए देश यह समझ लेने के कारण कि हमसे

कुछ भी लाभ उठाना सम्भव नही है हमे उत्तेजित करने को जोखिम उठाने को सुगमता से तैयार नही होंगे, और जब हम शान्ति या युद्ध का चुनाव अपने न्याय संगत लाभ को देख कर कर सकेंगे।"

सन् १८२३ मे राष्ट्रपति मनरो ने कहा था—"युरोप के सम्बन्ध मे हमारी नीति उसकी किन्ही भी शक्तियों के आतरिक झगडो मे न पडने की है। भूमण्डल का वह भाग (युरोप) युद्धो के कारण बहुत समय से क्षुब्ध होता चला आ रहा है। परन्तु हम इस नीति को इन युद्धो के आरम्भ मे ही अपना चुके थे और वह अब तक यथापूर्व चली आ रही है।" यह पुनर्घोषणा यूनान के स्वातन्त्र्य-युद्ध के प्रसग मे की गयी थी, क्योंकि उसके साथ बहुत-से अमेरिकियो की गहरी सहानुभूति थी। युरोप में चाहे जो कुछ होता रहे, अमेरिकी नीति उससे पृथक् रहने की थी, और अमेरिकी जनता का प्रबल बहुमत उसका समर्थक था।

सन् १९१४ से सन् १९१७ तक के संकटपूर्ण काल मे जब उडरो विलसन अमेरिकी तटस्थता की रक्षा करने का यत्न कर रहे थे तब भी अमेरिका की नीति यही थी। परन्तु तब अतलान्तक महासागर का पाट सिकुड चुका था, और अमेरिका की एक अन्य आधारभूत नीति पर आक्रमण होने लगा था। वह थी समुद्र में यातायात की स्वतन्त्रता। घटना चक्र के वेग ने विलसन को अपना विचार बदलने के लिए विवश कर दिया ओर उन्होंने सन् १९१७ मे जर्मनी के साथ युद्ध छेडने की माग की। इस उलझन मे से निकलने के पूर्व ही, उन्होने सेनेट से यह असफल प्रार्थना की कि वह अमेरिका का "लीग ऑव् नेशन्स" अर्थात् राष्ट्र-संघ मे सम्मिलित होना स्वीकृत कर ले। आधे से अधिक अमेरिकी जनता तब संयुक्त राज्य को लीग मे उलझाने की पक्षपाती थी।

परन्तु पृथक्ता की परम्परा तब तक मृत नही हुई थी। द्वितीय विश्व-युद्ध के छिडने पर अमेरिकी जनता शीघ्र ही यह मानने को तैयार नही हुई कि नात्सी अपने युरोपियन पडोसियो के साथ-साथ समस्त स्वतन्त्र संसार पर भी आक्रमण कर रहे हैं। जबतक पर्ल हार्बर पर आक्रमण नही हो गया और जर्मनी तथा इटली ने संयुक्त राज्य अमेरिका के विरुद्ध युद्ध की घोषणा नही कर दी तबतक पृथक्ता की

भावना का ही जोर रहा। अब भी अमेरिका की राजनीति में यह एक प्रबल अन्तर्धारा के रूप मे विद्यमान है।

पृथकता की भावना के मूल में युरोप के प्रति जनवर्ग की परम्परागत अरुचि है। परन्तु यह भावना संसार के अन्य भागो पर, यह ठीक उसी प्रकार लागू नहीं होती। कहावत है कि "अमेरिकी पश्चिम की ओर मुंह करके जन्म लेते हैं।" पृथकता का अर्थ पश्चिम को ओर—चीन तक—स्थित देशो से पृथक् रहना कभी नही हुआ।

परराष्ट्र-नीति में दूसरा महत्वपूर्ण पलटा, जिसके कारण राजनीतिक विवाद उठ खड़ा हुआ है, ऊँचे तट-करो को नीचा कर देना है। सन् १६३३ मे जब डिमोक्रेट पदारूढ हुए तब उन्होने तट-कर घटाने पर जोर दिया था। यह उनकी पार्टी की परम्परा है। देशी उद्योगो का संरक्षण करने के लिए भी तट-कर लगाने का वे सदा विरोध करते रहे हैं। परन्तु इस सम्बन्ध मे पार्टियो की स्थिति तब कुछ अस्पष्ट थी; क्योकि दक्षिण मे भी उद्योगो की जड जम गयी थी और दक्षिणी डिमोक्रेट अपने उद्योगो के सरक्षण के पक्षपाती बन गये थे। इतिहास का प्रवाह भी ऊँचे तट-करो के विरुद्ध था।

प्रथम विश्वयुद्ध के पश्चात् अन्तर्राष्ट्रीय व्यवहार में अमेरिका ऋणी देश से महाजन देश बन गया था। उसके पश्चात् जो विदेशी लोग अमेरिकी गेहूँ या मोटरें खरीदना चाहते थे उनके लिए अपना कुछ माल अमेरिकियो के हाथ बेचकर जरूरी डालर कमाना आवश्यक हो गया था। और इसके अतिरिक्त, यदि उन्हे अमेरिका से लिये हुये ऋण पर ब्याज देना होता था तो उन्हें और भी माल बेचना पडता और, और भी डालर कमाने पडते थे। सक्षेप में, ऋणो की वसूली और अमेरिकी माल की विदेशो मे बिक्री के लिए, अमेरिकियो के लिए आवश्यक हो गया कि व निर्यात की अपेक्षा आयात अधिक करें। उधार पर माल बेच देने से बात टल सकती थी, परन्तु उत्तमर्ण (महाजन) देश के लिए तो अतिरिक्त आयात करना आवश्यक हो ही जाता है, वरना सकट खड़ा हो सकता है। अत उसे अपने तट-कर घटाने पडते हैं, नही तो कठिनाइया बढ जाती हैं।

परन्तु अमेरिकी उद्योगों को ऊँचे तट-करों की आदत पड़ी हुई थी, और देश की राजनीति पर उनका प्रभाव भी था। प्रथम विश्व-युद्ध के कोई बारह वर्ष के पश्चात् तट-कर किसी भी गत काल की अपेक्षा ऊँचे थे; फलतः संकट खड़ा हो गया। युद्ध-ऋण डूब गये और साथ ही पश्चिमी अर्थ-व्यवस्था भी डूब गयी। जो भारी मन्दी आयी उसके लिए अमेरिकी तट-कर भी उत्तरदायी थे।

द्वितीय विश्व-युद्ध के पश्चात् युद्ध-ऋण की समस्या उतनी गम्भीर नहीं थी, क्योंकि उधार-पट्टे की व्यवस्था द्वारा अमेरिकी शस्त्रास्त्र मित्र-राष्ट्रों को पूरा मूल्य लिये बिना दे दिये गये थे। इसके पश्चात् वह समय आया जब अमेरिकी धन की बड़ी-बड़ी राशियाँ सहायता और पुनर्निर्माण के लिए विदेशों को दी गयीं। जबतक अमेरिका कई अरब डालर प्रति वर्ष देता रहेगा तबतक व्यापार के सन्तुलन का प्रश्न खड़ा नहीं होगा। परन्तु सहायता दिये बिना भी काम चलता रखने के लिए अमेरिका को अपने द्वार अधिकाधिक विदेशी व्यापार के लिए भी खोलने ही पड़ेंगे। विदेशों को सहायता नहीं देनी चाहिये, उनके साथ व्यापार करना चाहिये, की नीति अपनाने का कारण यही है। संसार की परिस्थितियों ने ही इसे हम पर लाद दिया है, परन्तु इससे बहुसंख्यक अमेरिकियों के वंश परम्परागत विश्वासों को ठेस लगती है और इस कारण भावनाएँ भड़क जाने पर विदेश-नीति का निर्धारण सरल काम नहीं रह जाता।

नीति में इन काया-पलटों के कारण तो बहुत-से अमेरिकी लोग क्षुब्ध हो उठे हैं, परन्तु अन्य अनेक अमेरिकी परम्पराओं में परिवर्तन या उनका नया विकास अपेक्षाकृत कम क्षोभ के साथ हो गया है।

इनमें से एक मनरो-सिद्धान्त है। इसका जन्म पहले-पहल ब्रिटिश सरकार के इस सुझाव से हुआ था कि दोनों देश मिलकर युरोपियन महाद्वीप की शक्तियों को नये और निर्बल दक्षिण-अमेरिकी गणतन्त्रों पर आक्रमण करने से रोकें। ब्रिटेन और संयुक्त-राज्य अमेरिका, दोनों ही, फ्रान्स या स्पेन या रूस को पश्चिमी गोलार्ध में नये साम्राज्य खड़े करने देना नहीं चाहते थे। राष्ट्रपति मनरो ने अंग्रेजों के साथ उलझन में न पड़ने का निर्णय किया; क्योंकि भविष्य में उनकी कुछ नीतियों का

ऐसा होना सम्भव था जो संयुक्त राज्य अमेरिका को पसन्द न आती। इसलिए उसने २ दिसम्बर सन् १८२३ को घोषणा कर दी कि संयुक्त राज्य अमेरिका उसे महाद्वीप में युरोपियन साम्राज्यों के विस्तार को "अपनी शान्ति और सुरक्षा के लिए भय का कारण" मानेगा। उस समय समुद्रों पर ब्रिटिश जल-सेना का नियन्त्रण था और उसे ब्रिटेन के हित में मनरो-सिद्धान्त का समर्थन करना पड़ गया।

उन्नीसवीं शताब्दी के शेष भाग में स्थिति यही रही। सन् १६०० के पश्चात् लेटिन-अमेरिकी देशों मे अनचुके ऋणों का एकत्र होते चले जाना मनरो-सिद्धान्त के लिए गम्भीर और क्रमश बढते हुए भय का कारण बन गया। यह भय होने लगा कि कही युरोपियन उत्तमर्ण बहुत समय से देय हो चुके अपने ऋणों की वसूली के लिए अपनी सशस्त्र शक्तियों का प्रयोग करते हुए कैरिबियन समुद्र के तट तक आकर यही न बस जायं। इसलिए राष्ट्रपति थियोडोर रूजवेल्ट ने मनरो-सिद्धान्त के "रूजवेल्ट परिणाम" की घोषणा कर दी। युरोपियन उत्तमर्णों को चेतावनी दे दी गयी कि वे अमेरिका महाद्वीप से परे रहे, और संयुक्त राज्य अमेरिका ने 'रिसीवर' बनकर, जबतक दिवालिया देश अपने पाव पर खडे न हो जायं तब-तक, टैक्स एकत्र करने, व्यवस्था रखने और भ्रष्टाचार को रोकने की जिम्मेवारी अपने सिर ले ली।

लेटिन-अमेरिकी लोगों को एक के बाद दूसरे देश मे अमेरिकी जल-सैनिकों का उतरना बहुत बुरा लगा। इसलिए राष्ट्रपति हर्बर्ट हूवर ने "रूजवेल्ट-परिणाम" का प्रत्याख्यान कर दिया और लेटिन-अमेरिका के साथ नया तथा मित्रता पूर्ण व्यवहार आरम्भ किया। सन् १६२८ में निर्वाचित हो जाने पर सन् १६२६ में अपना पद सम्भालने तक उन्होंने लेटिन-अमेरिका की मित्रता-पूर्ण यात्रा की। "अच्छे पडोसी की नीति" का पालन राष्ट्रपति फ्रैंकलिन रूजवेल्ट और ट्रूमन के समय भी किया जाता रहा। संयुक्त राज्य अमेरिका ने जिम्मा लिया है कि वह अन्य अमेरिकी राष्ट्रों के अन्दरूनी मामलों में दखल नहीं देगा। "अमेरिकी राष्ट्रों के सगठन" मे गोलार्द्ध की रक्षा करना सब सदस्यों का कर्त्तव्य मान लिया गया है।

मनरो-सिद्धान्त के इस रूपान्तर से स्वतन्त्र ससार की रक्षा सम्बन्धी सामान्य दुविधा कुछ स्पष्ट हो जाती है। कोई भी स्वतन्त्र राष्ट्र अपने यहा आन्तरिक व्यवस्था की पुन स्थापना करने के लिए अपने तट की ओर आते हुए संयुक्त राज्य अमेरिका के जल सैनिको का स्वागत नही करेगा। स्वतन्त्र राष्ट्र स्वतन्त्रता को इच्छा, अपनी आन्तरिक समस्याओं को अपने ही ढग से हल करने के लिए करते हैं। साथ हो, स्वतन्त्र ससार के सभी भागो मे उदार विचार के लोगो को यह देखकर बुरा लगता है कि संयुक्त राज्य अमेरिका, दक्षिण अमेरिका मे तथा अन्यत्र भी, तानाशाही शासन वाले देशो की सहायता करता है। कम्यूनिस्ट पार्टी भी अपने प्रचार आन्दोलन में इसका लाभ उठा लेती है।

अमेरिका एक शताब्दी से अधिक समय से, कुछ अपवादो को छोड कर, इस दुविधा को स्थिर रखता चला आ रहा है, और इसका उत्तर वह यह देता है कि किसी विदेशी आक्रान्ता द्वारा किसी छोटे देश को जीत लिये जाने को अपेक्षा उसी देश मे जन्मा हुआ तानाशाह ससार के लिए कम खतरनाक होता है। इसलिए यदि कोई देश अभी लोकतन्त्रीय शासन न अपना सका हो तो भी सयुक्त राज्य अमेरिका उसकी स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए उसे सहायता देना अधिक अच्छा समझता है।

"समुद्रो मे यातायात की स्वतन्त्रता" का परम्परागत अमेरिकी सिद्धान्त ब्रिटिश लोगो से उत्तराधिकार में मिला हुआ है। ब्रिटिश लोग रानी एलिजाबेथ प्रथम के समय से हो ससार भर के समुद्रो मे घूमने और व्यापार करने का आग्रह करते रहे हैं। परन्तु यह सिद्धान्त, एकवर्गाधिकारी आक्रान्ताओ से स्वतन्त्र ससार की सहयोग पूर्वक रक्षा करने के लिए उपयुक्त सिद्ध नही हुआ। प्रथम विश्व-युद्ध के समय व्यापार करने के अधिकार की, विशेषत युद्ध-काल मे तटस्थ-व्यापार के अधिकार की, आधुनिक अवस्थाओ के साथ टक्कर हो गयी थी। राष्ट्रपति विलसन ने क्रुद्ध होकर अंग्रेजो और जर्मनो, दोनो के साथ बहुतेरी बहस की थी, परन्तु न तो ब्रिटेन ही अमेरिकी जहाजो को शत्रु के साथ व्यापार करने की इजाजत दे सका

ओर न जर्मनी, क्योंकि दोनों को युद्ध हार जाने का भय था। अन्त में संयुक्त राज्य अमेरिका ने युद्ध में पड़कर इस समस्या को टाल दिया।

द्वितीय विश्व-युद्ध में कांग्रेस ने "न्यूट्रेलिटी ऐक्ट" अर्थात् तटस्थता का कानून बनाकर अमेरिका के तटस्थता के अधिकारों का ही त्याग कर दिया। अमेरिकियों का युद्ध-क्षेत्रों में जाना वर्जित कर दिया गया, और ज्यों-ज्यों अमेरिका मित्र-राष्ट्रों का पक्ष अधिकाधिक लेता गया त्यों-त्यों यह स्थिति भी समाप्त होती गयी।

अब अन्त में सन् १९४५ से आरम्भ हुए आतंक-युद्ध में, सोवियट देशों के साथ व्यापार करने पर प्रतिबन्ध लगाने की माँग करने में संयुक्त राज्य अमेरिका संसार का नेतृत्व कर रहा है। परिस्थितियों ने समस्याओं को परिवर्तित कर दिया है। अब समुद्री यातायात की स्वतन्त्रता के सिद्धान्त में राजनैतिक उत्तेजना तनिक भी नहीं रही। अब युक्तियाँ इस सिद्धान्त के समर्थन में नहीं, अपितु यह निर्णय करने के लिए दी जाती हैं कि कितना नियन्त्रण करने से परिणाम उत्कृष्ट निकलेंगे।

चीन का द्वार खुला रखने का सिद्धान्त भी समुद्री यातायात की स्वतन्त्रता से सम्बद्ध था। संयुक्त राज्य अमेरिका चीन के साथ व्यापार करने में अन्य सब देशों के समान सुविधाएं पाने का आग्रह किया करता था। चीन में कम्यूनिस्ट क्रान्ति के पश्चात् यह समस्या ही अब नहीं रही।

अन्त में, यह भी मानना पड़ेगा कि संयुक्त राज्य अमेरिका की परराष्ट्र नीति साम्राज्यवाद की दशा में से गुजर चुकी है। परन्तु सन् १८९८ के स्पेनिश युद्ध के पश्चात् उसका अन्त होने लगा था। उन्नीसवीं शताब्दी में संयुक्त राज्य अमेरिका पश्चिम में प्रशान्त सागर की ओर और दक्षिण में रायो ग्रेण्डी की ओर को फैल रहा था। इस विस्तार का सबसे हिंसामय प्रकरण सन् १८४६-४८ का मैक्सिकन युद्ध था। बीच-बीच में क्यूबा और अन्य कैरिबियन प्रदेशों पर अधिकार कर लेने का आन्दोलन भी उठता था, परन्तु उसका फल साम्राज्य विस्तार के किसी बड़े प्रयत्न के रूप में प्रकट नहीं हुआ।

सन् १८६८ मे क्यूबा के निवासी स्पेनिश राज्य के विरुद्ध विद्रोह कर रहे थे। स्पेनिश युद्ध, उनके साथ अमेरिकी जनता से सहानुभूति के कारण और इस भय के कारण छिडा था कि जर्मन लोग स्पेन की ओर बढते हुए कही क्यूबा पर भी अधिकार न कर लें। इसी समय हवाना बन्दरगाह मे अमेरिका का 'मेन' युद्ध पोत बारूद से उडा दिया गया। बस, सनसनी फैलाने वाले समाचार पत्रो ने संयुक्त राज्य अमेरिका के सुलगते हुए क्रोध को भभका कर ज्वाला मे परिणत कर दिया। युद्ध के पश्चात् अमेरिकियो से अधिक आग्रह किसी को नही हुआ, क्योंकि जब उनको होश आया तब उन्होंने देखा कि क्यूबा, प्यूअर्टो रिको, और फिलिपाइन-द्वीप-समूह उनके अधिकार मे आ चुके थे।

इसी समय रुडियार्ड किपलिंग ने अमेरिकी लोगो को सम्बोधन करके लिखी हुई एक कविता मे उनसे "गोरे लोगो का बोझ उठा लेन" का अर्थात् ससार की रगीन जातियो पर शासन करने का गोरे लोगो का कर्तव्य पालन करने का अनुरोध किया था। जब देश यह निर्णय कर रहा था कि इन विजित प्रदेशो का क्या किया जाय, तभी राष्ट्र भर मे साम्राज्यवाद पर विवाद चल रहा था। फल यह हुआ कि हवा का रुख साम्राज्यवाद के विरुद्ध हो गया। अब अमेरिकियो का प्रबल बहुमत स्पष्ट इस विचार का पक्षपाती बन चुका है कि हम भिन्न भाषा बोलने वाले और भिन्न रीति रिवाजो पर चलने वाले लोगो के किसी भी दूरस्थ देश पर शासन करना नही चाहते। अब किसी भी विदेश मे 'तारो और पट्टियो" को अर्थात् अमरिकी झण्डे को, नीचा न होने देने के पुराने नारो में कुछ भी राजनीतिक उत्साह नही रह गया है। जब अमेरिकियो को जर्मनी या जापान जैसे किसी विदेश पर कभी शासन करना भी पड जाता है, तब उनकी सर्वोपरि इच्छा घर लौट जाने की ही रहती है।

विदेशी मामलो में राजनीतिक पार्टियो का रुख ठीक वही नही रहता जो कि स्वदेशी मामलो में रहता है। विदेशी शत्रुओ या मित्रो के साथ व्यवहार के समय दोनो पार्टियो की भावना साधारणतया परस्पर सहयोग की और देश भक्ति की रहती है। निहायत गैर जिम्मेवार लोकप्रिय नेता ही इस भावना से अप्रभावित रह

सकते हैं। दूसरी ओर, सार्वजनिक व्यय के सम्बन्ध में नेशनलिस्ट मतभेदों के कारण विदेशों को सहायता देने सरीखे प्रश्नों पर अनिवार्य रूप से विवाद खड़ा हो जाता है। इसके अतिरिक्त कांग्रेस सदस्यों को स्थानीय आर्थिक स्वार्थों का भी उचित ध्यान रखना ही पड़ता है, वरना उनके स्थान पर अन्य कोई ऐसा व्यक्ति चुना जा सकता है जो इन स्वार्थों का ध्यान रखने वाला हो। और अन्त में, संसार की नयी परिस्थितियों के कारण परम्परागत नीतियों में जो काया पलट हो गये हैं, उनका भी राजनैतिक प्रभाव पड़ता ही है। संसार की अवस्था अमेरिकी लोगों को नये मार्ग पर चलने के लिए विवश कर रही है और वे लम्बे चौड़े राजनैतिक विवाद पश्चात् ही यह निश्चय कर सकेंगे कि वे क्या कर रहे हैं और उन्हें क्या करना चाहिए।

अध्याय १४

# राजनीति और लोकतन्त्र

संयुक्त राज्य अमरिका इस भूमण्डल का एक अत्यन्त मानुषिक राष्ट्र है और सोवियट यूनियन सभी तुलनात्मक दृष्टियों से अत्यन्त अमानुषिक राष्ट्र है। इन दोनों महान् प्रतिस्पर्धियों में दोष रहित तो कोई भी नहीं, परन्तु दोनों के दोषों में अन्तर बहुत बड़ा है। इस अन्तर का वर्णन आर्थिक संगठन की भाषा, धर्म की भाषा, अथवा अन्य-सम्बन्धों के प्रति शासकों के रुख की भाषा में भी किया जा सकता है। संयुक्त राज्य अमेरिका और सोवियट यूनियन में अन्तर को स्पष्ट करने का एक उपाय दोनों की राजनीति में अन्तर दिखला देना भी है।

सोवियट यूनियन की सरकार अपनी जनता के विषय में जो कहती है उसे हम यदि सच मान लें तो उस देश के लोगों की रुचि राजनैतिक विचारों और कार्यों में अत्यन्त अधिक है। कहा जाता है कि वहाँ कोई चालीस लाख से दो करोड़ तक "राजनैतिक" बन्दी बेगार के कैम्पों में बन्द पड़े हैं। इन अभागों पर राजनैतिक कार्य करने या राजनैतिक प्रश्नों पर विचार करने का सच्चा या झूठा अभियोग लगाया गया था। इन कैम्पों में मामूली चोरों और खूनियों के साथ पक्षपात करके उन्हें राजनैतिक बन्दियों के ऊपर अधिकारी बना दिया जाता है। सोवियट-शासन-पद्धति की अमानुषिकता का सब से बड़ा उदाहरण यह है कि वहाँ अन्य समस्त अपराधों की अपेक्षा राजनैतिक अपराधों के लिये कठोरतम दण्ड दिया जाता है।

परन्तु संयुक्त राज्य में और अन्य लोकतन्त्रीय देशों में भी, राजनीति मात्र को अपराध नहीं समझा जाता। हाँ, कुछ प्रकार की राजनैतिक अपराध हो भी सकता

है, क्योकि आखिर राजनीति भी मनुष्यो का ही काम है, इसका सम्बन्ध व्यवहार-नीति से लेकर भ्रष्टाचार तक सभी व्यवहारो से है।

संयुक्त राज्य अमेरिका और सोवियट यूनियन मे एक और अन्तर नागरिक अधिकारो के प्रति उनके रुख में है। दोनो देशो में विभिन्न स्वभावो और रीति-रिवाजो के और विभिन्न भाषाओ के बोलने वाले लोग बडी सख्या मे बसते हैं, जब ये विभिन्न प्रकार के लोग एक ही केन्द्रीय शासन की, और एक ही आर्थिक व्यवस्था की अधीनता मे लाये जाते हैं तब अनिवार्य-रूपेण बहुत-से सघर्ष उत्पन्न हो जाते हैं। सयुक्त राज्य अमेरिका और सोवियट यूनियन इन अनिवार्य संघर्षो का सामना सर्वथा विभिन्न उपायो से करते हैं।

सोवियट यूनियन में जो भी जाति या कबीला अपने विशिष्ट स्वभावो या रीति-रिवाजो को सुरक्षित रखता है—जो 'सोवियट मानव' के नीरङ्ग ढेर मे घुल मिल नही जाता या समा नही पाता—उसे निकम्मा बतलाकर अलग फेंक दिया जाता और उसे समाप्त कर डालने के लिए उस पर नजर रक्खी जाती है। इन अभागे शिकारो को ढोकर दूर ले जाने के लिए केन्द्रीय सरकार अपनी रेलगाडिया भेज देती है। इनमे से कुछ तो गुलामो के कैम्प मे भर जाते हैं, कुछ को उत्तरी ध्रुवो के समुद्री तटों पर बसा दिया जाता है, और कुछ रूसी जनता मे इधर-उधर बिखर कर खो जाते हैं। अपने धर्म और अपनी संस्कृति का पालन करने वाले पृथक् लोगो के रूप में इस भूतल पर से इनका अस्तित्व मिटा डाला जाता है।

जिस प्रकार के "स्वाभाविक निर्वाचन" से, सोवियट यूनियन की कृपा-भाजन जातिया अपने से कम भाग्यशाली जातियो का उन्मूलन करके स्वयं भविष्य के लिए देश की आबादी बनाने के लिए जीवित बची रह जाती हैं, वह पशु जातियो के पारस्परिक संघर्ष से बहुत मिलता-जुलता है। उस सघर्ष मे निर्बल जीव नष्ट हो जाते और बलशाली बचे रह जाते हैं। पुलीस राज में जो समर्थतम बचे रह जाते हैं, वे सभ्यतम नहीं अपितु निर्दयतम होते हैं।

सयुक्त राज्य अमेरिका मे भी बहुत सी जातिया, धर्म, और सस्कृतिया हैं। उनमे से कुछ एक दूसरे से इतनी भिन्न हैं कि उनके लोग, कल्पना चक्षुओ से दृश्य

भविष्य मे कभी भी साधारण जनता मे घुल मिल नही सकेंगे। यहाँ भी बाजारो मे सघर्ष होते हैं। जातियो, धर्मों और संस्कृतियो मे भी स गर्ष होते रहते हैं और कुछ तो बहुत गहरे और कटु भी होते हैं। उस समय की कोई भी कल्पना नही कर सकता जब गोरे और नीग्रो, यहूदी और गैर-यहूदी और कैथोलिक और प्रोटेस्टेण्ट, सबके सब पारस्परिक सन्देह और विरोध को भूल जायंगे और किसी भी प्रकार की विषमता का अनुभव किये बिना एक साथ खाने-खेलने लगेंगे। इस समय तो बहुत से लोग, भिन्न जाति और धर्म के अपने पडौसियो से घृणा करते और डरते हैं। कभी-कभी वे अपने साथी नागरिको को हानि पहुँचाने का यत्न भी करते हैं। सम्भव है कि वे इन घृणित अल्पसख्यको के जीवन मे उन्नति के अवसरो को सीमित करने मे भी सफल हो जायें। यह सब मानव स्वभाव सुलभ है।

परन्तु विभिन्न जातियो और धर्मों के लोगो में मित्रता और सद्भावना का होना भी मानव-स्वभाव सुलभ है और लोकतान्त्रिक समाज में अन्त को जीत इन्ही भावो की होती है। यह 'अन्त' बहुत विलम्बकारी होता है, और मधुर सम्बन्धो की दिशा मे प्रगति भी मन्द होती है, परन्तु संयुक्त राज्य अमेरिका मे हमे मधुरता और सद्भावना की ओर प्रगति के चिह्न अनेक दिखलाई पडते हैं। इस प्रगति को देखकर हमे विश्वास हो जाता है कि अमेरिकी जीवन-पद्धति की संस्थाओ और रीति रिवाजो मे कुछ न कुछ सत्य अवश्य है।

अमेरिकी जनता अपने शासन को, जातियो की यह कठिन समस्या जाति-विनाश के द्वारा—नापसन्द वर्ग के सब लोगो को मार डालने के द्वारा—हल करने का अधिकार नही देती। इसके विपरीत, वह सब नागरिको के अधिकारो को सुरक्षित और विस्तृत करने के लिए, शिक्षण, कानून और सार्वजनिक वाद-विवाद के उपायो मे अधिकतम व्यावहारिक संगति लगाने का प्रयत्न करती रहती है।

संयुक्त राज्य अमेरिका मे अश्वेत जातियो के साथ जो बुरा व्यवहार किया जाता है उसका प्रचार कम्यूनिस्ट प्रचारक बहुत बढा चढाकर करते हैं—

विशेषत. संसार की अश्वेत जातियों में अमेरिकी लोग इस प्रकार के प्रचार से बचकर भाग नहीं सकते । हमें इसका सामना करना, और सुधार के प्रमाण देकर इसका उत्तर देना पड़ेगा । अमेरिकी लोग, अल्पसख्यकों को नष्ट कर देने का और अपने अपराध को गोपनीयता की दीवार के पीछे छिपा देने का सोवियट उपाय नहीं अपनायेंगे । अमेरिकी मार्ग जनता के अधिकारों की समस्या लोकतान्त्रिक उपायों से हल कर लेने का है । लोकतान्त्रिक उपाय की गति मन्द तो है, परन्तु असन्दिग्ध है ।

सयुक्त राज्य अमेरिका के सब दोषों के बावजूद उसमें कुछ गुण ऐसे हैं जो विदेशियों को अपनी ओर आकृष्ट कर लेते हैं । इसका प्रमाण यह है कि जो प्रवासी इस देश के अशोभनतम पहलू को देख लेते हैं उनमें से भी अधिकतर यहाँ रहकर सयुक्त राज्य को अपना घर बना लेने का निश्चय कर लेते हैं । अमेरिकी जनता की स्वतन्त्रता कई दृष्टियों से अपूर्ण तो है, परन्तु फिर भी जीवन की अनेक आवश्यकताएँ इससे पूर्ण हो रही हैं और यह निरन्तर उन्नति के स्वास्थ्य चिह्न प्रकट कर रही है । अमेरिकी स्वतन्त्रता की इस जीवनी शक्ति का सम्बन्ध इसके उद्भव की विशिष्ट परिस्थितियों से है ।

प्रथम बात यह है कि जो लोग अमेरिका आये थे उनमें से अधिकतर ऐसी परिस्थिति से बचकर यहाँ आये थे जिसमें वे अपने आप को बन्दी बना हुआ अनुभव करते थे । वे एक ऐसे नये देश में आये थे जहाँ का जीवन कठोर और भयानक था । बहुत से तो भूख-प्यास और ऋतु की कठोरता से मर गये और बहुत से इण्डियनों के कुल्हाड़े का शिकार हो गये । फिर भी उन्होंने अनुभव किया कि हम स्वतन्त्र हो गये हैं, हमारे बन्धन टूट गये हैं ।

द्वितीय बात यह कि लगभग तीन शताब्दियों तक अमेरिकियों को ऐसी भौगोलिक सुरक्षा और सुअवसर मिलते रहे कि उनके कारण उनकी स्वतन्त्रता स्वयं-सिद्ध सी हो गयी । उनकी पीठ पर अतलान्तक महासागर था । देश की प्रगति की सब अवस्थाओं में हम ऐसी सेनाएं सगठित कर सके, जो ब्रिटेन य

अन्य किसी शक्ति द्वारा समुद्र के तीन सहस्र मील पार भेजी हुई फौज का खासा मुकाबला करने में सफल रही। यह आरम्भिक लाभ उन्नीसवी शताब्दी के आरम्भ मे बालक सयुक्त राज्य अमेरिका के इस सौभाग्य से और समृद्ध हो गया कि युरोपियन शक्तियाँ परस्पर हो तीव्र झगड़ा मे उलझ गयी और इस कारण उनमें से कोई भी अपने बल को अमेरिकी तट के विरुद्ध केन्द्रित नही कर सकी।

स्वतन्त्रता का एक अन्य भौगोलिक तत्त्व पश्चिम की ओर का रिक्त-प्रदेश था। इस कहावत मे बहुत सचाई है कि कही ओर जा सकने की सामर्थ्य ही स्वतन्त्रता है। सबको इस बात की जानकारी हो जाना अत्याचार के विरुद्ध एक बलवान् गारण्टी है कि शिकार जब चाहे तब अपना डेरा डण्डा उठाकर गायब हो सकता है। भाग सकने की यह स्वतन्त्रता अब भी अमेरिकी जीवन की एक उल्लेखनीय विशेषता है। खुले सीमान्त के दिना मे, अधिकारिया और व्यक्तिया के अधिकारो के प्रति अमेरिकी रुख की यह एक प्रमुख विशेषता थी।

अन्तिम बात यह कि अमेरिकी लोगा को इंगलैण्ड के कानून और सस्थाएँ उत्तराधिकार मे मिले थे। इन कानूनो और संस्थाओं की रचना राजा और प्रजा मे दीर्घ सघर्ष के पश्चात् हुई थी। इनका प्रयोजन शासन मे नागरिक की रक्षा करना था। अमेरिकी सविधान के पाचवें संशोधन मे कहा गया है कि बिना उचित कानूनी काररवाई के, शासन, किसी भी नागरिक को जीवन, सम्पत्ति और स्वतन्त्रता से वचित नही कर सकेगा, और न उसकी सम्पत्ति को बिना उचित मुआवजा दिये सार्वजनिक उपयोग के लिए ले सकेगा।

अमेरिका को जो ये संस्थाएँ उत्तराधिकार मे मिली वे मध्य-वर्ग की थी, और युरोप की दूरी तथा खुले सीमान्त के कारण भी अमेरिकियो को मध्यवर्गीय विचार-शैली की ओर बढने मे सहायता मिली। किसी भी अमेरिकी श्रमिक की प्रवृत्ति अपने आपको उन मेहनतकश मजदूरो के मजमे का मेम्बर समझने की कम होती है जो सरमायेदारो का सरमाया जब्त कराने की जद्दो-जहद कर रहे होते हैं, और अपना मकान या व्यापारिक सम्पत्ति मे अपना भाग खरीद लेने की अधिक

होती है। इतने अधिक श्रमिक पश्चिम की ओर जाकर और भूमि लेकर खेती में लग चुके अथवा अपना व्यापार आरम्भ कर चुके हैं कि वर्गों के परिवर्तित हुए बिना उनके वर्ग-युद्ध में उलझ जाने की कल्पना कोई सुगमता से करता ही नहीं।

इस प्रकार अमेरिकी जनता के कानून और संस्थाएँ, जनता की स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए राजनीतिक साधनों के रूप में प्रयुक्त होने के लिए, भली भाँति अपनायी जा चुकी हैं। विस्तृत समुद्र की आप से आप मिली हुई रक्षा के सिकुड़ जाने और सीमान्त की ओर स्वतन्त्रता से बढ़ने के अवसर क्रमशः समाप्त हो जाने पर भी, शासन के साधनों को, जनता की आवश्यकतानुसार नये प्रकार का संरक्षण देने के लिए, विस्तृत और परिवर्तित किया जा सकता है।

अमेरिकी इतिहास की आरम्भिक अवस्था में लोकतन्त्र की सृष्टि सीमान्त ने स्वयमेव कर दी थी, क्योंकि जिस किसी को भी अपने साथ दुर्व्यवहार किया जाने की शिकायत होती, वह पृथक् होकर अपने सामर्थ्यानुसार अपना मार्ग आप बना सकता था। परन्तु पूर्वी तट के साथ-साथ बसे हुए देश में इंगलैण्ड के ही सामाजिक और आर्थिक वर्ग स्थिर हो गए थे। राजनीतिक लोकतन्त्र सम्पत्तिशाली लोगों तक ही सीमित था। केवल उन्हीं को मत देने का अधिकार प्राप्त था।

परन्तु सीमान्त का विस्तार पश्चिम की ओर को होता गया और मतदाताओं में साधारण व्यक्तियों की संख्या भद्र जनों से अधिक होती गयी। ज्यों-ज्यों मताधिकार अधिकाधिक वर्गों के लोगों को, और अन्त में स्त्रियों को भी दिया जाने लगा, त्यों-त्यों राजनीतिक लोकतन्त्र का भी विस्तार होता गया। राष्ट्रपति को और सेनेट के सदस्यों को चुनने का अधिकार भी जनता ने अपने हाथ में ले लिया। ज्यों-ज्यों राजनीतिक शक्ति केवल उच्च वर्गों के नियन्त्रण से निकलती गयी त्यों-त्यों राजनीति में सारी आबादी के सामान्य गुण और दोष अधिक निकटता से प्रतिबिम्बित होने लगे। बीसवीं शताब्दी के संघर्ष में संयुक्त राज्य अमेरिका का उत्थान या पतन इन्हीं गुणों और दोषों के सहारे होगा।

क्या सही है, क्या गलत और क्या बुद्धिमत्ता है और क्या मूर्खता, इन प्रश्नों का निर्णय जनता स्वयं ही कर रही है। जनता की वाणी ही ईश्वर की वाणी है, इस

प्रचलित कहावत का अर्थ यह लिया जा सकता है कि जिस साधन से अमेरिकी समाज की रचना हो रही है, वह वास्तव में अपनी स्वयं-प्रभु इच्छा का प्रकाशन करने वाली जनता की ही वाणी है। जब किसी अस्पष्ट प्रश्न का उत्तर केवल परीक्षण में भूलें करके देखने से मिल सकता है तब लोग परीक्षण करते हैं। भूलें कर के वे सीखते हैं कि बुद्धिहीनता क्या है और गलती करने पर उन्हें पता लगता है कि गलती क्या थी। कभी-कभी जनता ठीक काम भी करती है और उसके परिणाम से प्रसन्न होती है।

प्रतीत होता है कि प्रथम विश्व युद्ध के पश्चात्, जनता ने 'लीग ऑव नेशन्स' अर्थात् राष्ट्र-संघ में सम्मिलित होने से इनकार करके संसार की सुरक्षा का उत्तर-दायित्व उठाने से पीछे हटकर, और शान्ति की निरर्थक प्रतिज्ञाओं के साथ खिलवाड़ करके भूल की थी। उन्हें यह कैसे ज्ञात हुआ कि वे भूल कर रहे थे? जब युद्ध रोकने के लिए खड़ी की हुई उनकी कागजी दीवारें पर्ल हार्बर में ढह गयीं तब; कठोर अनुभव से अगली बार वे अधिक अच्छी तरह जान चुके थे।

अगली बार संयुक्तराष्ट्र संघ की संस्थापना करने, उसे जीवित रखने और बल संचय करने में सहायता देने के कार्य में अमेरिकी जनता ने अधिक उत्साह से योग दिया। कोरिया की चुनौती का सामना करने में मार्ग दिखलाने का काम संयुक्त राज्य अमेरिका ने भी किया। उस समय संयुक्त राष्ट्रसंघ की मृत्यु से रक्षा, साहस-पूर्ण उत्तर के कारण ही हो सकी थी। पर्ल हार्बर से पूर्व भी उधार-पट्टा कार्यक्रम के लिए स्वीकृति अमेरिकी जनता ने ही दी थी; और द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् मार्शल योजना की स्वीकृति भी उसने ही दी। इन सब कार्यों से प्रकट होता है कि जनता किस प्रकार पिछली भूलों से सीख गयी और नयी आपत्तियों का सामना करने के लिए नये उपायों की परीक्षा करने के लिए तैयार हो गयी।

निःसन्देह भविष्य में भी जनता कभी भूल करेगी और कभी ठीक करेगी और यदि वह जीवित रह गयी तो वह नया पाठ सीख चुकी होगी। उसका मन उसे आपत्तियों में भी प्रगति की ओर ले जाता है, क्योंकि उसके इतिहास ने उसे प्रगति में ही विश्वास करना सिखलाया है। यह भी भूल ही हो सकती है, परन्तु यही एक

कर रहे हैं। हम बहुतेरा चल चुके हैं, परन्तु उसका अन्त नही दिखलाई नही पडता। हमारा संकल्प भी किसी लक्ष्य पर पहुचने का नही, यात्रा करते चले जाने का है। दुर्गमता को भी सुगमता के साथ मिलाते हुए, हम यात्रा का आनन्द ले रहे हैं। हमे लगता है कि साधारणतया हम ऊँची भूमि पर पहुचते जा रहे हैं और पहले की अपेक्षा अब अच्छा दिखाई देने लगा है।

एक शताब्दी से अधिक समय हुआ कि फ्रेंच यात्री डो-तावेविले ने कहा था, "अमेरिकी शासन का ढाचा उन लोगो के लिए उपयुक्त नही होगा जिन्हे अपने मामलों का प्रबन्ध स्वय करने का बहुत पहले से अभ्यास न हो, या जिनके समाज मे *राजनीतिक विज्ञान निम्नतम वर्गों तक न पहुच चुका हो।"* अमेरिकी लोग यह सिफारिश नही कर सकते कि जा देश अभी-अभी पीढ़ियो पुरानी स्वच्छन्द शासन प्रणालियो से मुक्त हुए हैं, वे भी उन तमाम विशेषताओ सहित अमेरिकी प्रणाली का अनुकरण करने लगें जो कि अमेरिकी जनता को अपने विशिष्ट अनुभवो के पश्चात् प्राप्त हुई हे। अन्य जो लोग राजनीतिक स्वतन्त्रता प्राप्त करने मे सफल हो गये हैं, उनसे अमेरिकिया की सिफारिश यह है कि वे लोकतन्त्रीय प्रगति के मार्ग की यात्रा अपने ही परम्पराओ और अपनी ही प्रतिभा के भरोसे, इस विश्वास के साथ आरम्भ करे कि समस्त कठिनाइयो के बावजूद किन्ही भी लोगो के लिए यही मार्ग सर्वोत्कृष्ट हे।

लोग अपनी यात्रा के मार्ग की खोज अनेक प्रकार से करते हैं। विज्ञान से सीख सकने वाली हर पदार्थ का वह उपयोग करते हैं। वे धर्म के द्वारा निर्दिष्ट मार्ग का भी उपयोग करते हैं। और, अन्त मे नित्यप्रति के जीवन के साधारण आदान-प्रदान मे वे अमेरिकी मार्ग पर ही पहुंच जाते हैं।

अपने शासन का संगठन करते हुए वे विवाद, समझौते और सहमति के लोकतन्त्रीय उपायो का उपयोग अपनी जानकारी के अनुसार करते हैं। तानाशाहियो मे राजनीति की कला का प्रयोग नही हो सकता, और लोकतन्त्रीय मार्ग मे कुछ न कुछ कोलाहल तथा अव्यवस्था रहती ही है। इन दोनो के बीच मे अमेरिकी लोग बीसवी शताब्दी के भविष्य की खोज लोकतन्त्रीय मार्ग से ही कर रहे हैं—उसका परिणाम चाहे भला हो चाहे बुरा।